जीव विज्ञान

कक्षा XI-XII की पाठ्यपुस्तक

सम्पादक मंडल

पुनरीक्षक

डा० ओ० एस० रेड्डी
आनुवंशिकी विभाग
ओस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

डा० बी० एल० चोपड़ा
आनुवंशिकी विभाग
आइ० सी० ए० आर०
नई दिल्ली

डा० दलबीर सिंह
रीडर, वनस्पतिशास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

लेखक

डा० बी० सी० शाह
अध्यक्ष, प्राणिविज्ञान विभाग
गुजरात विश्वविद्यालय
अहमदाबाद

डा० यू० के० सिनहा
वनस्पतिशास्त्र विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो० एच० वाई० मोहनराम
वनस्पतिशास्त्र विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

डा० एस० एस० भोजवानी
वनस्पतिशास्त्र विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

डा० आइ० ए० नियाज़ी
प्राणिविज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

डा० अरुणकुमार मिश्र
रीडर, वनस्पतिशास्त्र
राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान
नई दिल्ली

प्रो० (श्रीमती) जी० घोष
वनस्पतिशास्त्र विभाग
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भुवनेश्वर

डा० राजेश्वर राव
वनस्पतिशास्त्र विभाग
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति

डा० जे० एस० गिल
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान
नई दिल्ली

कुमारी शुक्ला मजुमदार
रीडर, वनस्पतिशास्त्र,
प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास सेल,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

डा० (श्रीमती) एस० भट्टाचार्य
रीडर, वनस्पतिशास्त्र विभाग
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान
नई दिल्ली

जीव विज्ञान

कक्षा XI-XII की पाठ्यपुस्तक

भाग 1

(द्वितीय खण्ड)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

प्रस्तावना

यह पुस्तक, कक्षा XI की जीवविज्ञान की पाठ्यपुस्तक का अगला क्रम है। यह पुस्तक जीव-विज्ञान के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों, जैसे कोशिका-जीवविज्ञान, आनुवंशिकी, परिवर्धन जीवविज्ञान तथा मानव कल्याण के लिए जीवविज्ञान का व्यवहार से संबंधित संकल्पनाओं का विवरण देती है। ये समस्त संकल्पनाएँ, विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान के आधार पर विकसित की गई हैं। इसके लेखक जीवविज्ञान के इन क्षेत्रों के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने इस बात का पूर्ण प्रयास किया है कि छात्रों को इन विषयों से संबंधित अधुनातन ज्ञान दिया जा सके जिससे उनमें उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जागृत हो।

इस कार्य को अत्यल्प समय में पूरा करने के लिए मैं लेखकों तथा पुनरीक्षकों को धन्यवाद देता हूँ। प्रकाशन की जल्दी के कारण, इस पुस्तक का लेखन, पुनरीक्षण तथा संपादन बहुत ही शीघ्रता में किया गया है। इस कारण, पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ रह जाने की आशंका है। ऐसी त्रुटियों को दूर करने के लिए अथवा पुस्तक को अधिक से अधिक उत्तम बनाने के लिए आपके विचारों का हम कृतज्ञतापूर्वक स्वागत करेंगे।

शिवकुमार मित्र
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
अप्रैल 1978

आमुख

आज के युग में जीवविज्ञान का विकास अद्‌भुत गति से हुआ है और मानव-ज्ञान की सभी प्रमुख शाखाओं पर इसका प्रभाव पड़ा है। आशा है, जीवविज्ञान के अध्ययन से भोजन, स्वास्थ्य और आवास आदि की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान हो सकेगा। जीवविज्ञान के गहन अध्ययन के लिए विद्यार्थी को विभिन्न पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं तथा मानव की संरचना और क्रियात्मक संघटना की सही-सही जानकारी प्राप्त करनी होगी। इस विषय की प्रगति के इतिहास और उसके आधुनिक स्वरूप की जानकारी प्राप्त करते समय विद्यार्थी को यह भी सीखना होगा कि उसके दैनिक जीवन में जीवविज्ञान का क्या महत्त्व है और उसे किस प्रकार व्यवहार में लाया जा सकता है। इसके अध्ययन से उसके लिए उच्च शिक्षा एवं विभिन्न व्यवसायों का द्वार तो खुलेगा ही, साथ ही अपने परिवेश की जीव-सृष्टि, उसके प्रक्रमों तथा घटना-क्रम की जानकारी के आधार पर वह जीवन में प्रवेश करते हुए अधिक संतोष अनुभव कर सकेगा।

12 वीं कक्षा की प्रस्तुत पुस्तक उक्त आवश्यकता की ही पूर्ति की दिशा में तैयार की गई है। मैं संपादक-मंडल के सभी सदस्यों, लेखकों, पुनरीक्षकों का आभारी हूँ जिन्होंने इतने थोड़े समय में ही इस कार्य को पूरा किया है। चूँकि इस पुस्तक का लेखन, संशोधन और संपादन बहुत जल्दी में किया गया है ताकि इसका प्रकाशन निर्धारित अवधि के भीतर ही पूरा हो सके, अत: इसमें कुछ कमियाँ रह जाना स्वाभाविक ही है। इन कमियों को आगामी संस्करण में सुधार लिया जाएगा। हम पुस्तक के पाठक-वर्ग के विचारों और सुझावों का हार्दिक स्वागत करते हैं।

प्राणिविज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

एम० आर० एन० प्रसाद
अध्यक्ष
जीवविज्ञान सम्पादक मंडल

विषय-सूची

इकाई 1
कोशिका-जीवविज्ञान

इकाई 2
आनुवंशिकी

इकाई 1

कोशिका-जीवविज्ञान

अध्याय 1

विषय प्रवेश, ऐतिहासिक विवरण, कोशिका सिद्धान्त

जिस तरह रासायनिक बनावट में परमाणु का स्थान है, ठीक उसी तरह जीवधारियों की बनावट में आधारभूत आकृतिक और शरीर क्रियात्मक इकाई के रूप में कोशिका का स्थान है। कोशिका और परमाणु दोनों ही सरलतर घटकों से बने होते हैं और ये घटक मिलकर और संघटित होकर ऐसे विशेष प्रकार के गुण दिखलाते हैं जो इनमें से न तो किसी एक में और न इनके किसी मनमाने मिश्रण में ही पाए जाते हैं। दोनों के गुणों में विविधता पाई जाती है जो उनके अंशों के विभिन्न प्रकार के क्रम या विन्यास के कारण होती है। अधिक जटिल संरचनाओं के निर्माण के लिए दोनों ही आधारभूत सामग्री का काम करते हैं। इतना कुछ होने पर भी यह समानता अधिक दूर नहीं चलती, क्योंकि कोशिकाएँ तो जनन कर सकती हैं लेकिन परमाणु नहीं कर सकते। अजीवित पदार्थों का उपयोग करके उनसे जीवित पदार्थ बनाने की अद्भुत् क्षमता शायद कोशिका का बिलकुल मौलिक लक्षण है और इस तरह कोशिकाएँ स्वतः पुनरुत्पादन करने वाली सबसे सरलतम इकाइयाँ हैं। कोशिका जीवविज्ञान भी जीवविज्ञान की ही एक शाखा है, जो जीवन की इस मूलभूत इकाई यानी कोशिका के अध्ययन और ज्ञान से सम्बन्ध रखती है।

पिछले कई वर्षों तक कोशिका के अध्ययन से सम्बन्धित जीवविज्ञान की शाखा को **कोशिकाविज्ञान** (cytology) कहा जाता था। फिर किसी तरह सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) की सहायता से दिखने वाली केवल कोशिका की संरचना के वर्णन सम्बन्धी अध्ययन को कोशिकाविज्ञान कहा जाने लगा। आजकल कोशिका और उसके घटकों का अध्ययन विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की तकनीकों के द्वारा किया जाता है, जैसे कि जैवरसायन (बायोकेमिस्ट्री), जैवभौतिकी (बायोफिजिक्स), शरीर क्रियाविज्ञान (फिज़ियोलॉजी), आनुवंशिकी (जेनेटिक्स), आणविक जीव विज्ञान आदि की तकनीकों से, और इसीलिए इसे सक्रिय इकाई के रूप में लिया जाता है। अतः हाल के कुछ वर्षों में ही इस सन्दर्भ में कोशिका विज्ञान से बदलकर इस शाखा का नाम **कोशिका-जीवविज्ञान** रख दिया गया।

ऐतिहासिक विवरण

पूरी जानकारी के अभाव में विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हुए विकास की रूपरेखा को प्रस्तुत करना आसान नहीं। इसके अलावा विज्ञान में यह भी होता है कि कुछ के योगदान पर अधिक महत्व देकर अन्य लोगों के परिश्रम वाले प्रेक्षणों और अनुसंधानों को नजरअन्दाज कर दिया जाता है जबकि सचाई यह है कि इनके द्वारा किए गए अध्ययन के बिना कुछेक को कार्य सम्बन्धी श्रेय मिल ही नहीं सकता। कुछ भी हो, इतिहास की विशेषता ही यह है कि विज्ञान के किसी क्षेत्र के निरूपण में वह कुछ खोजों को ही विशिष्ट बनाकर कुछ ही मील के पत्थरों की रूपरेखा प्रस्तुत कर पाता है। अतः इसी प्रकार के सन्दर्भ में कोशिका-जीवविज्ञान के इतिहास की रूपरेखा भी प्रस्तुत की जा सकती है।

कोशिका का वास्तविक अध्ययन सन् 1632 ई० में डच वैज्ञानिक वान ल्यूवेनहॉक द्वारा किए गए सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के साथ ही आरम्भ हुआ। इस आरम्भिक सूक्ष्मदर्शी के द्वारा ल्यूवेनहॉक कुछ आदि जन्तुओं (प्रोटोजोआ), जीवाणुओं (बैक्टीरिया), शुक्राणुओं (spermatozoa), लाल रुधिर कोशिकाओं आदि का सही वर्णन करने में सफल हुआ। सन् 1665 ई० में रॉबर्ट हूक नामक अंग्रेज जीवविज्ञानी ने अपने आरम्भिक सूक्ष्मदर्शी से काग (कॉर्क) की काट लेकर कोशिकाओं का निरीक्षण किया। (चित्र 1.1 क) उसी ने सर्वप्रथम सूक्ष्मदर्शी में खोखली छिद्र-जैसी रचनाओं को देखा और इन्हीं के आधार पर उसने "सेल" (Cell) या कोशिका (लैटिन भाषा में: सेल = खोखली जगह) नाम दिया। ये रचनाएँ वास्तव में पौधे के छाल-ऊतक (bark tissue) की मृत कोशिकाएँ थीं (चित्र 1.1 ख)। इन प्रेक्षणों के बाद करीब 150 वर्ष तक इस प्रसंग में बहुत कम जानकारी प्राप्त हुई।

लेकिन 19वीं शताब्दी में कोशिका की संरचना समझाने के लिए काफी अनुसंधान हुए। हमारे ज्ञान की प्रगति के कीर्ति स्तम्भ इतिहास के पन्नों में सूचीबद्ध हैं, और कोशिका-जीवविज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति के कुछ कीर्ति-स्तम्भ परिशिष्ट 1 में दिए गए हैं। यह सूची अभी पूरी नहीं हुई है। कोशिका सम्बन्धी अनुसंधान बड़ी तीव्र गति से चल रहे हैं। कोशिका अनुसंधान के क्षेत्र में आज हम अब ऐसी अवस्था में पहुँच गए हैं जहाँ से हम आशा करते हैं कि कई उलझी गुत्थियों को आत्मविश्वास के साथ बड़े मजे में सुलझा सकते हैं। इनमें से कुछ गुत्थियाँ मानव
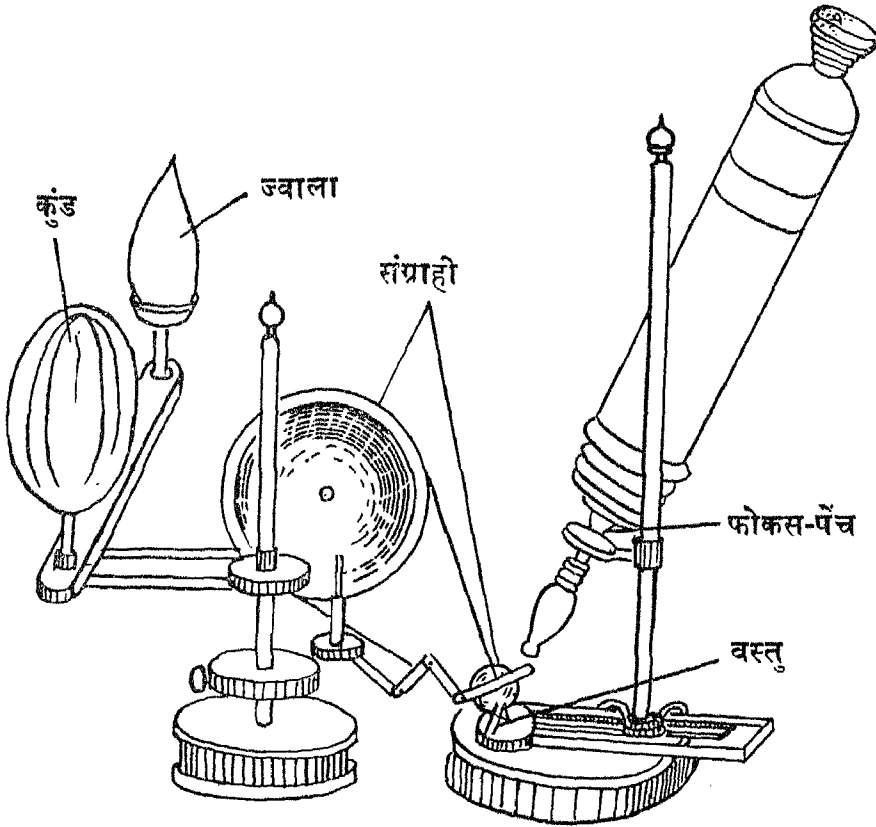
चित्र 1.1 क: रॉबर्ट हूक द्वारा प्रयोग में लाया गया अपरिष्कृत सूक्ष्मदर्शी।

जीवन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये आयुर्विज्ञान (medicine) और कृषि से सम्बन्धित हैं। कोशिकाओं के विषय में ज्यों-ज्यों हमारी जानकारी बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों उनको नियंत्रित करने और बदलने की हमारी क्षमता में भी वृद्धि होती जाएगी। मनुष्य जाति के भविष्य के लिए हमारी यह क्षमता बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

चित्र 1.1 ख : रॉबर्ट हूक द्वारा देखे गए काग-ऊतक में सन्दूक-जैसे खाने।

कोशिका सिद्धान्त

इस बात का हमने पहले भी उल्लेख किया है कि कोशिका जीवधारियों की आकृतिक और शरीर क्रियात्मक इकाई है। इसी संकलपना या धारणा को कोशिका-सिद्धान्त या कोशिका-वाद कहते हैं। दो जर्मन वैज्ञानिकों ने, (एम० जे० श्लाइडेन ने पौधों और थियोडोर श्वान ने प्राणियों में) क्रमशः सन् 1838 और 1839 ई० में, इस बात का वर्णन विस्तार में किया कि कोशिका को जीवधारियों की इकाई क्यों माना जाय। इस प्रकार आज के जिस कोशिका-सिद्धान्त से हम परिचित हैं उसके प्रतिपादन का श्रेय इन को ही जाता है। फिर भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल ये ही प्रथम व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने कोशिका को आधारभूत इकाई समझा। सन् 1824 ई० में फ्रांसीसी वैज्ञानिक एच० जे० दुत्रोशे (H. J. Dutrochet) ने कुछ ऊतकों को अम्ल में उबालकर कोशिकाओं को पृथक् किया और देखभाल कर धारणा बनाई कि ऊतक छोटी इकाइयों या कोशिकाओं के बने होते हैं। 19वीं शताब्दी में और भी कई वैज्ञानिक थे जिन्होंने कोशिका की संरचना से सम्बन्धित जानकारी में योग दिया। श्लाइडेन और श्वान ने इन सब जानकारियों को एक साथ सूत्रबद्ध कर इन तथ्यों को एक संतुष्टकारी सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया कि केन्द्रक (nucleus) वाली कोशिकाएँ पौधों व प्राणियों दोनों के संघटन में संरचनात्मक आधारशिलाएँ या इकाइयाँ है। एक अन्य जर्मन वैज्ञानिक रुडोल्फ विरचॉ ने एक दूसरा महत्वपूर्ण व्यापक परिणाम दिया, कि **कोशिकाएँ केवल पूर्ववर्ती कोशिकाओं से ही उत्पन्न होती हैं।** इन सब तथ्यों को एक साथ रखकर आधुनिक कोशिका-सिद्धान्त को निम्नलिखित प्रकार से

अभिव्यक्त किया जा सकता है :

(क) जीवन का उद्भव, स्वरूप और सातत्य कोशिका में ही सम्बद्ध है।

(ख) एक जीवित कोशिका के माध्यम से ही जीवन के सम्पूर्ण लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचते हैं।

(ग) समस्त जीव कोशिकाओं अथवा कोशिका-उत्पादों के बने होते हैं।

(घ) कोशिका-वृद्धि अथवा कोशिका-गुणन के द्वारा ही वृद्धि होती है।

कोशिका-सिद्धांत जीवविज्ञान का बहुत महत्वपूर्ण और आधारभूत व्यापकीकरण (व्यापक परिणाम) है और यह चार्ल्स डारविन के **विकास-सिद्धान्त** और आधुनिक जीव-विज्ञान के **जीन-सिद्धान्त** की कोटि में आता है।

प्रश्न

1. हमें कोशिका-जीवविज्ञान का अध्ययन क्यों करना चाहिए ?
2. क्या तुम जीवविज्ञान के तीन महत्वपूर्ण व्यापक परिणामों का उल्लेख कर सकते हो ?
3. कोशिका-सिद्धान्त क्या है ?
4. तुम्हारे विचार में कोशिका-जीवविज्ञान के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना कौन-सी है ? और क्यों ?

अध्याय 2

यंत्र और तकनीक

सन् 1650 ई० से पहले कोशिका के बारे में कुछ भी पता नहीं था। और तो और इस बात का भी आभास नहीं था कि यह होती भी है, क्योंकि सभी कोशिकाएँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि कोरी या खाली आँख से दिखाई नहीं देतीं। जो वस्तुएँ कोरी आँख से नहीं दिखाई देती थीं उन्हें हम सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के बाद ही देखने में समर्थ हो सके। इस प्रकार सूक्ष्मदर्शी सरीखे यंत्र हमारी विस्तरित या सहायक ज्ञानेन्द्रिय का कार्य करते हैं। प्रकाश-सूक्ष्मदर्शियों और इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शियों के आविष्कार से हमारी आँखों के सामने सूक्ष्मजीवों का वह संसार आ गया है जो सामान्य रूप से उनके बिना हमें दिखाई नहीं देता। आमतौर पर हम विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के दिखाई पड़ने वाले प्रकाश का सूक्ष्म अंश ही देख पाते हैं। लेकिन प्रकाशसंवेदी (photosensitive) सतहों के उपयोग से हम स्पेक्ट्रम के एक ओर लम्बी अवरक्त किरणों (infra-red rays) की, और दूसरी ओर छोटी परा बैंगनी (ultra-violet) किरणों, ऐक्स-किरणों आदि की पहचान भी कर सकते हैं। यंत्रों की तरह तकनीकों की सहायता से भी हम उन चीजों के बारे में ढेर सारी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जिन्हें हम कभी देख ही नहीं पाते, जैसे कि परमाणु (atom), अणु (molecule) आदि संरचनाएँ। इस तरह नए व उत्तम यंत्रों या औजारों तथा तकनीकों के विकास और विज्ञान के क्षेत्र में हुई हमारी जानकारियों और बारीकियों में सीधा सम्बन्ध है। कोशिका-जीवविज्ञान के क्षेत्र में तो यह बात विशेष रूप से खरी उतरती है। अतः इस प्रसंग में आधुनिक विधि से कोशिका के अध्ययन में प्रयुक्त होने वाले महत्वपूर्ण यंत्रों और तकनीकों का वर्णन करना उचित ही होगा।
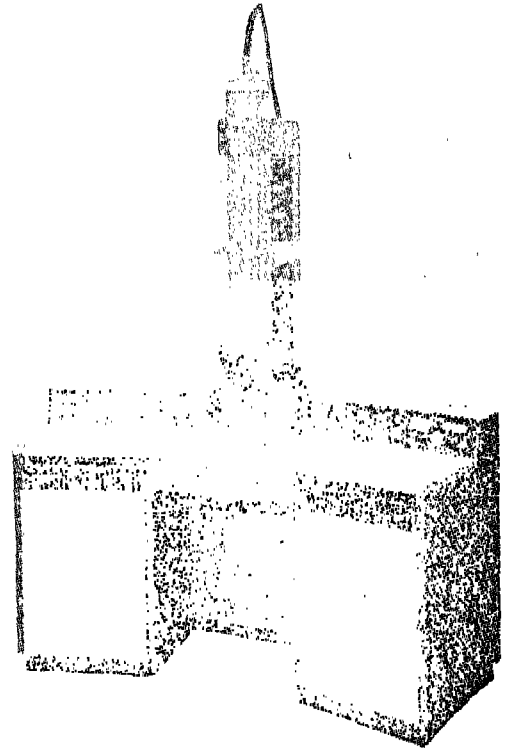
चित्र 2.1 क : इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी का फोटो।
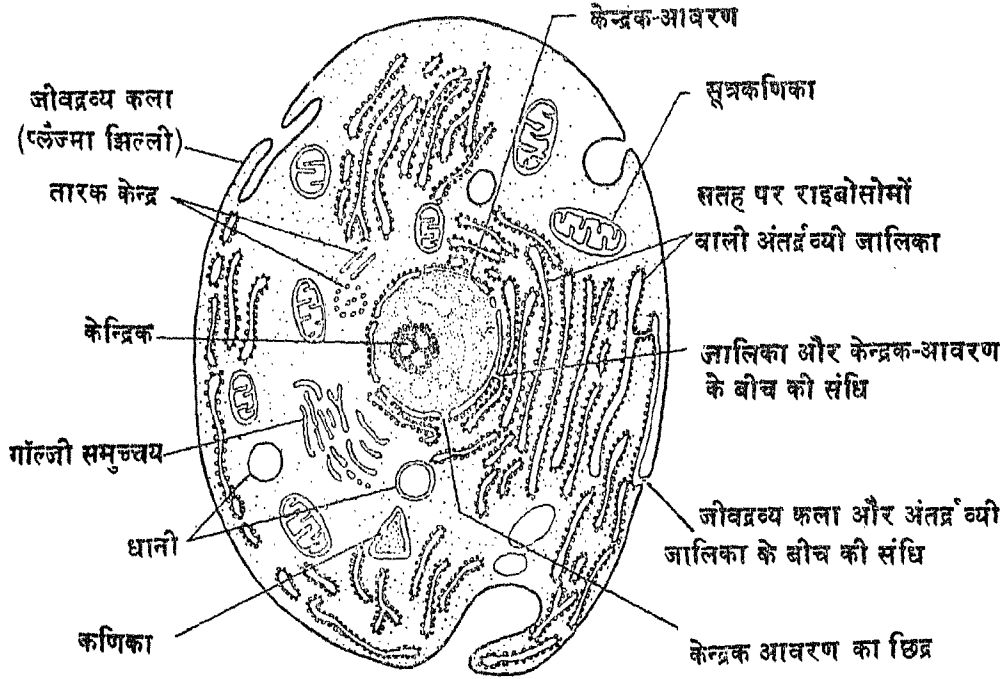
चित्र 2.1 ख : सामान्य कोशिका की आरेखी परासंरचना ।

सूक्ष्मदर्शकी (Microscopy)

हमारी आँख 100 माइक्रॉन से छोटी वस्तुओं को देखने में असमर्थ होती है । इसका मतलब यह हुआ कि हम अपनी आँखों से 100 माइक्रॉन से कम दूरी वाले दो बिन्दुओं को दो सुस्पष्ट बिन्दुओं के रूप में नहीं देख सकते। इस तरह वे सटे हुए एक धुँधले बिम्ब के रूप में दिखाई देंगे । बिलकुल नजदीक के दो बिन्दुओं को दो पृथक् बिन्दुओं के रूप में पहचान सकने की योग्यता को **विभेदन क्षमता** (resolving power) कहते हैं । इसलिए मानव की आँख की विभेदन क्षमता 100 माइक्रॉन है । सूक्ष्मदर्शी एक ऐसा यंत्र या उपकरण (instrument) है, कि जब उसमें वस्तुएँ देखी जाती हैं तो वह उन्हें आवर्धित करने (बड़ा करने) के साथ-साथ विभेदित भी कर देता है । लेकिन इस प्रकार से वस्तुओं को देखने के लिए हमें किसी प्रकार की प्रदीप्ति या प्रकाश का प्रयोग करना ही पड़ता है । सूक्ष्मदर्शी द्वारा किया गया यह विभेदन, इस्तेमाल किए गए प्रकाश के प्रकार पर निर्भर करता है । सामान्यतया इस्तेमाल किए गए प्रकाश के तरंगदैर्ध्य (wave length) के आधे से कम दूरी वाली वस्तुओं की आपस में सुस्पष्ट रूप से पहचान करना प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी में सम्भव नहीं है । प्रकाश के दिखाई देने वाले स्पेक्ट्रम के तरंगदैर्ध्य का परिसर 4000A° से 8000A° (नैनोमीटर $=10^{-10}$ मीटर) तक होता है । यदि 6000A° को तरंगदैर्ध्य का औसत मानें तो एक प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी की विभेदन-क्षमता लगभग 3000A° या 0·3 माइक्रॉन होगी । इस तरह प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी की भी अपनी सीमाएँ हैं और इससे हम 0.30 से लेकर 0.25 माइक्रॉन वाली छोटी वस्तुएँ नहीं देख सकते । चूँकि कोशिकाओं के कई भाग बहुत ही छोटे होते हैं इसलिए **इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शी** के आविष्कार होने तक इनकी उपस्थिति और संरचना का पता ही न था । (चित्र 2.1 क) ।

इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में प्रकाश-तरंगों के स्थान पर अधिक वेग से बहने वाले इलेक्ट्रोन प्रवाहित किए जाते हैं। इलेक्ट्रोनों का तरंगदैर्ध्य उसी वोल्टता से निर्धारित

चित्र 2.2 : प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी के अवयव ।

होता है जिससे कि वे उत्पन्न होते हैं। 50,000 वोल्ट पर इनका तरंगदैर्ध्य करीब 0.50A° होता है। इसलिए इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी की विभेदन-क्षमता 0.50A° का आधा यानी 0.25A° हो सकती है। फिर भी तकनीकी कठिनाइयों के कारण 10A° से कम की विभेदन-क्षमता मुश्किल से ही उपलब्ध हो पाती है। इस विभेदन-क्षमता के बलबूते पर सचमुच कई कोशिका-संरचनाएँ और उनकी बारीकियाँ नज़र आने लगी हैं, जिससे कोशिका-जीवविज्ञानियों के आगे सचमुच एक नया क्षेत्र खुल गया है (चित्र 2.1 ख)।

संयुक्त प्रकाश (प्रकाशिक) सूक्ष्मदर्शी की संरचना बड़ी सरल है (चित्र 2.2)। इसमें अभिदृश्यक (Objective) तथा नेत्रिका (Ocular) नाम के दो लेन्स और एक संग्राही (Condenser) होता है। अभिदृश्यक वस्तु का आरंभिक बिम्ब बनाता है। इस बिम्ब की किस्म ही बिम्ब के विभेदन का निर्धारण करती है। नेत्रिका या आँख वाला लेन्स (eye-piece) फिर इस आरंभिक आकाशी बिम्ब का आकार बढ़ा कर अंतिम बिम्ब बनाता है। संग्राही का कार्य यह है
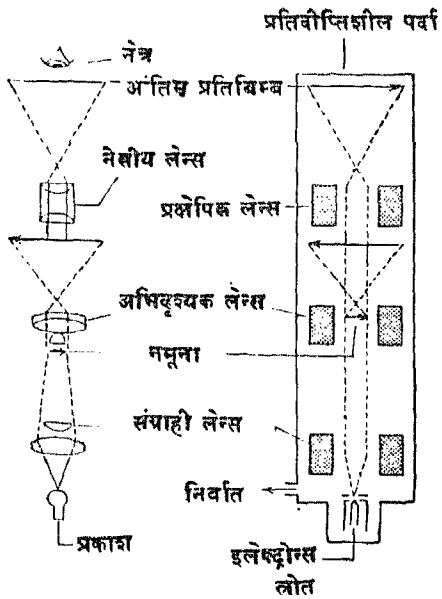
चित्र 2.3 : प्रकाश और इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी की समानताएं और अन्तर दर्शाने वाला चित्र।

कि वह प्रकाश किरणपुंज को वस्तु के ऊपर फेंकता है।

विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्रों के प्रति इलेक्ट्रोनों की अनुक्रिया (response) की प्रणाली पर ही इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी कार्य करता है। निर्वात में गर्म किए गए धातु के तंतु से ही इलेक्ट्रोन उत्सर्जित या उत्पन्न होते हैं, जो प्रकाश किरणों की तरह सीधी रेखा में चलते हैं। विद्युत-चुम्बकीय लेन्सों की सहायता से इलेक्ट्रोनों के किरणपुंज को फोकसित किया जाता है जो कि वास्तव में एक नर्म लोहे के खोल में ढके तार की कुंडलियाँ होती हैं। वस्तु से होकर गुजरने के बाद विद्युत्-चुम्बकीय लेन्स द्वारा किरणपुंज विक्षेपित (झुका) कर दिया जाता है। यह अभिदृश्यक लेन्स का कार्य करता है। इस प्रकार बनने वाले बिम्ब को फिर दूसरे लेन्स यानी प्रक्षेपीलेन्स (projector lens) से गुजारा जाता है, जो अंतिम प्रकार से बने और आवर्धित (बड़े) बिम्ब को प्रतिदीप्तिशील पर्दे (fluorescent screen) पर फेंक देता है। प्रतिदीप्तिशील पर्दे के स्थान पर फोटो की प्लेट का प्रयोग करके फिर उसका अनावरण किया जा सकता है। ये फोटो ही इलेक्ट्रोन फोटो होते हैं। इस प्रकार संयुक्त प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी और इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी
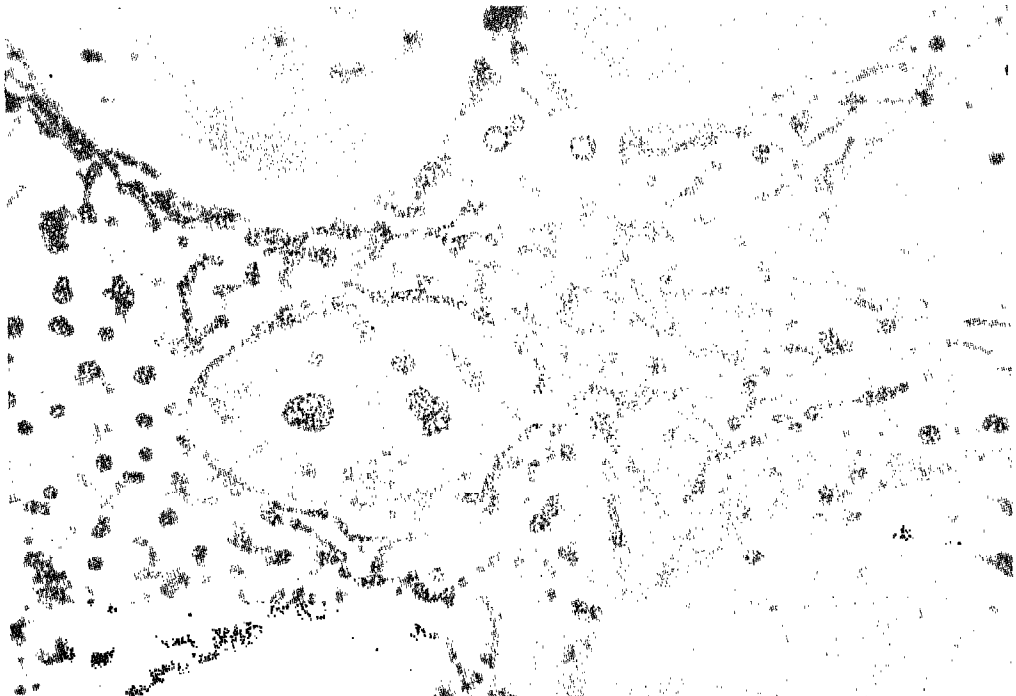
चित्र 2.4 क : प्रावस्था विपर्यासी सूक्ष्मदर्शी में जीवित कोशिका का निरीक्षण।

की बनावट में काफी कुछ समानता दिखाई देती है (चित्र 2.3)। लेकिन इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शी अपेक्षतया अधिक परिष्कृत और महँगा उपकरण है।
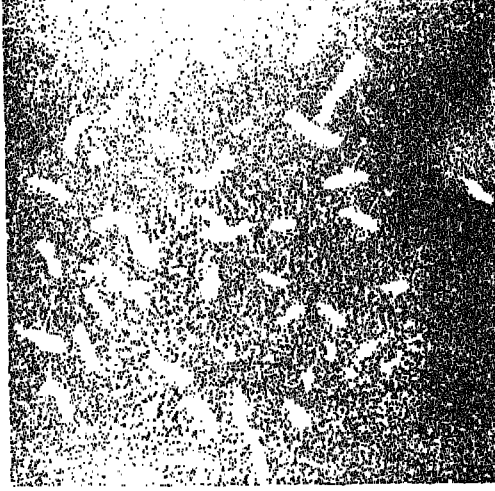
चित्र 2.4 ख : प्रतिदीप्तिशील सूक्ष्मदर्शी में गुणसूत्रों का फोटो।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी या इलक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शी में कोशिकाओं और ऊतकों के अध्ययन के लिए पहले उन्हें मृत किया जाता है। यानी कुछ रासायनिक विलयनों में स्थिर किया जाता है और फिर उनकी काट लेकर उन्हें कुछ रंगों या अभिरंजकों (stains) से रंगा जाता है ताकि अन्तर सुस्पष्ट हो सके। जीवित कोशिकाओं को इनमें नहीं देखा जा सकता। इसीलिए इनकी वास्तविक संरचनाओं और इनसे होकर देखी गई बारीकियों में प्रायः सन्देह भी व्यक्त किया जाता है।

प्रावस्था विपर्यासी (phase contrast) सूक्ष्मदर्शी वह युक्ति व साधन है, जिसकी सहायता से जीवित कोशिकाएँ या ऊतक देखे जा सकते हैं यद्यपि इसकी विभेदन-क्षमता सामान्य सूक्ष्मदर्शी से अधिक नहीं होती क्योंकि यह भी एक किस्म का प्रकाश सूक्ष्मदर्शी है जिसमें प्रतिदीप्ति के लिए प्रकाश का उपयोग होता है। तीव्रता (द्युति) अपने आयाम (amplitude) की प्रकाश-तरंगों के वर्ग की समानुपातिक होती है—यह इस सिद्धान्त पर आधारित है। जब प्रकाश तरंगें समांतर होती हैं तो यह कहा

चित्र 2.4 ग : ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी में कोशिका की सूत्री-विभाजन-प्रावस्था।

जाता है कि उनके आयाम भी उसी प्रावस्था में हैं। लेकिन यदि वे भिन्न-भिन्न कोणों पर चल रही हैं तो कहा जाएगा कि वे प्रावस्था के बाहर हैं।

प्रावस्था सूक्ष्मदर्शी में कोशिका के विभिन्न घटकों से होकर गुजरने वाली प्रकाश-किरणों और वस्तु से न होकर सीधे ही गुजरने वाली किरणों में प्रावस्था का अन्तर स्थापित किया जाता है। इन प्रावस्था-अन्तरों के कारण तीव्रता में विविधता उत्पन्न की जाती है ताकि अधिक से अधिक अन्तर आ जाय। इस अन्तर के कारण ही हम कोशिका और उसके विभिन्न घटकों का जीवित दशा में निरीक्षण कर सकते हैं (चित्र 2.4 क)।

प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी कई प्रकार के होते हैं, जैसे व्यतिकरण (Interference) सूक्ष्मदर्शी, प्रतिदीप्तिशील सूक्ष्मदर्शी, ध्रुवण (polarising) सूक्ष्मदर्शी, पराबैंगनी सूक्ष्मदर्शी (U V microscope) आदि। इनमें से प्रत्येक विशेष प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होता है। व्यतिकरण-सूक्ष्मदर्शी कोशिका के घटकों के विभिन्न बड़े अणुओं के मात्रात्मक अध्ययन के लिए प्रयुक्त होता है। पराबैंगनी प्रकाश द्वारा जब कुछ रासायनिक पदार्थों को किरणित किया जाता है तो वे विकिरण (radiation) को सोख कर दृश्यमान प्रकाश उत्पन्न करते हैं। ऐसे रसायनों को फ्लुओरोक्रोम कहते हैं। कुछ ऐसे फ्लुओरोक्रोम कोशिका-संरचनाओं के अणुओं के विशिष्ट भागों से बंध जाते हैं। फ्लुओरोक्रोम की सहायता से कोशिका की संरचनाओं अथवा पदार्थों की सूक्ष्म मात्रा का पता लगाने वाले सूक्ष्मदर्शी को **प्रतिदीप्तिशील सूक्ष्मदर्शी** (चित्र 2.4 ख) कहते हैं। ध्रुवण-सूक्ष्मदर्शी में कोशिकाओं के उन क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है जहाँ घटक सुव्यवस्थित रूप में रहते हैं (चित्र 2.4 ग)। यह कार्य ध्रुवक (polarizer) नाम के प्रिज्म द्वारा किया जाता है जो कि सूक्ष्मदर्शी में लगा रहता है। पराबैंगनी सूक्ष्मदर्शी का उपयोग यह है कि उससे कोशिका के पराबैंगनी प्रकाश को जोरों से सोखने वाले कुछ पदार्थों का पता चल जाता है, जैसे कि न्यूक्लीक अम्ल (आर० एन० ए० और डी० एन० ए०)। पराबैंगनी सूक्ष्मदर्शी द्वारा ली गई तस्वीरों में बाकी क्षेत्र की तुलना में कोशिका में न्यूक्लीक अम्ल की सांद्रता या गाढ़ेपन वाले क्षेत्र गहरे नजर आते हैं।

चित्र 2.5 : रजत कणों का फोटो—(A) केन्द्रक में (B) कोशिकाद्रव्य में।

कोशिकारसायन (Cytochemistry)

कोशिकारसायन की तकनीक सामान्यतया कोशिकाओं में विशेष घटकों या अवयवों का पता लगाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसमें उन विशेष स्थलों पर रंगों का अंतर या विशेष प्रकार का जमाव किया जाता है जहाँ पर कोशिका में वह घटक विद्यमान रहता है। इसमें विशेष

प्रकार के पदार्थ को बांधने या रंगने वाले रंजकों (dyes) का इस्तेमाल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, **शिफ अभिकर्मक** (reagent) कुछ दशाओं में केवल डी० एन० ए० (DNA) के साथ ही अभिक्रिया करता है, इसलिए कोशिका में डी० एन० ए० की उपस्थिति का पता लगाने के लिए इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी तरह उचित परिस्थितियों में एंजाइमों का वितरण ज्ञात करने के लिए एंजाइमों के अवस्तरों (substrates) का प्रयोग किया जा सकता है। यह सम्भव है क्योंकि कुछ दशाओं में अवस्तरों के साथ कुछ एंजाइमों की अभिक्रिया से अविलेय (अनघुल) उत्पाद उत्पन्न हो सकते हैं जो कि सूक्ष्मदर्शी में दिखाई दे जाते हैं। उचित दशाओं में इनमें से कुछ तकनीकें मात्रात्मक अध्ययन या अनुसंधानों के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती हैं क्योंकि रंजक द्वारा इस्तेमाल की गई मात्रा और अभिरंजित या रंगे गए घटकों की मात्रा में प्रत्यक्ष समानुपातिक सम्बन्ध हो सकता है। इस प्रकार के मात्रात्मक विश्लेषण के लिए **सूक्ष्मस्पेक्ट्रम प्रकाशमिति** (microspectrophotometry) की विशेष विकसित तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस तरह कोशिका-रसायन की विधियों द्वारा हमारे लिए कोशिका के कई घटकों का पता लगाना संभव हो गया है। इन तकनीकों से इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में इनके वितरण तक को देखना संभव हो गया है क्योंकि इनसे इन स्थलों का अधिक सही तरह से पता लगाया जा सकता है।

स्वविकिरणीचित्रण (Autoradiography)

कोशिकाओं में अणुओं के संश्लेषण के अध्ययन और उपापचयी (metabolic) क्रियाओं का पता लगाने के लिए जिन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है उनमें सबसे महत्वपूर्ण तकनीक **स्वविकिरणीचित्रण** की है। बृहदणुओं (macromolecules) या बड़े अणुओं की उपापचयी क्रियाओं का पता लगाने के लिए कुछ विघटनाभिक (रेडियोऐक्टिव) पूर्ववर्तियों (precursors) का प्रयोग किया जाता है, जो कि बृहदणुओं के संश्लेषण में निर्माणकारी खंडों का कार्य करते हैं। बहुतायत से इस्तेमाल होने वाले समस्थानिक (isotope) हैं—ट्रिटियम (3_H), कार्बन (14_C) और फॉसफोरस (32_P)। इन समस्थानिकों को पूर्ववर्तियों में समाविष्ट कर कोशिकाओं में प्रविष्ट कर दिया जाता है और फिर नियमित रूप से समय-समय पर कोशिकाओं को स्थिर करके इनके मार्ग का निरीक्षण किया जाता है। ट्रिटियम या कार्बन वाली थाइमिडीन का प्रयोग डी० एन० ए० के संश्लेषण में, ट्रिटियम या कार्बन वाली यूरिडीन का प्रयोग आर० एन० ए० (RNA) के संश्लेषण का अध्ययन करने में और ट्रिटियम या कार्बन वाले अम्लों का प्रयोग प्रोटीन संश्लेषण का पता लगाने में किया जाता है। इस तकनीक में विघटनाभिक पूर्ववर्तियों को प्रविष्ट करने के बाद यदि जरूरी हुआ तो कोशिकाओं को स्थिर किया जाता है और उनकी काट (section) ली जाती हैं। इन काटों को इसके बाद फोटोग्राफी के पायसों (emulsions) द्वारा विलेपित किया जाता है। कुछ समय तक अंधेरे में इन काटों का अनावरण करने के बाद फिर फोटोग्राफी की सामान्य तकनीक के अनुसार इनको डेवलप किया जाता है। प्रकाश किरणों की तरह विघटनाभिक पदार्थ से उत्सर्जित या निकलने वाले विकिरण (radiation) पायस के रजत-लवण (सिलवर सॉल्ट) को अपचित (reduce) करके धात्विक रजत कण उत्पन्न करते हैं। ये रजत कण ठीक फोटो फिल्म की तरह बिम्ब बनाते हैं। रजत कणों की उपस्थिति, स्थिति और मात्रा में हमें वे आँकड़े मिल सकते हैं, जो समाविष्ट होने वाले पूर्ववर्तियों और बृहदणुओं से सम्बन्धित क्रियाओं में लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। कोशिका के घटकों के गत्यात्मक पहलुओं के अध्ययन के लिए स्वविकिरणीचित्रण बहुत उपयोगी है। उदाहरण के लिए, यदि कोशिकाओं में विघटनाभिक यूरिडीन प्रविष्ट की जाती हैं और कुछ ही मिनट बाद इन्हें स्थिर कर दिया जाता है तो सभी कण लगभग केन्द्रकों पर ही पाए जाएँगे, जिससे सिद्ध होता है कि आर० एन० ए० केन्द्रकों में संश्लेषित होता है, कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) में नहीं। यदि अनावरण और स्थिरीकरण के बीच के समय को एक या दो घंटे और बढ़ा दिया जाय तो ये अधिकांश कण कोशिका द्रव्य में भी पाए जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आर० एन० ए० केन्द्रक में संश्लेषित होता है और फिर कोशिका द्रव्य में पहुँचा दिया जाता है। कोशिका के उपापचय सम्बन्धी अध्ययन में ये खोजें बहुत महत्व की हैं।
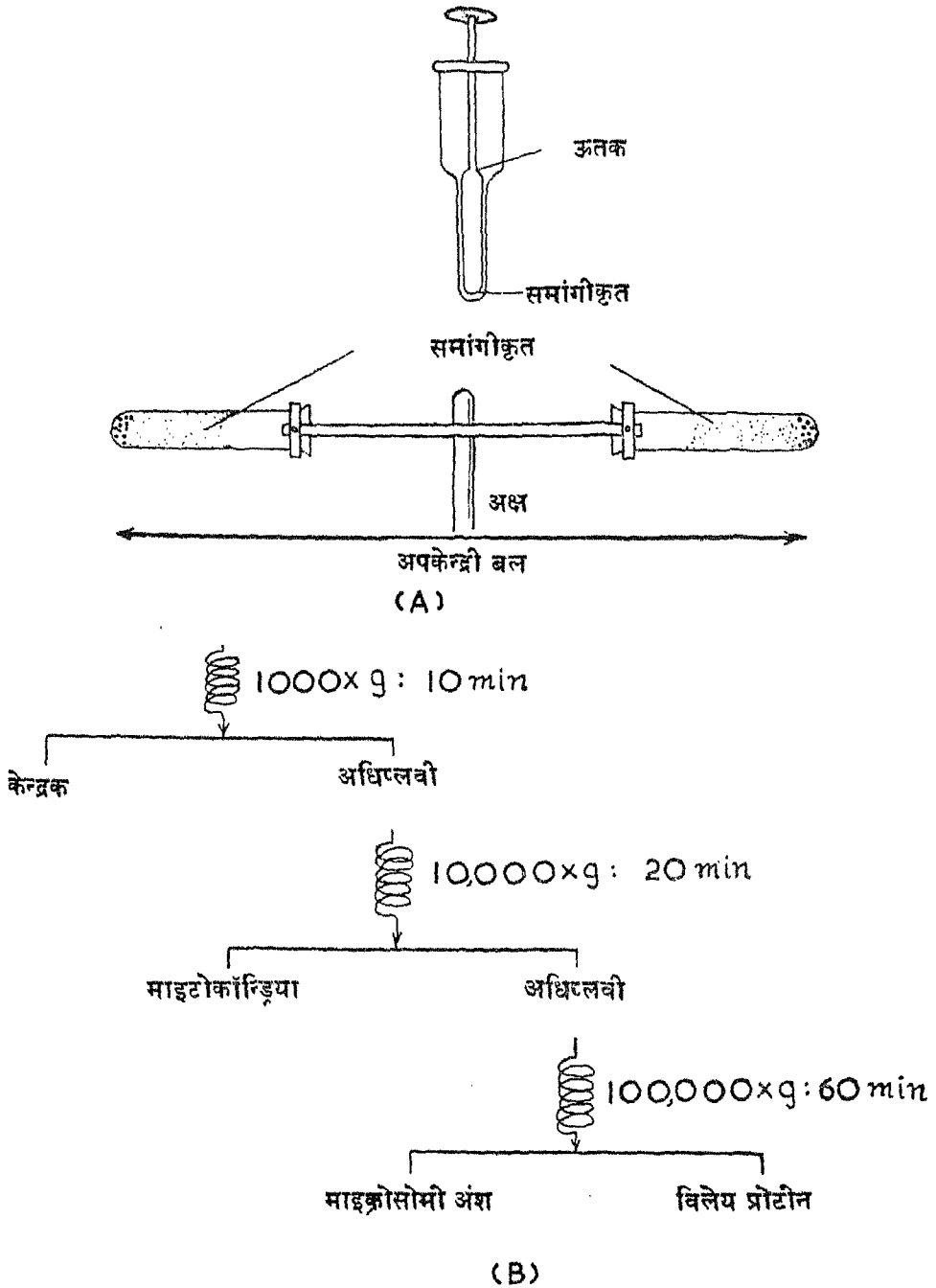
चित्र 2.6 : कोशिका के विभिन्न अंशों को पृथक करने मे सम्बन्धित उपकरण (A) और तकनीक (B)।

कोशिका-प्रभाजन (Cell Fractionation)

कोशिका के रसायनविज्ञान के अध्ययन की एक और महत्वपूर्ण और परिवर्तनशील तकनीक है जिसे कोशिका प्रभाजन कहते हैं (चित्र 2.6)। ऊतकों और कोशिकाओं को कुछ माध्यमों (media) में इस तरह पीसा और समांगीकृत किया जाता है कि कोशिका की संरचनाएँ अच्छी दशा में बनी रहती हैं। फिर कोशिका के इन खंडों या टुकड़ों के समांगीकृत अंशों को परखनली में रखकर उनका अपकेन्द्रण (Centrifugation) किया जाता है। कोशिका-संरचनाओं में इन खंडों का अवसादन (sedimentation) मुख्यतया इनके वज़न और साइज़ पर निर्भर करता है। चूंकि कोशिका के अधिकांश अंगक (organelles) वज़न और साइज़ में भिन्नता रखते हैं इसलिए इन्हें आसानी से अलग किया जा सकता है। अपकेन्द्रण की विधि द्वारा इन्हें अलग करने को **विभेदक अपकेन्द्रण** कहते हैं। इसमें सामान्यतया सूक्रोस या अन्य शर्कराओं के विलयनों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इनसे घनत्व ठीक बना रहता है और कोशिका के खंडों का ढेर नहीं बनता। इस विधि की सहायता से केन्द्रकों, माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवकों (chloroplasts) लयनकायों, (lysosomes), केन्द्रिकों (nucleoli), सूक्ष्मकायों या सूक्ष्मपिंडों (microsomes—अन्तर्द्रव्यी जालिका के खंड) आदि के लगभग साबुत और शुद्ध अंशों को आसानी से अलग किया जा सकता है। फिर इन अंशों का जीवरासायनिक विश्लेषण किया जा सकता है।

जीवरासायनिक तकनीक

अधिक इस्तेमाल होने वाली कुछ जीवरासायनिक विधियों की संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है :

1. विलयन का pH किसी मापी (मीटर) की सहायता से सही-सही मापा जा सकता है, जो कांच की पतली झिल्ली के आरपार विभिन्न H+ सान्द्रताओं (Concentration) को पृथक कर देता है। (H+) से सम्बन्धित विभवांतर स्थापित हो जाता है, जो प्रवर्धन (amplification) के बाद वास्तविक pH मान के रूप में पढ़ा जा सकता है।
2. जीवरासायनिक यौगिकों में यह गुण है कि वे विभिन्न तरंगदैर्ध्य वाले प्रकाश का अधिक से अधिक अवशोषण करते हैं। ज्ञात सान्द्रता वाले विलयनों की तुलना में कुछ खास तरंगदैर्ध्यों वाले अवशोषण प्रतिशत को माप कर जीवरासायनिक पदार्थों की अल्प मात्रा का भी मात्रात्मक निर्धारण किया जा सकता है। कभी-कभी कुछ अभिक्रियाओं के परिणामस्वरूप कुछ रंग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे रंगीन विलयनों का उपयोग अवशोषण सम्बन्धी अध्ययन में किया जा सकता है। क्योंकि इनसे बिलकुल सही परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। इस विधि को **स्पेक्ट्रम प्रकाशमिति** (spectrophotometry) कहते हैं।
3. कागज़ के टुकड़ों, या किसी उपयुक्त पदार्थ के स्तम्भ पर जिस दर से कार्बनिक (और अकार्बनिक) यौगिक चलते हैं, उसके अनुसार उनकी अल्प मात्रा को भी अलग करना संभव है। इससे अभिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले पदार्थों की सूक्ष्म मात्रा की पहचान और परीक्षा हो जाती है क्योंकि नियंत्रित दशाओं में किसी पदार्थ के चलने की दर स्थिर होती है और इस तरह अज्ञात की मानक विलयनों (Standard solutions) से तुलना की जा सकती है। इस तकनीक को **वर्णलेखनविज्ञान** (Chromatography) कहते हैं।
4. अमीनो अम्ल सरीखे छोटे आणविक समूहों और आयननीय (ionisable) समूहों के कार्बनिक यौगिकों के निष्कर्षण और शुद्धि के लिए आयन विनिमय वाले रालों (रेज़िन) का प्रयोग किया जाता है।
5. **द्रुतअपकेन्द्रित्र** (ultracentrifuges) बहुत अधिक चाल वाले अपकेन्द्रित्र होते हैं (प्रति मिनट 50,000 परिक्रमण से अधिक), जिनकी सहायता से कोशिका के घटकों को ही नहीं बल्कि विभिन्न घनत्व वाली बड़ी आणविक जातियों तक को अलग किया जा सकता है।
6. रवेदार रूप वाले अणुओं की संरचना के विश्लेषण की एक परिष्कृत और जटिल विधि **ऐक्स-किरण क्रिस्टलविज्ञान** (crystallography) है। यह विधि ऐक्स-किरणों के विवर्तन प्रतिरूपों (diffraction patterns) पर आधारित हैं; जैसे ही वे पदार्थ के रवे (क्रिस्टल) से होकर चलते हैं उनको माप लिया

जाता है (चित्र 2.7)। इस प्रकार के अध्ययन से एंजाइम सरीखे पदार्थों की आणविक संरचना में परमाणुओं के क्रम से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह तकनीक बहुत अधिक उपयोगी है क्योंकि विल्किन्स, वाट्सन और क्रिक द्वारा डी० एन० ए० की द्विकुंडली (double helix) के आणविक विन्यास के निर्धारण के लिए भी इसी का प्रयोग किया गया था।
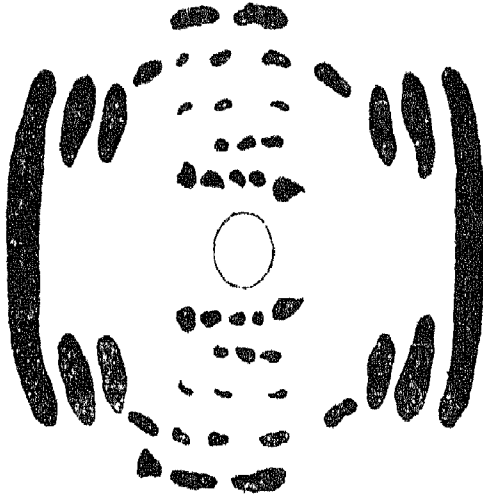
चित्र 2.7 : डी० एन० ए० के एक्स-किरण विवर्तन-प्रतिरूप।

ऊतक-संवर्ध (Tissue culture)

आधुनिक कोशिका-अनुसंधान में ऊतक-संवर्ध की विधि बहुत महत्वपूर्ण है। किस्म-किस्म की कांच या प्लास्टिक की नलियों, शीशियों या बोतलों में, विशेष तरल माध्यमों में, ऊतकों के टुकड़ों या पृथक् की गई कोशिकाओं को उगाया जा सकता है। उचित माध्यम में ये कोशिकाएँ लंबे समय तक जीवित ही नहीं रहतीं बल्कि वृद्धि और परिवर्धन भी करती हैं। संवर्ध वाली कोशिकाओं का उपयोग कोशिका-उपापचय की अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान के लिए किया जा सकता है; जैसे कि कैन्सर-अनुसंधान में ऊतक संवर्ध कोशिकाएं आजकल बहुतायत से प्रयुक्त की जा रही हैं। कोशिकानुवंशिक (Cytogenetic) अनुसंधान में मानव और प्राणियों की श्वेताणु (leucocyte) संवर्ध-कोशिकाएँ गुणसूत्र निर्मितियों (chromosome preparations) में प्रयुक्त की जाती हैं। मानव सम्बन्धी ऐसे अनुसंधानों द्वारा गुणसूत्रीय अपसामान्यताओं और जन्मजात रोगों से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गई है। विभेदन और वृद्धि-संबंधी प्रक्रियाओं वाले अनुसंधानों में पादप कोशिका-संवर्धों का उपयोग किया गया है। आनुवंशिक इंजीनियरी सम्बन्धी अध्ययन में भी ऊतक संवर्ध कोशिकाओं का प्रयोग किया गया है।

इस तरह ये तो कोशिका सम्बन्धी आधुनिक अनुसंधान में प्रयुक्त की जाने वाली केवल कुछ ही महत्वपूर्ण तकनीकें हैं। इनके अलावा और भी हैं। इससे सुस्पष्ट हो जाता है कि कोशिका के रहस्यों का पर्दाफाश करने के लिए कोशिका-जीवविज्ञानी के पास आज अनेक प्रकार के यंत्र, औज़ार और तकनीकें हैं। फिर भी कोई भी एक औज़ार अकेले पूरा नहीं पड़ता और अनुसंधान के दौरान किसी विशेष समस्या के निराकरण के लिए कई विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। इस प्रकार कोशिका के अध्ययन से एकत्र की गई जानकारी से हमारा विश्वास और भी सुदृढ़ हो जाता है कि यही जीवन का आधार है, और साथ ही हमें यह बोध भी होता है कि जीवन की इस क्षुद्र इकाई यानी कोशिका की अपरिमित जटिलताओं के बारे में हमें अभी सचमुच कितना कम मालूम है।

प्रश्न

1. कोशिका के अध्ययन में प्रयुक्त की जाने वाली जीवरासायनिक विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2. "कोशिका-जीवविज्ञान की प्रगति का इस क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली तकनीकों और यंत्रों की विकासमान प्रगति से सीधा सम्बन्ध है" -- इस कथन की पुष्टि कीजिए।

3. स्वविकिरणीचित्रण की तकनीक का वर्णन कीजिए।

4. ऊतक-संवर्ध से आप क्या समझते हैं ? कोशिका-जीवविज्ञान के अध्ययन में यह किस प्रकार लाभकारी है ?

5. इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी और प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी की परस्पर तुलना कीजिए और उनके गुण व दोषों का विवेचन कीजिए।

6. विभेदन (resolution) और आवर्धन (magnification) में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

7. प्रावस्था विपर्यासी सूक्ष्मदर्शी की कार्यप्रणाली और लाभदायकता पर प्रकाश डालिए।

अध्याय 3

कोशिका का रूपचित्र (Portrait)

कोशिका-सिद्धान्त के अनुसार सभी जीवधारी या तो एकल कोशिका के रूप में या कोशिकाओं की कॉलनियों के रूप में होते हैं, और उनकी यानी जीवन की इकाई कोशिका ही है। अतः यह स्वाभाविक है कि यदि हम यह जान जायें कि कोशिका किन चीजों की बनी होती है और वह किस प्रकार कार्य करती है तो हम आसानी से समझ जाएँगे कि जीवन क्या है। लेकिन यह आसान बात नहीं है। अधिकांश कोशिकाएँ साइज़ में बहुत छोटी व सूक्ष्मदर्शीय (microscopic) और बहुत ही अधिक जटिल इकाइयों के रूप में होती हैं। कोशिका-जीवविज्ञान की रहस्यात्मक गुत्थियों को सुलझाने की दिशा में काफी सफलता प्राप्त कर ली गई है लेकिन फिर भी कोशिका के भारी जटिल तंत्र को समझने-बूझने के लिए अभी बहुत कुछ बाकी है।

कोशिका की परिभाषा करना चाहें तो कह सकते हैं कि, यह जीवद्रव्य (protoplasm) का पुंज या पिंड है जो एक झिल्ली द्वारा घिरा व ढका रहता है और प्रायः विभिन्न घटकों की विशिष्ट सघनता अथवा झिल्लियों द्वारा उपखंडों या कक्षों में बंटा होता है। किन्तु यह परिभाषा काफी नहीं है क्योंकि कोशिका अक्रिय घटकों का समुच्चय मात्र नहीं है। न ही कोशिका विषमांगी अणुओं का जटिल तंत्र है। वास्तव में कोशिका एक ऐसी इकाई है जो सदैव क्रियाशील रहती है और आवश्यकता के अनुसार अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोशिका एक दूसरे पर आश्रित और पारस्परिक क्रियाशील घटकों का बहुत अधिक सुव्यवस्थित तंत्र है। इन सब बातों की जानकारी के बाद अब हम कोशिका का वर्णन करने के लिए आगे बढ़ सकते हैं। प्ररूपी (typical) या सामान्य प्रकार की कोई कोशिका नहीं होती क्योंकि कोशिकाएँ अपने कार्यों के अनुसार आकृति, साइज (आकार) और अन्तर्वस्तुओं (contents) की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं।

साइज

यद्यपि कुछ कोशिकाएँ कोरी या खाली आँख से दिखलाई दे जाती हैं लेकिन अधिकांश सूक्ष्मदर्शीय ही होती हैं जिनका साइज़ 10 से लेकर 100 माइक्रॉन तक होता है। उदाहरण के लिए, शुतुर्मुर्ग का अंडा सबसे बड़ी प्राणि कोशिका है जो आकार में 170×135 मिमी होता है, और सबसे छोटी कोशिका प्लूरोन्यूमोनिया (pleuropneumonia) के जीवाणुओं (bacterium) की है जिन्हें पी० पी० एल० ओ० (PPLO—प्लूरोन्यू-मोनिया सरीखे जीव) कहते हैं और जिनका आकार 0.1 से 0.5 माइक्रॉन के बीच होता है। हाइड्रोजन के परमाणु की अपेक्षा पी० पी० एल० ओ० का साइज़ 1000 से 5000 गुना तक ही होता है अधिक नहीं। (चित्र 3.1 क, ख, ग)

पौधों में कुछ शैवाल (algae) ऐसे हैं जिनमें महा-काय या बड़े आकार की कोशिकाएँ होती हैं। **ऐसीटेबुलेरिया** नाम के शैवाल में एक कोशिका होती है जो लम्बाई में करीब 10 सेंटीमीटर होती है (चित्र 3.2)। मानव शरीर
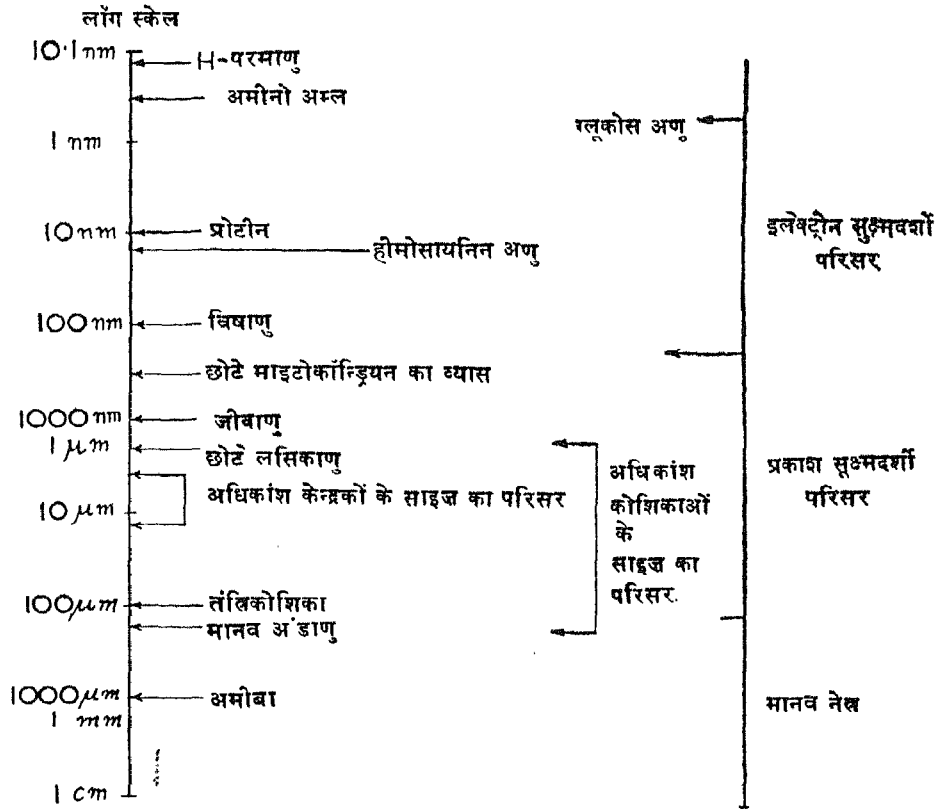
चित्र 3.1 क : कोशिकाओं, अणुओं और परमाणुओं के साइजपरिसरों (ranges) तथा विभिन्न सूक्ष्मदर्शियों का विभेदन-परिसर दिखलाने वाले लघुगणकीय (लॉगेरिथ्मीय) मापक्रम (scale)।
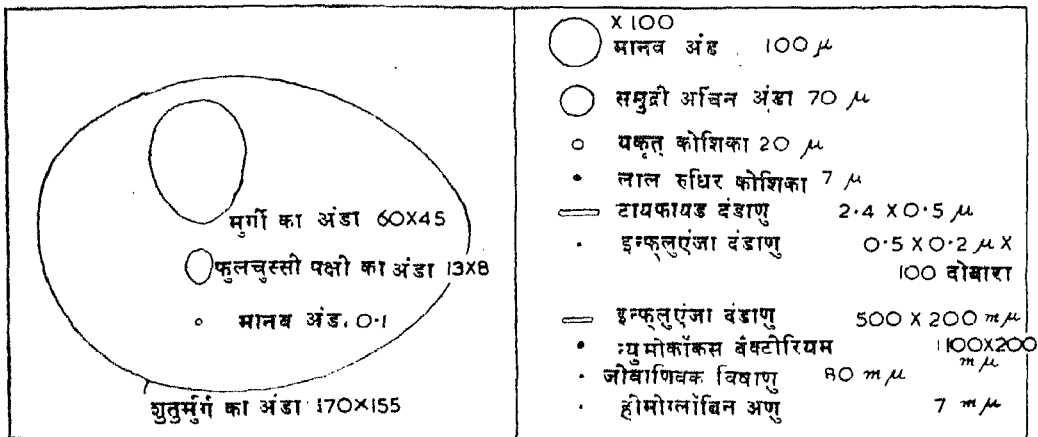
चित्र 3.1 ख : विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं के साइजों का मापक्रम, जिनमें जीवाण्विक विषाणु (bacterial virus) और हीमोग्लॉबिन के अणु को तुलनात्मक अध्ययन के लिए शामिल किया गया है। इसमें दिए गए शुतुर्मुर्ग के अंडे और पक्षियों के अंडों को आधा करके दिखाया गया है।
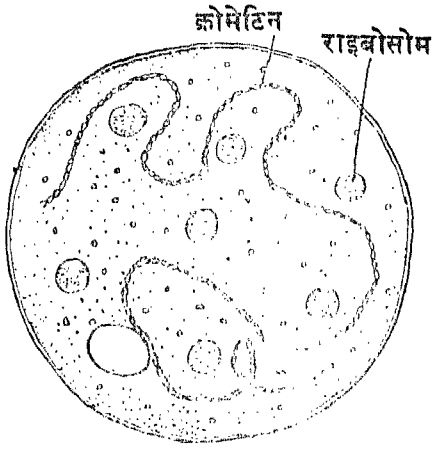
चित्र 3.1 ग : प्लूरोन्यूमीनि ' सरीखे जीवों (पी. पी. एल. ओ.) की परासंरचना ।

में सबसे लम्बी कोशिकाएँ तंत्रिका (nerve) की कोशिकाएँ होती हैं जो प्राय: एक गज लम्बी होती है। यद्यपि पेशियों की कोशिकाएँ भी बड़ी होती हैं किन्तु वृक्क (Kidney), यकृत (liver), आंत्र आदि की अधिकांश कोशिकाएँ व्यास में 20 से 30 माइक्रॉन के बीच की होती हैं। अधिकांशतया कोशिका के कार्य और साइज़ का सीधा सम्बन्ध होता है। साइज़ में कोशिका झिल्ली का पृष्ठीय क्षेत्रफल महत्वपूर्ण होता है। कोशिका अपनी सतह द्वारा ही अपने पास-पड़ोस से पोषक पदार्थों को प्राप्त करती और मल पदार्थ विसर्जित करती है। इसमें पूरा पृष्ठीय क्षेत्रफल महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे कोशिका द्वारा वातावरण से पदार्थ-विनिमय की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। उपापचय की दृष्टि से अधिक सक्रिय कोशिकाएँ सामान्यतया आयतन में अधिक बड़ी नहीं हो सकतीं। उपापचय की क्रिया के लिए आवश्यक पोषक पदार्थों की मात्रा कोशिका के आयतन पर निर्भर करती है। बड़े शरीर की तुलना में छोटे शरीर में प्रति इकाई आयतन में अधिक सतह होती है, जैसा कि चित्र 3.3 से देखा जा सकता है। अत: जिस कोशिका की उपापचयी आवश्यकताएँ अपनी सतह की विनिमय-क्षमता से अधिक हो जाती हैं उसका आयतन बढ़ नहीं सकता। इस तरह दो प्रमुख कारक या कारण तो हैं ही जो कोशिका का आकार सीमित रखते हैं : (1) कोशिका की अपने वातावरण से आक्सीजन तथा अन्य पदार्थ प्राप्त करने की आवश्यकता और (2) उसके केन्द्रक की नियमन यानी नियंत्रण करने की क्षमता। कोशिकाओं के आकार और जीव के शरीर के आकार में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी बात को उदाहरण के साथ समझाकर कहें तो कह सकते हैं कि हाथी अथवा तिमि (ह्वेल) सरीखे बड़े प्राणियों की कोशिकाएँ बड़ी नहीं होतीं।
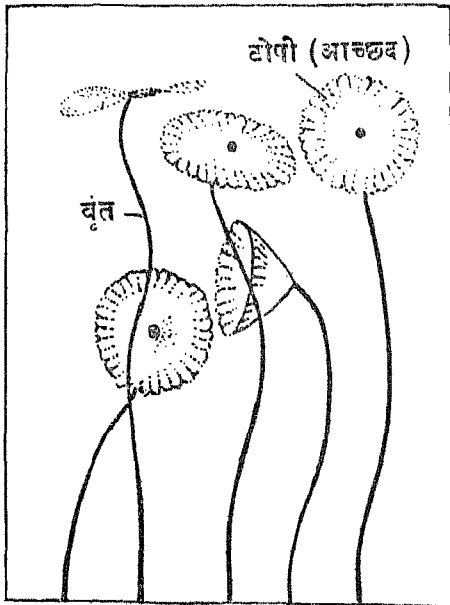
चित्र 3.2 : एककोशिक शैवाल—ऐसीटेबुलेरिया।

आकृति (Shape)

कोशिकाओं की आकृति के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि साइज़ (आकार) की अपेक्षा कोशिकाओं की आकृति में भारी विविधता है। इस बात से यह भी प्रदर्शित होता है कि कोशिका के रूप और कार्य में गहरा सम्बन्ध है। कुछ कोशिकाएँ, जैसे कि अमीबा की, और श्वेत रुधिर कोशिकाएँ निरन्तर अपनी आकृति बदलती रह सकती हैं लेकिन बाकी सभी कोशिकाएँ पूरी जिन्दगी अपनी एक ही आकृति
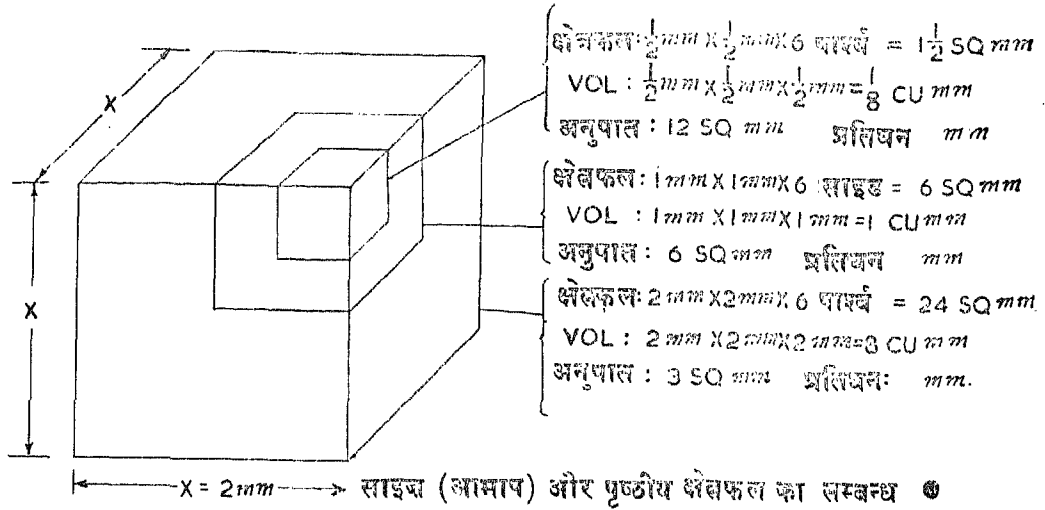
चित्र 3.3 : पृष्ठीय क्षेत्रफल पर साइज (आकार) का प्रभाव। ज्यों-ज्यों आयतन कम होता है त्यों-त्यों आवृत प्रति इकाई आयतन सतह बढ़ती जाती है।

बनाए रखती हैं। मुक्त रूप से रहने वाली कोशिकाओं में, जैसे कि आदि जन्तुओं (प्रोटोज़ोआ प्राणियों) और शैवालों की कोशिकाओं में, रूप की दृष्टि से भारी विविधता पायी जाती है यानी सामान्य गोल आकृति से लेकर अनोखी व जटिल प्रकार की आकृति। बहुकोशिक (multicellular) जीवों की कोशिकाओं में तो यह भी होता है कि एक ही जीव में कई प्रकार की आकृति की कोशिकाएँ पायी जाती हैं। कोशिका की आकृति मुख्य रूप से कुछ कारकों (factors) द्वारा नियंत्रित होती है, जैसे कार्य, उम्र, श्यानता या गाढ़ापन (viscosity), कोशिका-भित्ति (cell-wall), बाहरी दवाव या तनाव तथा भीतरी और बाहरी कंकाल (skeleton)। कार्य विशेष के अनुसार विशेष प्रकार से अनुकूलित कोशिकाओं के उदाहरण हैं—तंत्रिका (nerve) और पेशी की कोशिकाएँ।

कोशिका-संख्या

एककोशिका (unicellular) जीव एक अकेली कोशिका के बने होते हैं, लेकिन बहुकोशिक जीव कई कोशिकाओं के बने होते हैं और ये कोशिकाएँ भी कई प्रकार की होती हैं। मानव के मस्तिष्क के वल्कुट (cortex) में 9 अरब 20 करोड़ कोशिकाएँ हो सकती हैं। मानव के रक्त में 300 हजार खरब (30×10^{15}) कोशिकाएँ होती हैं और 60 किलो वजनवाले मानव शरीर में 60×10^{15} कोशिकाएँ हो सकती हैं। लेकिन यह जरूर है कि सभी बहुकोशिक जीवों की शुरुआत एक कोशिका या युग्मनज (zygote) से ही होती है, और बाद में जीव वृद्धि के दौरान अनेक प्रकार के विभाजन से अन्य सब कोशिकाएँ व्युत्पन्न होती हैं। (चित्र 3.4)

शारीरिक रचना

हम फिर से इस बात को दोहरा दें कि सभी कोशिकाओं की अपनी विशेष प्रकार की भूमिका होती है, और इसी कारण उनके रूप और कार्य में भारी विविधता पायी जाती है। इसलिए जिस सरल कोशिका का वर्णन हम करेंगे उसे प्ररूपी या सामान्य कोशिका नहीं समझा जा सकता। सरलीकरण के लिए, भिन्न-भिन्न किस्मों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि सामान्य कोशिकाओं को हम तीन प्रतिनिधि प्रकारों में बाँट सकते हैं। जीवाणु (बैक्टीरिया) सरीखे सूक्ष्मजीवों की कोशिकाएँ पौधे व प्राणियों सरीखे उच्चतर पौधों की कोशिकाओं

चित्र 3.4 : विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ ।

से भिन्न होती हैं। फिर पौधे की कोशिका भी प्राणी की कोशिका से भिन्न होती है। लेकिन इन अन्तरों के बावजूद, सभी में कुछ एक-जैसे सामान्य लक्षण पाए ही जाते हैं। प्ररूपी या सामान्य कोशिका में दो मुख्य उपखंड या कक्ष पाए जा सकते हैं—केन्द्रक और कोशिका द्रव्य (cytoplasm)। जीवाणुओं और अन्य सूक्ष्म जीवों की कोशिकाओं में सुगठित केन्द्रक और केन्द्रक झिल्ली नहीं पायी जाती जो कोशिकाद्रव्य को केन्द्रक से पृथक् कर सके, और इसीलिए ऐसी कोशिकाओं को असीम केन्द्रकी (prokaryotic) कोशिकाएँ कहते हैं। उच्चतर जीवों की कोशिकाओं में एक निश्चित केन्द्रकीय झिल्ली होती है जो उन्हें बाँट कर कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक नाम के दो सुस्पष्ट उपखंड या कक्ष बनाती है। इन कोशिकाओं को ससीम केन्द्रकी (eukaryotic) कोशिकाएँ कहते हैं। इस प्रकार की ससीम केन्द्रकी पादप-कोशिकाओं में सेलुलोस की कोशिका भित्तियाँ, बड़ी धानियाँ (vacuoles) और

चित्र 3.5 क : जीवाणु-कोशिका का आरेखी चित्र।

लवक (plastids) होते हैं, और इस तरह से प्राणि-कोशिकाओं से भिन्न होती हैं क्योंकि उनमें ये चीजें नहीं पायी जातीं। (चित्र 3.5 क और ख)

सभी कोशिकाओं में कोशिका-झिल्ली या जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) होती है, जो भीतरी भागों को आवृत किए रहती है और कुछ पदार्थों को तो अपने से होकर अन्दर व बाहर आने-जाने देती है लेकिन बाकी पदार्थों को नहीं। ऐसी झिल्ली को चुनाव करने की क्षमता वाली पारगम्य (permeable) झिल्ली कहा जाता है। सभी पौधों व प्राणियों की कोशिकाओं में एक गोलाकार पिंड होता है जिसे केन्द्रक कहते हैं। केन्द्रक में एक या अधिक गोलाकार व घने छोटे पिंड होते हैं जिन्हें केन्द्रिक (nucleolus) कहते हैं और जिनमें राइबोन्यूक्लीक अम्ल या आर० एन० ए० (RNA) बहुत अधिक मात्रा में होता है। केन्द्रक में धागे-जैसी संरचनाएँ भी होती हैं, जिन्हें गुणसूत्र (chromosomes) कहते हैं, और जो किसी किसी अवस्था में ही देखी जा सकती हैं। इन्ही गुणसूत्रों में जीन (genes) होते हैं जिनमें पैतृकता से सम्बद्ध पदार्थ डीआक्सीराइबोन्यूक्लीक अम्ल यानी डी०एन०ए० (DNA) होता है। अन्तिम रूप से डी० एन० ए० ही वह पदार्थ है जो कोशिकाओं के कार्यों के नियंत्रण वाली जिम्मेदारी का काम निभाता है। केन्द्रक एक झिल्ली द्वारा बँधा रहता है, और कोशिकाद्रव्य केन्द्रकीय तथा जीवद्रव्य-कलाओं (प्लैज्मा झिल्लियों) के बीच पसरा रहता है।
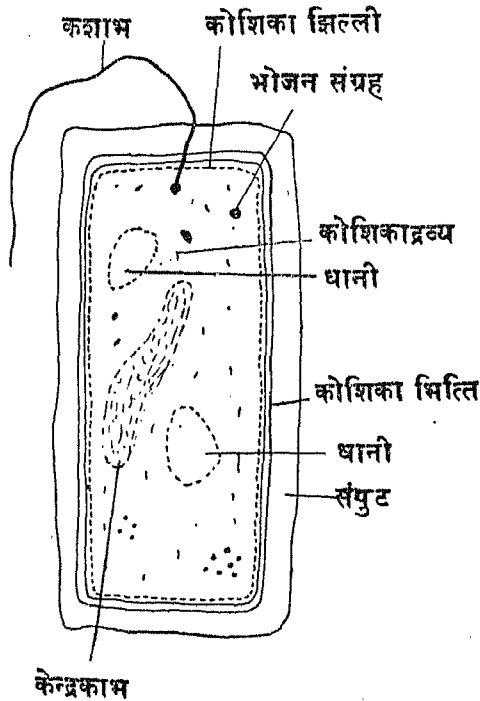
कोशिकाद्रव्य में चारों ओर झिल्लियों से ढके विशेष पिंड होते हैं जिन्हें छोटे अंग या अंगक (organelles) कहते हैं। संक्षेप में ये कुछ इस तरह है : धागे-जैसे माइटोकॉन्ड्रिया, जो खाद्य पदार्थों से ऊर्जा (energy) प्राप्त करते हैं और उसे जैविक दृष्टि से लाभकारी रूप में बदल देते हैं; पौधों की कोशिकाओं के लवक (हरितलवक) जिनमें सूर्य की विकिरण ऊर्जा को शर्करा-जैसे अणुओं की रासायनिक ऊर्जा में बदलने वाले वर्णक (pigments) होते हैं; गॉल्जी समुच्चय (Golgi apparatus), जो कि सामान्य रूप से स्रावी (secretory) कोशिकाओं में पाया जाने वाला नाल-तंत्र (canal system) है; और लयन-

चित्र 3.5 ख : पादप-कोशिका व प्राणि कोशिका की आपसी तुलना।
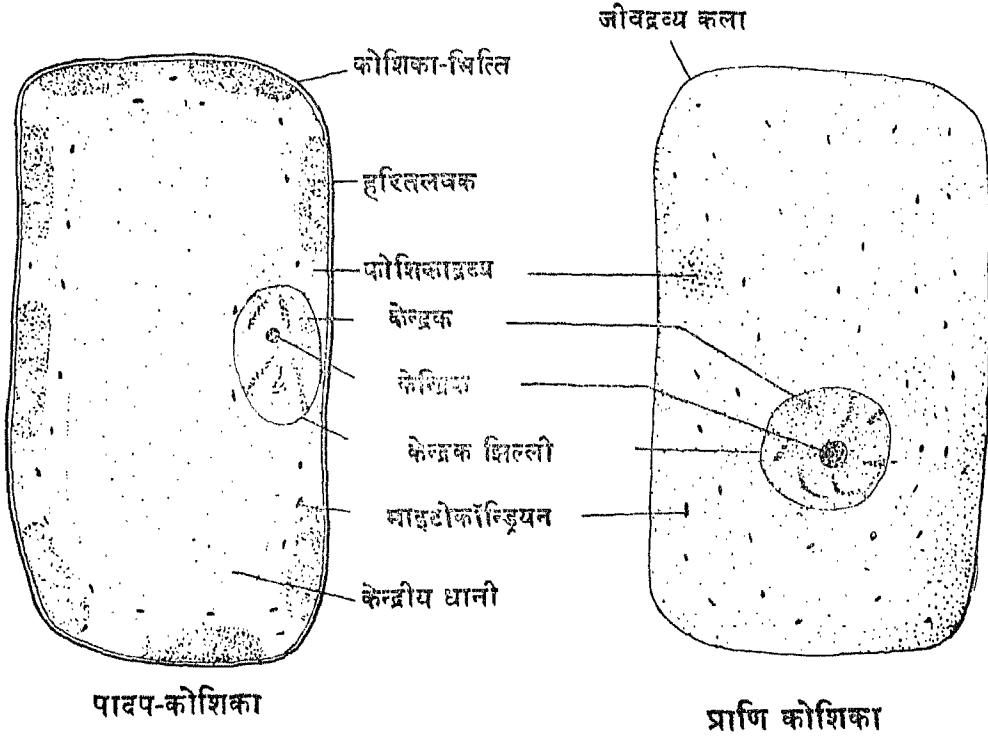
काय (lysosome), जिनमें खाद्य कणिकाओं और कोशिकीय पदार्थों को पचाने वाले एंजाइम होते हैं।

कोशिकाओं का उपर्युक्त वर्णन प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी से देखने के आधार पर किया गया है। यदि हम इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में कोशिका का निरीक्षण करें तो ऊपर बताए गए अंगकों के संरचनात्मक संगठन तथा कोशिका-संगठन की अन्य बारीकियों को भी अधिक अच्छी तरह से देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, अंतर्द्रव्यी जालिका (endoplasmic reticulum) को साधारण प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी में नहीं देखा जा सकता। यह जालिका वाहिकाओं (channels) का झिल्ली वाला जाल है जिससे कोशिका के अन्दर कुछ विशेष पदार्थों का परिवहन होता है। इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से इन नलिकाकार वाहिकाओं की बाहरी सतह पर छोटे गोलाकार राइबोसोम होते हैं, जो प्रोटीनों के संश्लेषण का कार्य करते हैं। प्राणियों की कोशिकाओं में केन्द्रक के नजदीक बिन्दु-जैसी दो वस्तुओं या तारकेन्द्रों (centriotes) को भी देखा जा सकता है। ये कोशिका-विभाजन में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं (देखिये चित्र 2.1 ख)।

रासायनिक संघटन

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कोशिकाओं में विषमांगी तत्व और अणु काफी अधिक संख्या में होते हैं। इस रासायनिक विषमांगता के बावजूद अब कोशिकाओं के रासायनिक घटकों का वर्गीकरण करना सम्भव है। कोशिका के जैविक संघटन और कार्य प्रणाली को समझने में इन रासायनिक घटकों की जानकारी, कोशिका में इनकी बहुतायत, अनुपात तथा स्थिति बहुत लाभप्रद होती है।

वजन के हिसाब से प्राणि-कोशिकाओं में बहुतायत से पाए जाने वाले तत्व हैं—आक्सीजन 65%, कार्बन 18%, हाइड्रोजन 10% और नाइट्रोजन 2.5%, और इनके

बाद आते हैं कैल्सियम व सोडियम जो वजन के हिसाब से 0.15% से 2% तक पाए जाते हैं। लेकिन इन आंकड़ों से कुछ भ्रम भी हो सकता है क्योंकि यदि तत्वों के प्रतिशत की आपेक्षिक बहुलता (बहुतायत) की दृष्टि से विचार करें तो अन्य तत्वों की अपेक्षा हाइड्रोजन (60%) ऑक्सीजन (20%), और कार्बन (11%) अधिकता से होते हैं और फिर बारी आती है नाइट्रोजन की 2.4%। हाइड्रोजन ऑक्सीजन की सर्वाधिकता का ठोस कारण यह है कि जीवद्रव्य में 60 से 90% (वजन से) पानी होता है। भ्रूणीय (embryonic) कोशिकाओं में जल का प्रतिशत सबसे अधिक होता है जो उम्र के साथ-साथ तेजी से घटता जाता है। उपापचय के अनुसार इसकी मात्रा घटती-बढ़ती भी है क्योंकि हड्डी की कोशिकाओं में जल की मात्रा केवल 20% और मस्तिष्क की कोशिकाओं में 85% होती है। कार्बन और नाइट्रोजन से मिलकर हाइड्रोजन और ऑक्सीजन कोशिकाओं के प्रमुख घटकों का निर्माण करते हैं, जैसे प्रोटीन (7 से 20%), कार्बोहाइड्रेट (1 से 2%) और लिपिड (1 से 3%) का। कोशिकाओं के अकार्बनिक तत्व वजन से 1 से 2% होते हैं और इनमें ऊपर बताए गए तत्व ही नहीं बल्कि मैग्नीशियम, क्लोरीन, लोहा (आइरन), मैंगनीज और तांबा (कॉपर) सरीखे तत्व भी पाए जाते हैं जो एंजाइम-प्रक्रिया तथा अन्य उपापचयी प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुख्य रासायनिक वर्गों की आपेक्षिक बहुलता और डी० एन० ए० की अपेक्षा प्रति कोशिका अणुओं की संख्या सारणी (table) 3.1 में दी गई है।

आगे की सारणी के आंकड़े कोशिका की संरचना और कार्य की दृष्टि से किसी विशेष अणु के तत्व के आपेक्षिक महत्व पर प्रकाश नहीं डालते हैं। डी०एन०ए० और आर० एन०ए० यद्यपि बहुत कम मात्रा में पाए जाते हैं लेकिन आनुवंशिकता (heredity) और प्रोटीन-संश्लेषण के नियंत्रण में ये बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। संरचनात्मक दृष्टि से बहुतायत से पाया जाने वाला अणु (यानी जल) प्रोटीन अथवा लिपिड की तरह महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन इसके बिना कोशिका की प्रक्रियाएं असम्भव हो सकती हैं।

सारणी 3.1

डी० एन० ए० की अपेक्षा प्रति कोशिका अणुओं का प्रतिशत और संख्या

अणु	प्रतिशत	डी० एन० ए० की अपेक्षा अणुओं की संख्या
डी० एन० ए०	0.4	1
जल	8.0	1.2×10^7
प्रोटीन	9.0	7.0×10^3
कार्बोहाइड्रेट	2.0	14.0×10^3
लिपिड	2.0	7.0×10^3
आर० एन० ए०	0.7	4.4×10^1
अन्य कार्बनिक यौगिक	0.4	4.0×10^3
अकार्बनिक यौगिक	1.5	6.8×10^4

प्रोटीन झिल्लियों से सम्बद्ध होता है और एंजाइम अथवा हॉरमोनों के रूप में पाया जाता है। कार्बोहाइड्रेट जमा उत्पादों (संचयन-पदार्थों) के रूप में पाए जाते हैं और कोशिका के स्रावों (secretions) में प्रोटीन से सम्बद्ध होते हैं। लिपिड झिल्लियों और अंतर्विष्ट जमा पदार्थों में पाए जाते हैं।

अतः संक्षेप में कोशिका की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—यह सक्रिय पारस्परिक क्रियाओं में कई आणविक पदार्थों का क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित समुदाय है। अपने आकृतिक, रासायनिक और भौतिक संगठन के कारण ही यह स्वांगीकरण या पाचन (assimilation), वृद्धि और जनन (reproduction) की क्षमता रखती है। यह इस भौतिक विश्व का एक अंश है और इस पर भी सभी भौतिक वस्तुओं वाले वही नियम लागू होते हैं, लेकिन औरों से यह इस बात में भिन्न है कि इसमें स्वतः नियमन यानी अपने आप नियंत्रित होने तथा अनुकूलता प्राप्त करने की क्षमता होती है जब कि अन्य वस्तुओं में नहीं होती।

प्रश्न

1. यदि किसी कोशिका का व्यास 0.1 मिमी है तो नैनोमीटरों में उसका साइज़ क्या होगा ?

2. 'सभी जैविक प्रक्रियाओं का आणविक आधार होता है'—क्या यह कथन सही है ?

3. प्ररूपी या सामान्य कोशिका से आप क्या समझते हैं ? पौधे की कोशिका की प्राणि-कोशिका से तुलना कीजिए।

4. कोशिका को जीवन की आधारभूत इकाई क्यों माना जाता है ?

अध्याय 4

कोशिका-भित्ति और जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली)

ाका-भित्ति

के एक अध्याय में बताया गया था कि अपने म्भिक सूक्ष्मदर्शी में रॉबर्ट हूक ने काग-ऊतक का मोटा ा लेकर देखा कि वह "शहद की मक्खी के छत्ते की छिद्रिल और सरंध्र (porous)" था। काग-ऊतक द्रों के चारों ओर की मोटी पृथक्कारी दीवारों को भित्ति कहा। अधिकांश पादप-कोशिकाओं में क्कारी दीवारें होती हैं और तभी से कोशिकाविज्ञानी ologist) इन्हे भित्ति ही कहते आए हैं।

पादप-कोशिकाओं में पाई जाने वाली कोशिका-भित्ति ी पहचान का सूचक लक्षण है क्योंकि प्राणि कोशि- में यह होती ही नहीं। ये कोशिकाएँ एक निश्चित ; आवरण यानी कोशिका-भित्ति द्वारा ढकी होती हैं। का-भित्ति से जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) की पहचान के निदर्शन (demonstration) के लिए

ऊपरी यानी वायवीय भाग को गुरुत्वीय बल (gravitational force) के प्रति सीधा खड़ा रखने में भारी योग देती है। कोशिका के अन्दर और बाहर पदार्थों तथा उपापचयजों (metabolites) की परिवहन गति में भी यह सहायक होती है। कोशिका की अन्तर्वस्तुओं (contents) यानी भीतर की वस्तुओं द्वारा उत्पन्न परासरण दाब (Osmotic pressure) के प्रति भी यह सन्तुलन बनाए रखती है।। कोशिका के प्रसार या फैलाव में भी कोशिका भित्ति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। एंजाइम सम्बन्धी कई प्रक्रियाएँ भी कोशिका के भीतर चलती रहती हैं। इस प्रकार स्राव से उत्पन्न अक्रिय पदार्थ के विपरीत यह कोशिका-भित्ति जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) के बाहर कोशिका का बहुत क्रियाशील भाग है।

कोशिका-भित्ति की संरचना

काइटिन के लम्बी श्रृंखला वाले बृहदणु की बनी होती है। यह काइटिन एक रासायनिक पदार्थ है, जो अकशेरुकी (invertebrate) प्राणियों के बहि: कंकाल (exoskeleton) का मुख्य अंश होता है। हरे पौधों में यह लम्बी श्रृंखला वाले सेलुलोस के दीर्घाकार अणुओं के समूहों की बनी होती है। काष्ठीय या कड़े तने वाले पौधों में सेलुलोस के सूक्ष्म तंतुकों के ऊपर लिग्निन के लम्बी श्रृंखला वाले दूसरे बृहदणु की पपड़ीदार परत चढ़ी होती है। काष्ठ (काठ) से सम्बद्ध कड़ेपन का यह गुण सेलुलोस की कोशिका-भित्तियों में लिग्निन भरा होने के कारण होता है (चित्र 4.1 और 4.2)।

कोशिका-भित्तियों के सूक्ष्मतंतुक जेली-जैसी रवाहीन आधात्री में जड़े होते हैं। यह आधात्री विभिन्न प्रकार के बहुशर्कराइडों की बनी होती है, मुख्यतया: पेक्टिन और हेमीसेलुलोसों की। यह पेक्टिन घरों में बनाई जाने वाली जेली और जैम का मुख्य स्रोत है। कोशिका-भित्ति की आधात्री में गोंद, टैनिन, राल (रेज़िन), सिलिका, मोम आदि पदार्थ भी पाए जाते हैं।
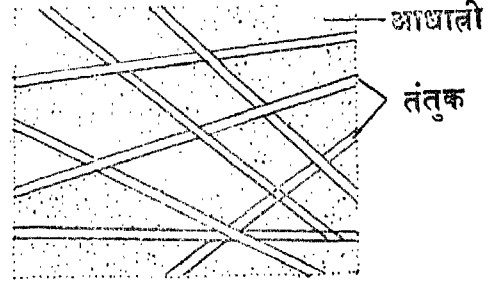
चित्र 4.1 : कोशिका-भित्ति की संरचना।

चित्र 4.2 : गेहूं की कोशिका-भित्ति में सेलुलोस-तंतुओं के समांतर समूहों को प्रदर्शित करने वाला इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मलेख।

जीवद्रव्य-कला या प्लैज्मा झिल्ली (Plasma membrane)

प्रत्येक कोशिका एक कोशिका-झिल्ली से आवृत या ढकी रहती है। इस झिल्ली को जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) भी कहते हैं। जीवद्रव्य और कोशिका के बाहरी वातावरण के बीच यह प्लैज्मा झिल्ली महत्वपूर्ण रोध (barrier) का कार्य करती है। यह एक रक्षी आवरण ही नहीं है बल्कि एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाती है, क्योंकि किन पदार्थों को कोशिका के अन्दर और बाहर प्रवाहित होना है इसका निर्धारण भी इसी के द्वारा होता है। जब तक कोशिका-झिल्ली में छांटने और अन्तर रखने की यह क्षमता रहती है, कि किन पदार्थों को कोशिका में जाना चाहिए, और किनको बाहर आना चाहिए, तभी तक कोशिका जीवित रह सकती है। इस तरह यह जीवित और क्रियाशील झिल्ली है।

यह बात बड़ी रोचक है कि इस प्लैज्मा झिल्ली के देखने के पहले ही हम इसकी संरचना और कार्यों के बारे में जान चुके थे। इसको हम प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी में नहीं देख सकते क्योंकि इस झिल्ली की मोटाई सूक्ष्मदर्शी की विभेदन-क्षमता से काफी कम है। फिर भी झिल्ली के बारे में अप्रत्यक्ष जानकारी शरीरक्रियात्मक (Physiological) प्रयोगों के आधार पर एकत्र की गई। अब हम इसकी संरचना और कार्यों में सहसम्बन्ध स्थापित करने में इसलिए सफल नहीं हैं कि इसे हम इलेक्ट्रोन- सूक्ष्मदर्शी में देख सकते हैं बल्कि इसलिए कि कई आधुनिक तकनीकों ने झिल्लयों के बारे में
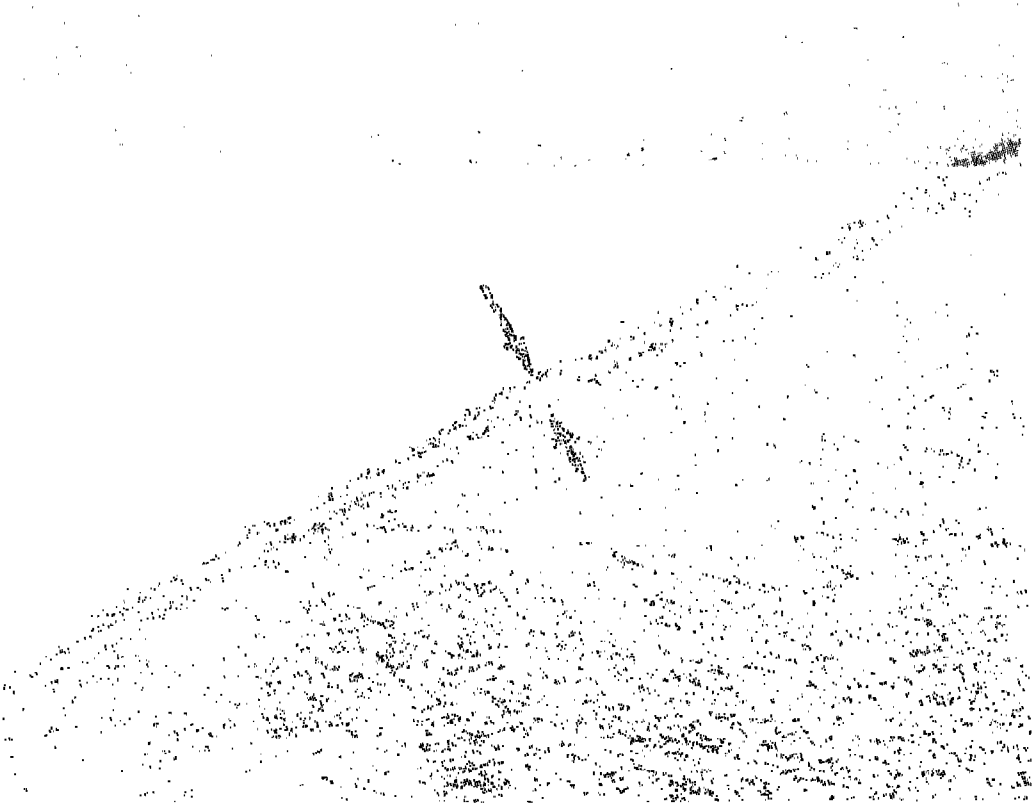
चित्र 4.3 : जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) की परासंरचना।

हमारी जानकारी बढ़ाने में भारी योग दिया है। अब हम झिल्लियों को उनके शुद्ध रूप में अलग करके उनके गुणों का अध्ययन कर सकते हैं। आज हम कृत्रिम झिल्लियाँ भी तैयार कर सकते हैं (चित्र 4.3)।

प्लैज्मा झिल्ली की संरचना

1935 में जेम्स डैनियली और ह्यूग डावसन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने प्लैज्मा झिल्ली का आणविक प्रतिरूप (molecular model) प्रस्तुत किया। अपने शरीरक्रिया-त्मक प्रयोगों से उन्होंने बताया कि प्लैज्मा झिल्ली तीन परतों की बनी होती है: बीच की फॉस्फोलिपिडों वाली दोहरी आणविक परत और इसके दोनों ओर प्रोटीन की परत। वस्तुतः प्रोटीन की दो परतों के बीच में फॉस्फो-लिपिड की द्विपरत यानी दोहरी परत (bilayer) खिंची होती है। उनके द्वारा प्रत्येक फॉस्फोलिपिडों में दो सिरों का अनुमान किया गया, एक जलभीरु (hydrophobic) और दूसरा जलरागी (hydrophilic)। फॉस्फोलिपिड अणुओं के जलभीरु सिरे अन्दर की ओर एक दूसरे के सामने और जलरागी सिरे बाहरी प्रोटीन परतों के सामने पाए गए (चित्र 4.4)।
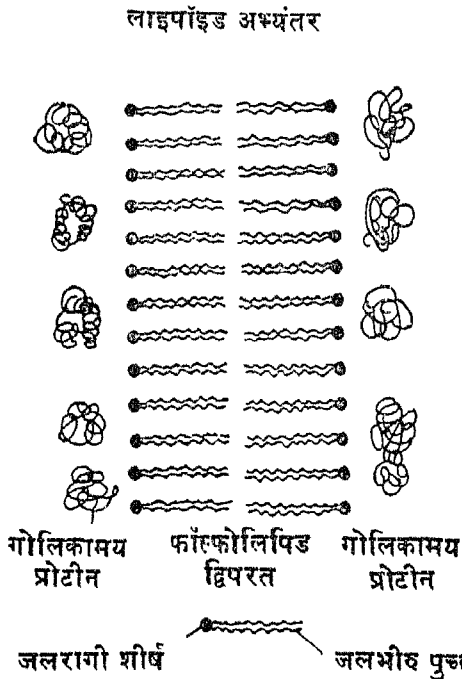
चित्र 4.4 : जीवद्रव्य कला (प्लैज्मा झिल्ली) का प्रतिरूप (मॉडल) डैनियली के अनुसार।

बाद में जे० डेविड रॉबर्ट्सन ने इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी की सहायता से लाल रुधिर कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्ली का अध्ययन करके दिखलाया कि असल में प्लैज्मा झिल्ली में तीन परतें थीं, जिनकी कुल मोटाई 75 से 100 A° थी। प्रोटीन वाली प्रत्येक परत की मोटाई 20 A° और अन्दर की फॉस्फोलिपिड द्विपरत (दोहरी परत) की मोटाई 35 A° थी। रॉबर्ट्सन ने हमारे सामने इकाई झिल्ली वाली संकल्पना (Concept) या विचार को रखा जिसका अर्थ था कि सभी झिल्लियों में तीन परतों वाली एक संरचना होती है, और यदि अधिक परतें हैं तो वे इकाई-झिल्ली की गुणज
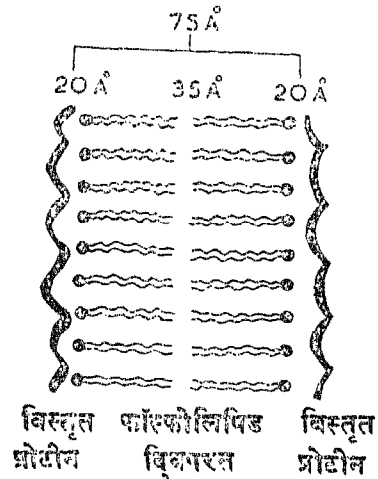
चित्र 4.5 : इकाई झिल्ली—रॉबर्ट्सन के अनुसार।

(multiples) होती हैं। रॉबर्ट्सन के प्रतिरूप का सभी ने अनुमोदन किया लेकिन फिर भी यह संतोषजनक न रहा क्योंकि इससे झिल्ली की क्रियाशील प्रकृति और प्रकार्या-त्मक विशिष्टता (functional specificity) सुस्पष्ट न हो सकी (चित्र 4.5)।

ज्यों-ज्यों अधिक जानकारी प्राप्त होती रही त्यों-त्यों यह स्पष्ट होता गया कि तीन परतों वाली संरचना कई झिल्लियों का अति सरलीकृत निरूपण था। इस तरह इकाई झिल्ली वाली संकल्पना भी मान्य नहीं हुई क्योंकि भले ही झिल्लियों में कुछ एक-जैसे सामान्य लक्षण हो सकते हैं लेकिन विभिन्न कोशिकाओं और विभिन्न अंगकों

में ये संघटन और कार्य में भिन्न भिन्न होती हैं।

इस प्रसंग में हाल के कुछ वर्षों में कुछ नए प्रतिरूप प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें सिंगर और निकल्सन द्वारा प्रस्तुत प्रतिरूप को अधिक मान्यता मिली। सिंगर-निकल्सन वाले प्रतिरूप से ज्ञात होता है कि प्रोटीन लिपिड की द्विपरतों (दोहरी परतों) की सम्पूर्ण जलरागी सतह को ढके हुए हमेशा सैंडविच नहीं बनाते। उनकी मान्यता के अनुसार झिल्ली की संरचना और कार्यों की दृष्टि से प्रोटीन बड़ी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इस मान्यता के अनुसार प्रोटीन की दो कोटियाँ हैं: **उपान्तीय या बाह्य** (peripheral या extrinsic) और **सम्पूर्ण या आंतर** (integral या intrinsic)। तीव्र जलरागी या जल-भीरु पारस्परिक क्रियाओं (अथवा दोनों) द्वारा सम्पूर्ण या आंतर प्रोटीन अपने स्थान पर कसकर रखे जाते हैं और झिल्लियों से इनको निकालना मुश्किल होता है। उपान्तीय या बाह्य प्रोटीन झिल्ली में सतही तौर पर स्थित होते हैं और ये इस कारण आसानी से निकाले जा सकते हैं। कुछ सम्पूर्ण (आंतर) प्रोटीन पूरी झिल्ली में विद्यमान हो सकते हैं। लेकिन कुछ लिपिड परतों में आंशिक रूप में धंसे हुए और आंशिक रूप से सतह पर उभरे होते हैं। इन बाह्य या आंतर प्रोटीनों में से कई प्रोटीन ही एंजाइम होते हैं। इनमें से कुछ **परमिएस** कहलाते हैं क्योंकि ये कुछ पदार्थों के प्रवेश को सुगम कर देते हैं। विभिन्न कोशिकाओं और अंगकों की भिन्न-भिन्न झिल्लियाँ अपने प्रोटीन और लिपिड संघटन में असमान

चित्र 4.6 : जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) का किर्मीर प्रतिरूप सिंगर और निकल्सन के अनुसार।

होती हैं। ऊपर बताए गए अनुसार लिपिडों और प्रोटीनों का संगठन झिल्ली के लचीलेपन और विशिष्टता पर प्रभाव डालता है (चित्र 4.6)।

झिल्ली के आर-पार परिवहन (गति)

झिल्लियों के विस्तृत अध्ययन के बावजूद, अभी तक इस बारे में कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिला है कि ये अणु प्लैज्मा झिल्ली को सही तौर पर किस तरह पार करते हैं। इस प्रसंग में कई सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं लेकिन ठीक-ठीक प्रक्रिया अभी भी ज्ञात नहीं है। यह समझा जाता है कि आयनों (ions) और अणुओं के परिवहन (गति) में (i) निष्क्रिय और (ii) सक्रिय दोनों प्रकार का परिवहन (गति) होता है। निष्क्रिय परिवहन (गति) में रासायनिक प्रवणता (gradient) अथवा विद्युत रासायनिक प्रवणता में यदि अणु आवेशित या चार्जयुक्त (charged) हैं तो अणु या आयन उच्च सांद्रता (concentration) से निम्न सांद्रता की ओर गति करते हैं। इस तरह झिल्ली निष्क्रिय भूमिका अदा करती है क्योंकि यह सरल प्रकार का **विसरण** (diffusion) ही होने देती है। यह अनुमान किया जाता है कि निष्क्रिय प्रकार के परिवहन (गति) को संपन्न करने के लिए व्यास में लगभग 7 से 8 nm वाले सूक्ष्म छिद्र होते हैं। यदि सम्बद्ध अणु जल का है और वह झिल्ली से होकर उच्चतर सांद्रता से निम्नतर सांद्रता की ओर गति करता है तो इस प्रक्रम को परासरण (osmosis) कहते हैं। सक्रिय प्रक्रम (process) में प्रवणता के विपरीत भी अणुओं की गति होती है अर्थात वे निम्नतर सांद्रता से उच्चतर सांद्रता की ओर भी गति कर सकते हैं। अनुमान किया जाता है कि ऐसे सक्रिय परिवहन (गति) में या तो (क) वाहक प्रक्रम या (ख) ऊर्जा-आश्रित प्रक्रम होता है। वाहक प्रक्रम में यह माना जाता है कि झिल्ली के आर-पार अणुओं की गति का सुगमीकरण कोई विशिष्ट वाहक (परमिएस) करता है। इस प्रक्रम में ऊर्जा खर्च नहीं होती लेकिन ऊर्जा-आश्रित प्रक्रम में यह माना जाता है कि प्लैज्मा झिल्ली से होकर अणुओं में परिवहन (गति) को तीव्र करने में ऐडीनोसिन ट्राइ फॉस्फेट या ए० टी० पी० (ATP) से निकली ऊर्जा सहायता देती है (चित्र 4.7)।

चित्र 4.7 : झिल्ली से होकर उपापचयजों की गति, जिसमें वाहक प्रोटीन और ऊर्जा सम्बद्ध होती है।

जीवद्रव्य कला (प्लैज्मा-झिल्ली) बहुत जटिल संरचना है, जो निश्चित रूप से बहुत सक्रिय और लचीली होती है। इससे होकर केवल अणुओं, आयनों आदि का परिवहन (गति) ही नहीं होता बल्कि सोडियम, पोटेशियम आदि के विशिष्ट अणुओं का विनिमय भी हो सकता है। जिन अणुओं का परिवहन (गति) होता है वे बड़े या छोटे कैसे भी हो सकते हैं। ऊपर बताए गए प्रक्रम झिल्लियों की परिवहन (गति) सम्बन्धी प्रक्रिया की गम्भीर जटिल प्रकृति को केवल आंशिक रूप से ही समझा सकते हैं।

अतः इस बात पर जोर दिया जाना जरूरी है कि कोशिका का सारा अस्तित्व कोशिका-झिल्ली पर ही निर्भर करता है, जो कोशिका के पदार्थों की प्रविष्टि और निर्गम में निश्चित रूप से चुनाव बरतती है और उस पर भारी तथा सूक्ष्म यानी दोनों प्रकार का नियंत्रण रखती है। आशा है कि इसके बारे में हमें और अधिक जानकारी प्राप्त होगी क्योंकि विभिन्न विषयों और तकनीकों के आधार पर कई दिशाओं से जानकारी प्राप्त की जा रही है।

कोशिका-पायन या पिनोसाइटी क्रिया (Pinocytosis) और भक्षकाणु क्रिया (Phagocytosis)

कुछ कोशिकाएँ अपनी आवश्यकता के अनुसार बहुत अधिक भोजन या बाहरी पदार्थों का अंतर्ग्रहण करती हैं। ऐसे पदार्थों का झिल्ली से होकर सामान्य मार्ग से निकलना संभव नहीं। अतः ऐसी कोशिकाओं में प्लैज्मा झिल्ली
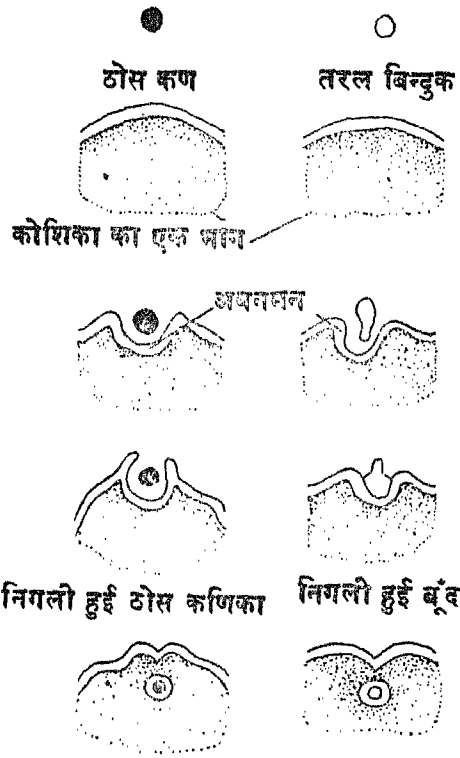
चित्र 4.8 : कोशिकाओं द्वारा ठोस और तरल पदार्थों का अन्तर्ग्रहण-भक्षकाणु क्रिया तथा कोशिका पायन (पिनोसाइटी क्रिया)।

प्राय: विशेष विधियों को अपना लेती है। उस प्रक्रम को जिसके द्वारा प्लैज्मा झिल्ली पदार्थों को पुंज रूप में ग्रहण करती है **एन्डोसाइटोसिस** कहते हैं और इसके विपरीत प्रक्रम को जिसमें स्राव (secretion) या मल पदार्थ पुंज रूप में कोशिका से बाहर फेंक दिए जाते हैं **एक्सोसाइटोसिस** कहते हैं। एन्डोसाइटोसिस से ये दोनों क्रियाएँ सम्बद्ध हैं— **कोशिका-पायन (पिनोसाइटी क्रिया)**, यानी अधिक मात्रा में तरल पदार्थों का ग्रहण(पीना)और **भक्षकाणु क्रिया**, यानी खाद्य पदार्थों या बाहरी पदार्थों का निगला जाना। कोशिका पायन(पिनोसाइटी क्रिया)या भक्षकाणु क्रिया में तरल की गोलिकाएँ(globules)अथवा खाद्य पदार्थ के कण प्लैज्मा झिल्ली के एक भाग द्वारा घेरे जाते हैं और सम्बद्ध भाग अंतर्वलन या अन्दर को मुड़ी रचना (invagination) बना लेते हैं। अन्त में अन्तर्वलित सिरे जुड़कर और निचुड़ कर एक धानी (vacuole) बना लेते हैं जिसमें ये पदार्थ होते हैं। ऐसी धानी बाद में कोशिका के अन्दर की ओर स्थानांतरित होकर लयनकायों से घुलमिल जाती है और इस तरह पदार्थ का पाचन हो जाता है।

प्रश्न

(1) प्ररूपी या सामान्य पादप कोशिका-भित्ति की संरचना समझाइए।

(2) कोशिका-झिल्ली के विभिन्न संरचनात्मक प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।

(3) समझाइए कि कोशिका-झिल्ली किस प्रकार आयनों और अणुओं की प्रविष्टि और निर्गम का नियंत्रण करती है।

(4) **कोशिका-पायन** (पिनोसाइटी क्रिया) और **भक्षकाणु-क्रिया** शब्दों से आप क्या समझते हैं ?

अध्याय 5

अन्तर्द्रव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum) और राइबोसोम

इस बात का अध्ययन कर लिया जा चुका है कि कोशिका झिल्ली में आवृत जीवद्रव्य, जो बाहरी (कोशिका बाह्य-extracellular) दुनिया और केन्द्रक से पृथक रहता है कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) कहलाता है। कोशिका द्रव्य को आपेक्षिक दृष्टि से समांग समझा जाता था और प्राय: इसे काचाभ जीवद्रव्य (hyaloplasm) कहा जाता था। लेकिन इस प्रसंग में इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शिकी (microscopy) का महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि इससे कोशिकाद्रव्य की संरचना की अविश्वसनीय जटिलता सुस्पष्ट हो गई। इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी की सहायता से इस बात का निदर्शन किया जा सका कि ससीमकेन्द्रकी जीवों (यूकैरिओट) की अधिकांश कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में झिल्लियों का बृहत् तंत्र यानी **अन्तर्द्रव्यी जालिका** (अ० जा०- ई० आर०- E. R.) पायी जाती है।

यह अन्तर्द्रव्यी जालिका विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। अंडों और भ्रूणीय कोशिकाओं में यह आमतौर पर नहीं पायी जाती किन्तु इसमें विभेदन (differentiation) के साथ-साथ वृद्धि होती जाती है। शुक्राणु कोशिकाओं (spermatocytes) में यह केवल कुछेक धानियों के रूप में ही होती हैं। वसा-ऊतक (adipose tissue) सरीखे लिपिड सम्बन्धी उपापचय में व्यस्त कोशिकाओं में यह बहुत सरल यानी कुछ नलिकाओं के रूप में ही होती है। लेकिन संश्लेषण में, विशेषकर प्रोटीनों और हॉर्मोनों के संश्लेषण में, सक्रिय प्रकार की कोशिकाओं में यह बहुत अधिक परिवर्धित होती है, जैसे कि अग्न्याशय (pancreas) और यकृत् (liver) की कोशिकाओं में। रेखित या धारीदार (striated) पेशियों में अन्तर्द्रव्यी जालिका एक विशेष रूप अपना लेती है और तब इसे **पेशद्रव्य-जालिका** (sarcoplasmic reticulum) कहते हैं।

अन्तर्द्रव्यी जालिका कुंडिकाओं (cisternae) की चपटी थैलियों के बृहत जाल के रूप में रहती है जो कि झिल्ली वाली चादर के (घेरे के रूप में) मुड़ने से बनती है। अनुप्रस्थ काट (cross-section) में देखने पर पता चलता हैं कि ये थैलियाँ दो झिल्लियों द्वारा परिबद्ध (बंधी) होती हैं, जो मोटाई में करीब 50 से लेकर 60 A° होती है। अन्तर्द्रव्यी जालिका नलिकाओं अथवा धानियों के रूप में भी हो सकती है (चित्र 5.1 और 5.2)।

कोशिकाओं में दो प्रकार की अन्तर्द्रव्यी जालिका पायी जाती हैं — (i) चिकनी अन्तर्द्रव्यी जालिका, और (ii) रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका। जब अन्तर्द्रव्यी जालिका के भागों में कुंडिकाओं की बाहरी सतह पर राइबोसोम के कण भरे होते हैं तो इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में देखने पर अन्तर्द्रव्यी जालिका रुक्ष या खुरदरी नजर आती है, इसीलिए ऐसी अन्तर्द्रव्यी को दानेदार अथवा रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका कहते हैं। अन्तर्द्रव्यी जालिका में यदि राइबोसोम बाहरी सतह पर इस प्रकार से नहीं पाए जाते तो उसे **चिकनी अन्तर्द्रव्यी जालिका** कहते हैं। इन
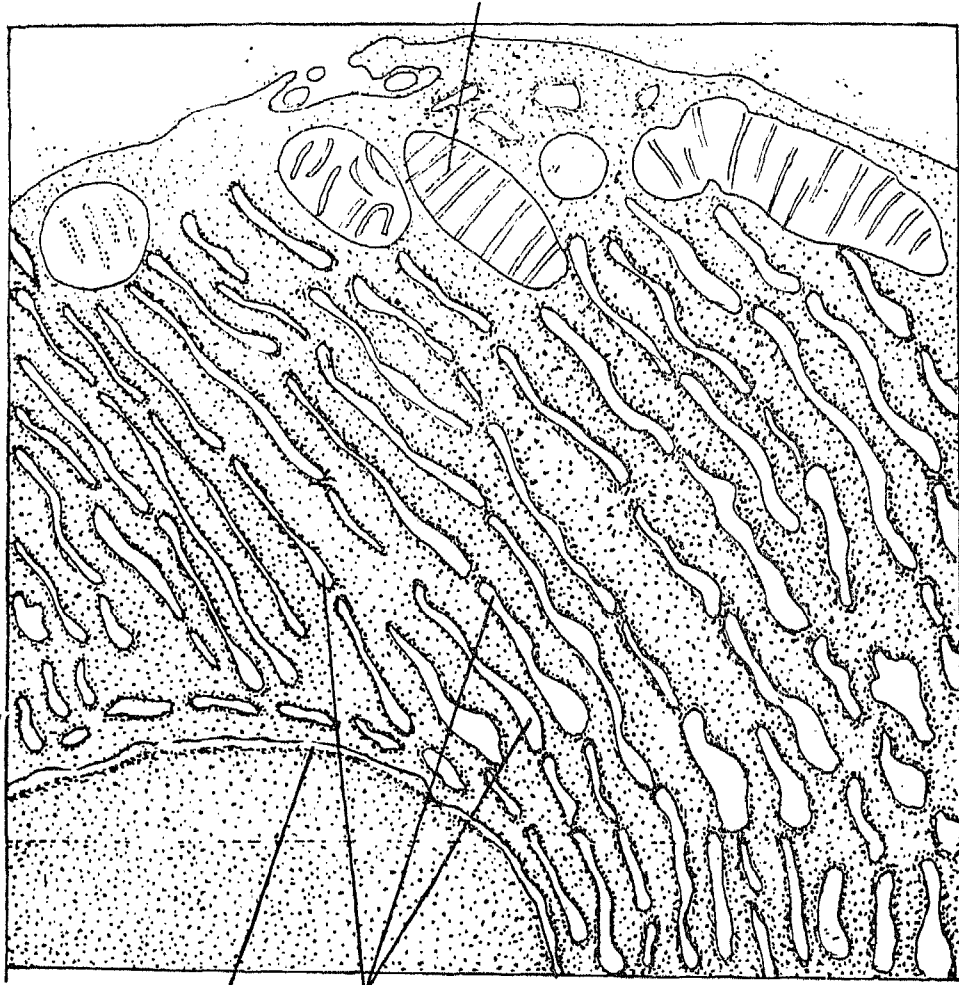
चित्र 5.1 : अनेक चपटी कुंडिकाएं दिखलाती हुई रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका।

आकारिकीय (morphological) अन्तरों के अलावा चिकनी और रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका कार्यों में भी भिन्न होती है। प्रोटीनों का सक्रिय रूप से संश्लेषण और स्रवण करने में व्यस्त कोशिकाओं में रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका विशेष रूप से अधिक परिवर्धित होती है, लेकिन इसके विपरीत उन कोशिकाओं में जो स्टेरॉयडों का स्रवण व संश्लेषण करती हैं चिकने प्रकार की अन्तर्द्रव्यी जालिका अधिक परिवर्धित होती है।
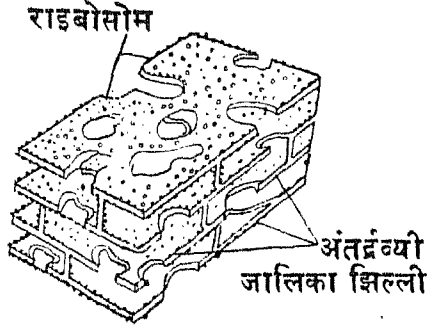
चित्र 5.2 : रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका का त्रिविम दृश्य।

यह अन्तर्द्रव्यी जालिका आंतरकोशिक (intracellular) परिवहन के लिए निष्क्रिय वाहिका के अलावा कुछ और भी है। इसमें कई एंजाइम भी होते हैं जो उपापचय की अनुक्रमिक अभिक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार पॉलिपेप्टाइड प्रोटीनों में संवेष्टित हो जाते हैं, तथा लिपिड और प्रोटीन जटिल प्रकार से मिलकर लिपोप्रोटीन बनाते हैं, तथा बहुशर्कराइड (पॉलिसैक्केराइड) व ग्लाइकोजन जमा कर लिए जाते हैं और अन्तर्द्रव्यी जालिका की इन मुख्य वाहिकाओं से होकर, कोशिका के भीतर व बाहर, इन सब वृहदणुओं का परिवहन किया जाता है।

अभी तक यह सुस्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है कि अन्तर्द्रव्यी जालिका उत्पन्न कैसे होती है। फिर भी यह माना जाता है कि अन्तर्द्रव्यी जालिका का फैलाव उन प्रोटीनों और लिपिडों के संश्लेषण के माध्यम से होता है जो पूर्ववर्ती जालिका से नई अन्तर्द्रव्यी जालिका बनाने के लिए आवश्यक होते हैं।

राइबोसोम

राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक हैं और पौधे व प्राणियों की सभी कोशिकाओं में पाए जाते हैं। इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मलेखों (micrographs) में ये राइबोसोम गोलाकार पिंडों या कायों के रूप में दिखलाई देते हैं और व्यास में मोटे तौर पर करीब 150 से 250 A° होते हैं। प्रत्येक राइबोसोम में असमान आकार की दो सुस्पष्ट उपइकाइयाँ (sub-units) होती हैं। राइबोसोम के साइज का निर्धारण अपकेन्द्रण विधि में उस चाल से किया जाता है जिससे अपकेन्द्री (centrifugal) क्षेत्र में उनकी तलछट नीचे बैठती है। स्वेडबर्ग इकाई (Svedberg unit) S वह इकाई है जिससे अवसादन या तलछट (sediment) की चाल को मापा जाता है। उच्चतर जीवों की कोशिकाओं में 80 S वाली चाल के राइबोसोम देखे जाते हैं, और जीवाणुओं (बैक्टीरिया) में ये राइबोसोम 70S वाले साइज से कुछ ही छोटे होते हैं। 80S के राइबोसोम में 60S और 30S प्रकार की दो उपइकाइयाँ और 70S प्रकार के राइबोसोम में 50S और 30S प्रकार की उपइकाइयाँ होती हैं। ये उपइकाइयाँ अन्य छोटी उपइकाइयों की बनी होती हैं। राइबोसोमी (ribosomal) आर० एन० ए० अणु बड़े होते हैं और ये कुल कोशिकीय आर० एन० ए० का करीब 70-75 प्रतिशत होते हैं। राइबोसोम की प्रत्येक उपइकाई जटिल राइबोन्यूक्लिओ प्रोटीन की कणिका होती है जिसमें मोटे तौर पर प्रोटीनों और आर० एन०ए० की बराबर मात्रा होती है। राइबोसोमी प्रोटीनों के बारे में अधिक ज्ञात नहीं है, लेकिन इतना निश्चित है कि राइबोसोम की प्रत्येक उपइकाई में विभिन्न प्रकार के प्रोटीन भारी संख्या में हो सकते हैं। कुछ शायद संरचनात्मक भूमिका निभाते हैं और बाकी एंजाइमीय कार्यों से सम्बद्ध हो सकते हैं। पेप्टिडिल ट्रांसफरेस नामक एंजाइम, जो कि पेप्टाइड बंध (bond)
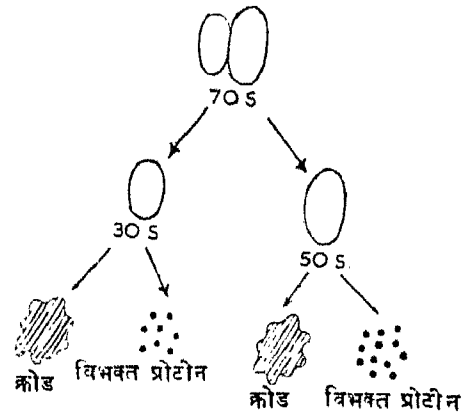
चित्र 5.3 : 70S प्रकार के राइबोसोमों की घटकीय उपइकाइयाँ।

का वास्तविक निर्माण करता है, 60S और 50S प्रकार की बड़ी उपइकाइयों का अनिवार्य अंश हो सकता है।

राइबोसोमी आर० एन० ए० का मुख्य स्थल केन्द्रिक (न्यूक्लिओलस) है। यह अच्छी तरह स्थापित कर लिया गया है कि केन्द्रिक डी० एन० ए० में राइबोसोमी संजीन (genome) होते हैं। केन्द्रिकीय (nucleolar) जीनों में पूर्ववर्ती आर० एन० ए० का कुछ निर्माण होता है। राइबोसोमी प्रोटीन लगता है कोशिकाद्रव्य में संश्लेषित होते हैं लेकिन केन्द्रिकों में राइबोसोमी आर०एन० ए० के साथ जटिल प्रकार से मिलकर ये राइबोसोमों के निर्माण के लिए केन्द्रिकों में पहुँच जाते हैं।

सुस्पष्ट रूप से दो प्रकार के राइबोसोम होते हैं: एक वे, जो झिल्लियों में बंधे या परिबद्ध होते हैं और दूसरे वे, जो मुक्त होते हैं। प्रोटीन-संश्लेषण में दोनों महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं लेकिन मुक्त राइबोसोम प्रोटीनों को संश्लेषित कर काक्षाभ जीवद्रव्य (हाएलो प्लाज्म) में छोड़ देते हैं जब कि परिबद्ध राइबोसोम संश्लेपित प्रोटीनों को अन्तर्द्रव्यी जालिका की कुंडिकाओं में स्थानांतरित कर देते हैं।

सक्रिय प्रोटीन-संश्लेषण के दौरान कुछ राइबोसोम समूहों में रहते हैं, जो सब मिलकर पॉलीराइबोसोम कहलाते हैं। विलगित या एकल पॉलीराइबोसोमों में राइबोसोमों का एक रेखीय व्यूह (linear array) होता है, जो परिवर्तनशील लम्बाई के करीब 10-20 nm मोटाई वाले, एक सूत्र (strand) द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं। इसकी पहचान m RNA (m रा० न्यू० अ०) के रूप में की गई है (चित्र 5.4)।
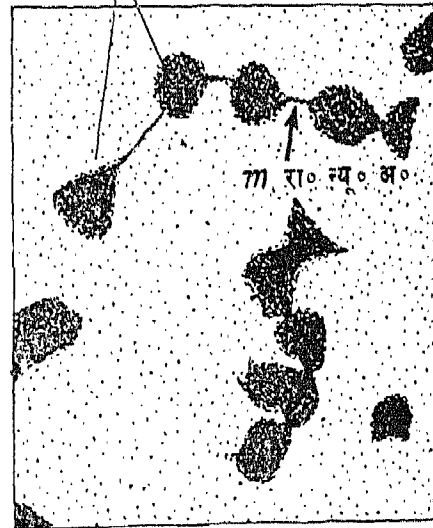
चित्र 5.4 : पॉलीराइबोसोमों की इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शीय संरचना।

चूंकि ये राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इसलिए इनकी प्रत्येक उपइकाई और घटकों की संरचना और कार्य भी महत्व के हैं।

प्रश्न

1. राइबोसोम क्या हैं ? प्रोटीन-संश्लेषण में इनकी भूमिका का वर्णन करिए।
2. अ० जा०(ई० आर०—E.R.) के प्रकारों का उल्लेख करते हुए उसके कार्य बताइए।

अध्याय 6

गॉल्जी समुच्चय (Golgi Apparatus)

गॉल्जी समुच्चय की खोज सन् 1898 ई० में इतालवी वैज्ञानिक कैमिलो गॉल्जी द्वारा की गयी थी। उसने इस संरचना को उल्लू की तन्त्रिका-कोशिका में 'धात्विक अंतर्भरण' (metallic impregnation) की विधि द्वारा देखा। यह तकनीक इतनी उग्र थी कि काफी लम्बे समय तक कई कोशिकाविज्ञानी यह मानते ही नहीं थे कि कोशिकाओं में गॉल्जी समुच्चय नाम की कोई चीज होती भी है और इस बात को वे शिल्प तथ्य ही मानते रहे। लेकिन इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शिकी के विकास के साथ यह विवाद समाप्त हो गया। स्तनियों (mammals) की लाल रुधिर कोशिकाओं-जैसे कुछ कोशिका प्रकारों या प्ररूपों (types) को छोड़कर बाकी सभी ससीमकेन्द्रकी कोशिकाओं में गॉल्जी समुच्चय पाया जाता है।

चित्र 6.1 : अभिरंजन (रंगने) की विशेष विधि से तंत्रिका-कोशिका में दिखाई देने वाला गॉल्जी जालिका-समुच्चय।

संरचना

प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी में तो गॉल्जी समुच्चय की रचना का निरीक्षण करना और उसका वर्णन करना कठिन है क्योंकि इसकी आकृति, साइज़ (आकार) और स्थिति बदलती रहती है, लेकिन इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शी में यह चपटी थैलियों (कुंडिकाओं) के ढेर या चट्टे के रूप में दिखाई देता है और प्रत्येक चिकनी सतह वाली झिल्ली से परिबद्ध (बंधा) होता है। इन चपटी थैलियों (कुंडिकाओं) से प्राय: विभिन्न साइजों की पुटिकाएँ (Vesicles) जुड़ी होती हैं। विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में गॉल्जी समुच्चय के साइज़ और आकृति में भारी विविधता पायी जाती है। तंत्रिकोशिकाओं (neurons) में केन्द्रक के चारों ओर एक विस्तृत जाल होता है। प्रोटीनों, कार्बोहाइड्रेटों अथवा हॉरमोनों का स्रवण करने वाली कोशिकाओं और अवशोषी (absorptive) कोशिकाओं में यह समुच्चय सघन होता है और प्राय: केन्द्रक और कोशिका की सतह के बीच वहाँ स्थित होता है जहाँ पर स्रवण अथवा अवशोषण (ab-

sorption) होता है। कई पादप-कोशिकाओं में लगता है कि गॉल्जी समुच्चय में कई असम्बद्ध इकाइयाँ होती है, जिन्हें **जालिकाय** (dictyosome) कहते हैं। कुछ पादप-कोशिकाओं में ये जालिकाय दर्जनों से लेकर सैकड़ों की संख्या में पाए जाते हैं और प्रत्येक असल में गॉल्जी थैलियों का ढेर या चट्टा होता है (चित्र 6.2)।

गॉल्जी कायों (bodies) या पिंडों की संख्या अधिकांश प्राणिकोशिकाओं में तीन से सात तक और पादप-कोशिकाओं में दस से बीस तक हो सकती है। लेकिन कुछ निम्नतर जीवों में एक थैली भी हो सकती है। ढेर या चट्टों में थैलियाँ एक-दूसरे से लगभग 200 से 300 A° की दूरी पर होती हैं। यह दूरी भिन्न भी हो सकती है क्योंकि कुछ थैलियाँ एक-सी चपटी और कुछ पदार्थों के जमाव के कारण फैली हुई या फूली हुई नजर आती हैं। अधिकांश कोशिकाओं में गॉल्जीकाय ध्रुवित (polarised) होते हैं जिनमें उत्तल (convex) और अवतल (concave) सतहें होती हैं क्योंकि ये थैलियाँ केन्द्रक अथवा बाहरी सतह की ओर संकेन्द्रीय प्रकार से (concentrically) मुड़ी होती हैं (चित्र 6.3)।
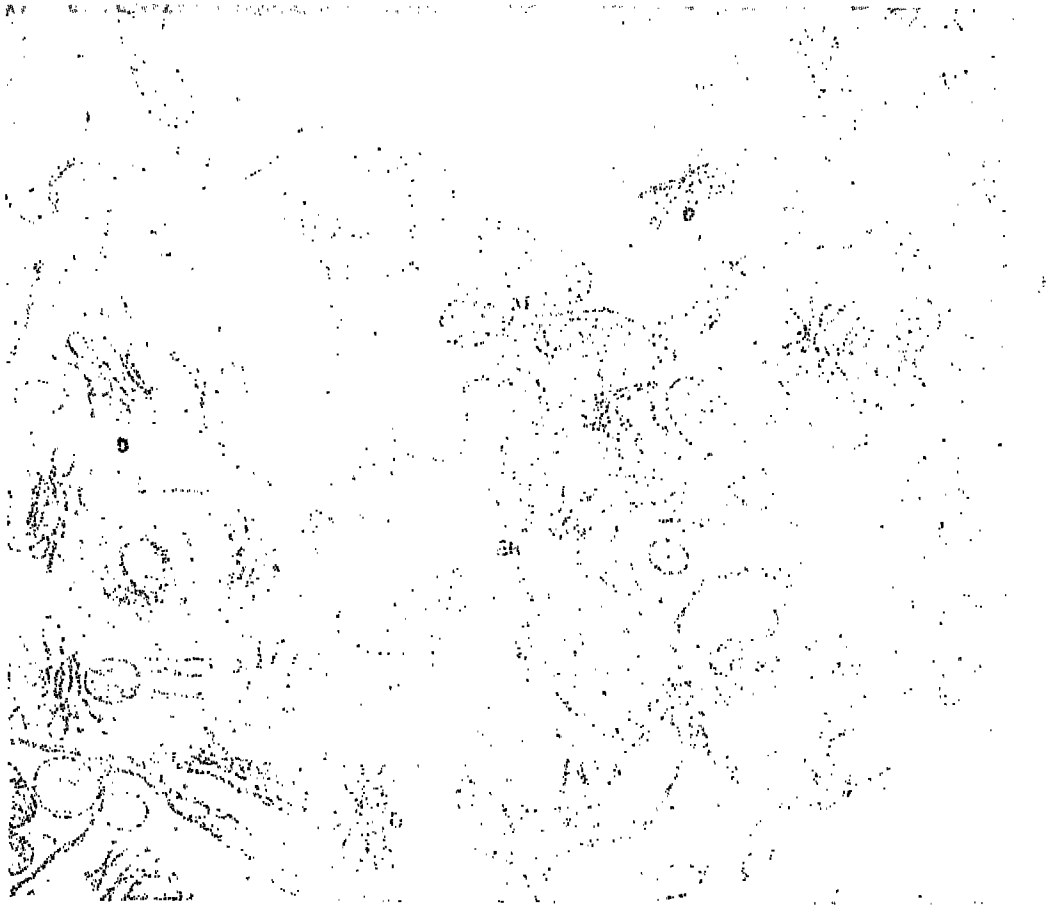
चित्र 6.2 : गॉल्जी काय या जालिका—E.R. =अ० जा० (अन्तर्द्रव्यी जालिका) D=जा० (जालिकाय)।

कार्य

कुछ सालों तक तो यह माना जाता रहा कि गॉल्जी काय में रासायनिक संश्लेषण नहीं होता और कोशिका में

अन्य स्थलों पर संश्लेषित पदार्थों की निष्क्रिय वाहिका बने रहना ही इसका कार्य है। लेकिन नए प्रमाणों से पता चलता है कि गॉल्जी समुच्चय निष्क्रिय नहीं बल्कि वास्तव में उपापचयी दृष्टि से बहुत सक्रिय काय है और आंशिक रूप से बहुशर्कराइडों के संश्लेषण से भी सम्बद्ध होता है।
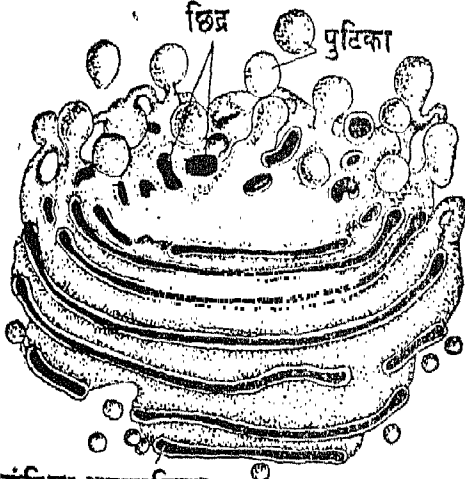
चित्र 6.3 : गॉल्जी-समुच्च का आरेखी चित्र।

यह भी पाया गया है कि ग्लाइकोप्रोटीन के निर्माण में कार्बोहाइड्रेटों और प्रोटीनों का बंधन भी गॉल्जी समुच्चय में होता है। पौधे की कोशिकाओं में गॉल्जी सम्मिश्र (Golgi complex—जालिकाय) कोशिका-भित्तियों की रचना के लिए आवश्यक पेक्टिन और कुछ कार्बोहाइड्रेटों तथा श्लेष्मक (mucilage), गोंद आदि कुछ स्रावों का संश्लेषण भी करता है। **ग्लाइकोसिल ट्रांसफरेस, थायेमिन पाइरोफॉस्फेटेस** सरीखे कई एंजाइम गॉल्जी कायों में पाए गए हैं। गॉल्जी काय पदार्थों के संग्रह, संघनन (condensation), संवेष्टन और स्थानांतरण से भी सम्बद्ध होता है। गॉल्जी काय से सम्बद्ध संवेष्टन का मतलब है किसी विशेष स्राव को चारों ओर से झिल्ली द्वारा समेटना और फिर प्लैज्मा झिल्ली से उसे विसर्जित कर देना। कोशिका के स्रावों की प्रक्रिया में भाग लेने के अतिरिक्त गॉल्जी काय झिल्ली के रूपान्तरण से भी सम्बद्ध होते हैं अर्थात् एक प्रकार की झिल्ली को दूसरे प्रकार की झिल्ली में बदल देते हैं। यह भी भली भाँति स्थापित कर लिया गया है कि स्रावी पुटक अथवा प्राथमिक लयनकाय गॉल्जी समुच्चय की थैलियों से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न

1. गॉल्जी सम्मिश्र की परासंरचना समझाइए।
2. कोशिका-भित्ति की रचना में गॉल्जी सम्मिश्र की क्या भूमिका है ? बताइए।
3. गॉल्जी समुच्चय के कार्यों का विवेचन कीजिए।
4. जालिकाय (डिक्टियोसोम) से आप क्या समझते हैं ?

अध्याय 7

सूक्ष्मपिंड (सूक्ष्मकाय—Microbodies)

कोशिकाओं में सामान्यतया पाये जाने वाले विभिन्न कोशिकांतरंगक (cell inclusions) सूक्ष्मपिंड या सूक्ष्मकाय कहलाते हैं। इन सूक्ष्मपिंडों या सूक्ष्मकायों के कई प्रकार होते हैं और प्रत्येक की विशिष्ट भूमिका और अनोखी विशेषताएँ होती हैं। यहाँ हम लयनकायों (लाइसोसोमों), परऑक्सीसोमों और स्फीरोसोमों का विवेचन करेंगे, जो अधिक विशिष्ट सूक्ष्मकाय हैं।

लयनकाय

इतिहास की दृष्टि से अन्य अंगकों के विपरीत लयनकायों का अध्ययन सर्वप्रथम जीवरासायनिक (biochemical) विधियों से किया गया और जीवरासायनिक खोज के लगभग छह साल बाद तक ये इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में नहीं दिखलाई दिए। सन् 1955 ई० में लगभग आकस्मिक प्रकार से लयनकायों की खोज का श्रेय एक बेल्जियमी जीवरसायनविज्ञानी क्रिश्चियन द दवी को जाता है। वह चूहे के यकृत से उन एंजाइमों को अलग करने की चेष्टा कर रहा था, जो कार्बोहाइड्रेटों का जल अपघटन (hydrolyse) कर सकते थे। उसने जब भी कोशिकाओं को समांगीकृत (homogenized) किया तो हर बार उसने इन एंजाइमों की क्रियाशीलता में परिवर्तन पाया (चित्र 7.1)। फिर पुराने ऊतकों से ये एंजाइम अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्राप्त और पृथक् किए गए, और उसने पाया कि एक ही अंश वाले विभिन्न प्रकार के जल-अपघटनकारी एंजाइम प्रायः साथ-साथ नीचे तलछट में बैठ जाते हैं। बाद में इस तलछट वाले या अवसादित
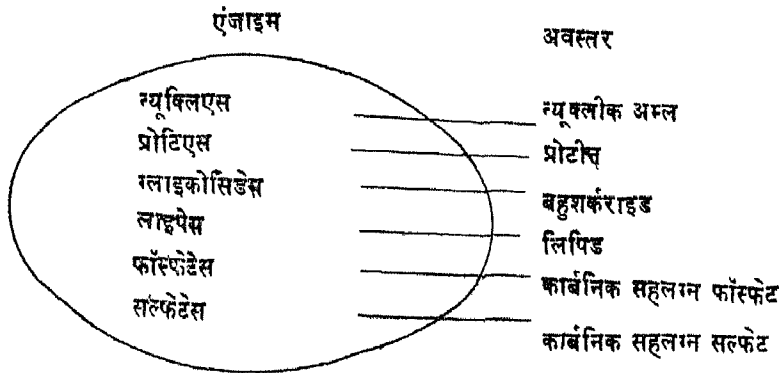
चित्र 7.1 : लयनकायों के एंजाइम और वे अवस्तर (सबस्ट्रेट) जिनका जल-अपघटन वे झिल्ली के फटने पर करते हैं।

sedimented) अंश का इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शी में निरीक्षण करने पर पाया गया कि ये सभी जल-अपघटनकारी एंजाइम छोटे कायों (पिंडों) में आवेष्टित थे और इन्हीं को ही **लयनकाय** कहा गया। यह अध्ययन कर लिया गया है कि लयनकायों में एक ही झिल्ली और करीब 40 विभिन्न प्रकार के हाइड्रोलेस एंजाइम होते हैं, और इनमें सबसे महत्वपूर्ण एंजाइम है अम्लीय फॉस्फेटेस। ये लयनकाय अपेक्षाकृत छोटे अंगक हैं जो व्यास में औसत रूप से 0.5 μ होते हैं।

स्तनियों की लाल रुधिर कोशिकाओं (ला० रु० को०-RBC) सरीखी कुछ प्रकार की कोशिकाओं के अतिरिक्त ये लयनकाय संभवतया सभी आदिजन्तुओं तथा बहुकोशिक प्राणियों की कोशिकाओं में पाए जाते हैं। लयनकाय कुछ प्रकार की पादप-कोशिकाओं में भी पाए गए हैं; जैसे कि खमीर (यीस्ट), कवक और **यूग्लीना** सरीखे हरे एककोशिक जीवों में।

सभी लयनकाय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आंतरकोशिक पाचन (intracellular digestion) से सम्बन्धित होते हैं। पचाया जाने वाला पदार्थ उद्गम में बहिर्जात (exogenous) या कोशिकाबाह्य अथवा अन्तर्जात (endogenous) या आंतरकोशिक हो सकता है। मिले-जुले रूप में लयनकायी एंजाइम कोशिकाओं में सभी वर्गों के बृहदणुओं का जल-अपघटन करने में सक्षम होते हैं। जिस पदार्थ पर जल-अपघटनकारी एंजाइम किया करते हैं उसे लयनकायों में प्रविष्ट होना चाहिए क्योंकि एंजाइम इनके अन्दर ही सीमित रहते हैं (चित्र 7.2)।

सभी इस बात को मानते हैं कि लयनकाय-निर्माण का मुख्य स्थल गॉल्जी समुच्चय है। रुक्ष अन्तर्द्रव्यी जालिका में संश्लेषित एंजाइमों का परिवहन वाहिकाओं द्वारा गॉल्जी समुच्चय की कुंडिकाओं तक किया जाता है जहां वे कायों या पिंडों में संवेष्टित कर दिये जाते हैं और लयनकाय बन कर अलग हो जाते हैं।

अंतर्वस्तुओं (contents) की आकारिकी (morphology) और कार्यों के आधार पर लयनकायों को
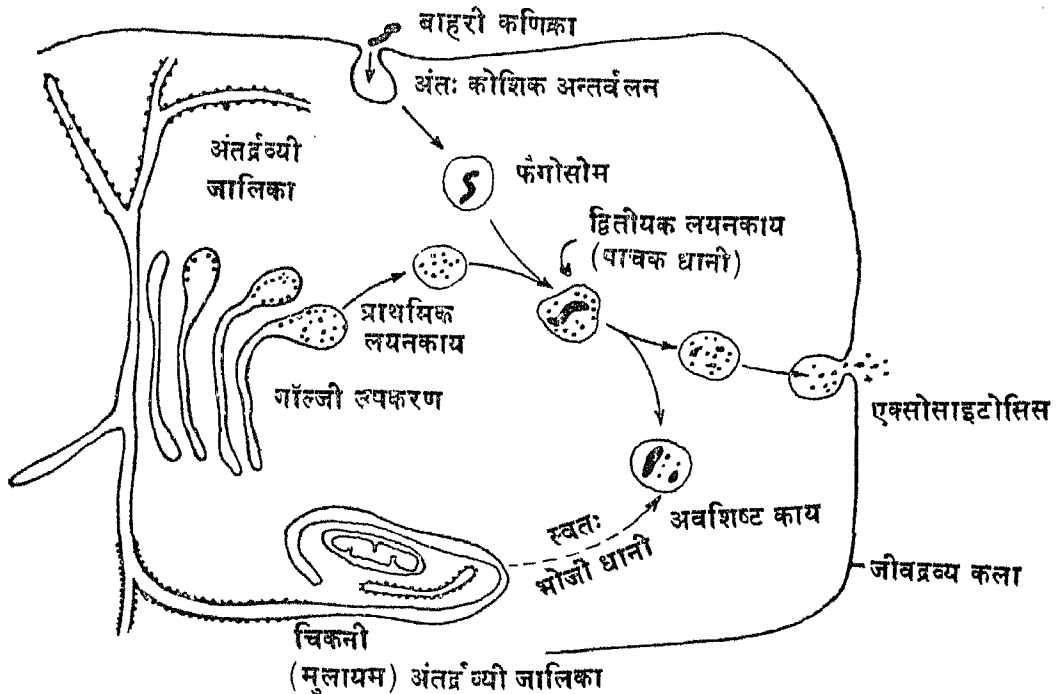
चित्र 7.2 : लयनकाय-चक्र का आरेख।

निम्नलिखित मुख्य चार प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

1. प्राथमिक (primary) लयनकाय।
2. द्वितीयक (secondary) लयनकाय।
3. अवशिष्ट (residual) काय या पिंड।
4. स्वतः भोजी धानियाँ (autophagic vacuoles)।

प्राथमिक लयनकाय वे पिंड या काय हैं जिनमें केवल एंजाइम होते हैं। ये गॉल्जी समुच्चय से एक बार ही उत्पन्न होते हैं। प्राथमिक लयनकायों में एंजाइम अधिकांशतया अक्रिय अवस्था में रहते हैं। लयनकाय के अन्दर जब एंजाइम और पचाया जाने वाला या पचाया जा रहा पदार्थ दोनों विद्यमान होते हैं तो लयनकाय को **द्वितीयक लयनकाय** कहा जाता है। इन द्वितीयक लयनकायों में पाचित या अपाचित अणु भारी संख्या में जमा हो सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप बनने वाली संरचनाओं को **अवशिष्ट काय** (पिंड) कहते हैं। वृद्धोन्मुख या जरण (ageing) तथा विकृति की दशाओं में लयनकाय अन्य आंतरकोशिक अंगकों पर आक्रमण कर उन्हें घेर कर व धानियों में बन्द कर उनका पाचन करने लग जाते हैं। ऐसे धानीय लयन-कायों को **स्वतः भोजी धानियाँ** कहा जाता है। अधिकांश पाचन प्रकारों में, द्वितीयक लयनकाय बनाने के लिए, प्राथमिक लयनकाय कोशिका में कोशिकाबाह्य अथवा आंतरकोशिक पदार्थों वाली अन्य धानियों से प्रायः घुल मिल जाते हैं। लयनकायों द्वारा किए जाने वाले कुछ महत्व-पूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं :

1. आंतरकोशिक और विशेष परिस्थितियों में कोशिका बाह्य पाचन द्वारा विषम पोषण (heterotrophic nutrition) में सहायता देना।
2. श्वेताणुओं (leucocytes) के लयनकाय जीवाणु सरीखे सूक्ष्मजीवों के संक्रमण (infection) के प्रति कोशिका की रक्षा करने और आविषालु (toxic) अणुओं को पचाकर उनसे बचाव करने में सहायता देते हैं।
2. लयन (lysis) की प्रक्रिया द्वारा बाधा पहुँचाने वाली संरचनाओं पर आक्रमण करना।
4. पोषण न मिलने की प्रतिकूल परिस्थितियों में ये कोशि-कीय पाचन द्वारा पोषण प्रदान करने में सहायता पहुँचाते हैं।
5. ये निषेचन (fertilization), विभेदन और कायान्त-रण (metamorphosis) से भी सम्बद्ध होते हैं।
6. दीर्घजीवी तथा मृतजीवी कोशिकाओं के स्वतः पुन-र्युवन (self rejuvenatian) के एक पहलू के रूप में यह आन्तरकोशिक सफाई करते हैं।
7. क्रमानुसार होने वाला कोशिकीय भंजन (breaking) कोशिकीय जरण या वृद्धावस्था से सम्बद्ध होता है।

परऑक्सीसोम

परआक्सीसोमों को सूक्ष्मकाय या सूक्ष्मपिंड भी कहते हैं और ये सबसे पहले कृन्तक (rodent) के वृक्क या गुर्दे (kidney) में देखे गए थे। ये सुस्पष्ट अंगक पौधों व प्राणियों में बहुतायत से पाए जाते हैं। व्यास में ये 0.5 से 1μ तक होते हैं और केवल एक ही झिल्ली द्वारा परिसीमांकित (delimited) रहते हैं। इनमें बारीक दानेदार आधात्री होती है। इनमें प्रायः एक केन्द्रीय क्रोड (core) होता है जिसे केन्द्रकाभ (nucleoid) कहते हैं। केन्द्रकाभ में समांतर नलिकाएँ अथवा व्यावर्तित यानी लिपटे (twisted) सूत्र हो सकते हैं। परऑक्सीसोम सामान्यतया अन्तर्द्रव्यी जालिका के निकट सम्पर्क में पाए जाते हैं। भिन्न-भिन्न पादप व प्राणी-कोशिकाओं में एंजाइमीय रचना की दृष्टि से परऑक्सीसोमों में विविधता पायी जाती है लेकिन इनमें परऑक्साइड उत्पन्न करने वाले कुछ एंजाइम होते हैं, जैसे कि यूरेट आक्सिडेस, डी० अमीनो अम्ल ऑक्सिडेस, बी-हाइड्राक्सी एसिड ऑक्सिडेस और कैटालेस। ये पर-ऑक्सीसोम किसी तरह कुछ उपापचयी प्रक्रियाओं से सम्बद्ध होते हैं, जैसे कि पौधे की कोशिकाओं में प्रकाश-श्वसन (photorespiration) और प्राणियों की कोशि-काओं में लिपिड-उपापचय से। फिर भी इनकी सही भूमिका क्या है यह अभी अस्पष्ट है (चित्र 7.3)।

स्फीरोसोम

स्फीरोसोम एक ही झिल्ली द्वारा परिबद्ध (बंधे) रहते हैं। इनमें एंजाइम होते हैं और इन्हें प्रकाश-सूक्ष्म-दर्शी से भी देखा जा सकता है। लेकिन लयनकायों की तुलना में इनका कार्य कुछ कम सामान्य प्रकार का है। सूडान अभिरंजक (stain) और यहाँ तक कि आस्मियम
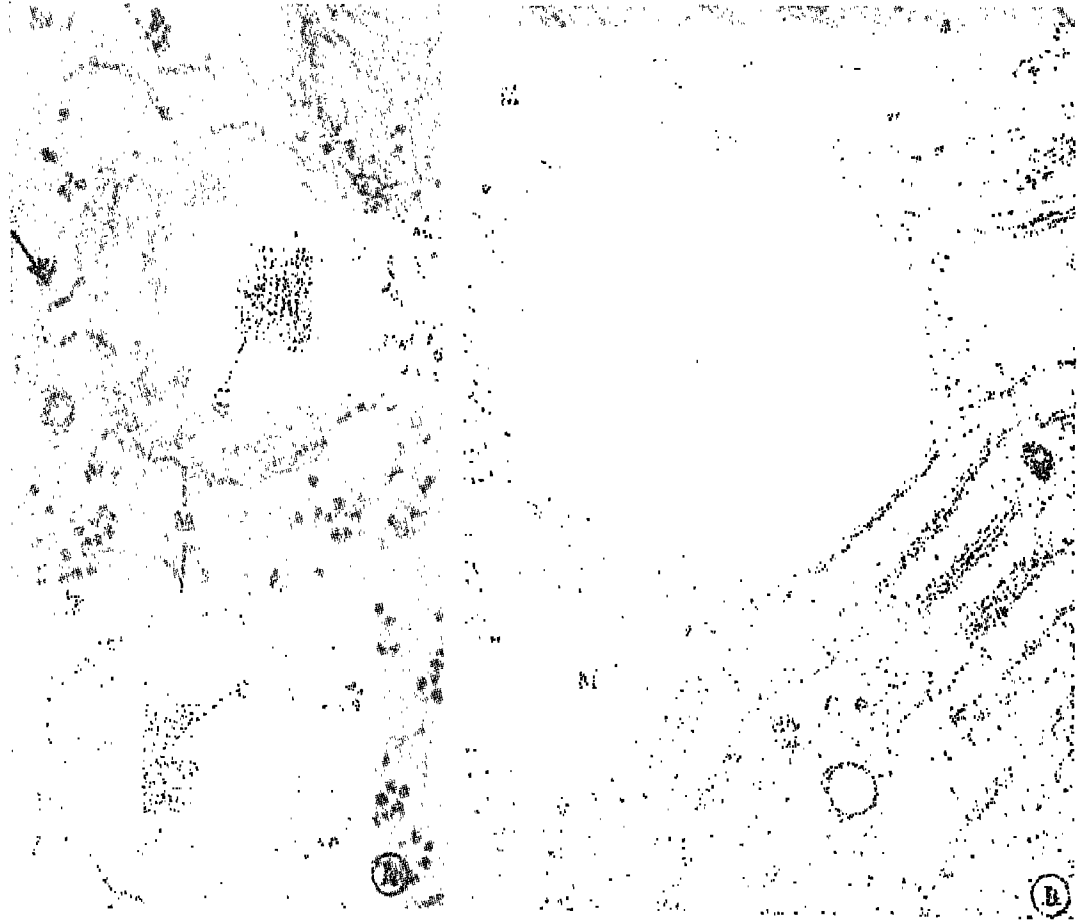
चित्र 7.3 : घासी पौधे की कोशिका के परऑक्सीसोम ।

टेट्रॉक्साइड समेत वसा-अभिरंजकों के प्रति ये कुछ बंधुता (affinity) दिखलाते हैं ।

स्फीरोसोमों की उत्पत्ति अन्तर्द्रव्यी जालिका से होती है । ये मुकुलन (budding) की प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं । इनमें एंजाइमीय प्रोटीन होते हैं जो तेल और वसाओं का संश्लेषण करने में सक्षम होते हैं । इनका आगे का परिवर्धन (development) लिपिड अंश की वृद्धि के साथ-साथ प्रोटीन अंश की कमी होने से होता है ।

स्फीरोसोमों और विशेषकर अम्लीय फॉस्फेटेस के प्रसंग में एंजाइमीय सक्रियता का पता लगाने पर ज्ञात हुआ है कि इनमें और लयनकायों में मुख्य अन्तर नहीं है । लेकिन स्फीरोसोमों के विशिष्ट लिपिडीय (lipidic) स्वभाव से यह अर्थ निकलता है कि आकृतिक और कार्यात्मक दृष्टि से इन कणों को लयनकायों से पृथक समूह में रखा जा सकता है ।

प्रश्न

1. लयनकायों का वर्णन करते हुए कोशिकीय उपापचय में उनकी भूमिका समझाइए।

2. परऑक्सीसोमों और स्फीरोसोमों से आप क्या समझते हैं ?

3. लयनकायों को आत्मघाती थैलियाँ क्यों समझा जाता है ?

4. विभिन्न प्रकार के लयनकायों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 8

ऊर्जा (Energy)

ऊर्जा के संरक्षण (conservation) का सिद्धान्त विज्ञान का एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है । इसके अनुसार, ऊर्जा का न तो उत्पादन होता है और न विनाश, उसका केवल एक रूप से दूसरे में रूपान्तरण किया जा सकता है। सभी जीवधारियों को जीवित रहने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसका पता हमें एन्ट्रॉपी (entropy) वाले भौतिक विज्ञान के दूसरे महत्वपूर्ण नियम से चलता है। इस नियम के अनुसार सभी जीवित अथवा अजीवित पदार्थों के तंत्रों (systems) को यदि उन पर यूँ ही छोड़ दिया जाय और मुक्त ऊर्जा उपलब्ध न कराई जाय तो इससे अव्यवस्था और गड़बड़ी (उच्च एन्ट्रॉपी) की दशा बढ़ती ही चली जाएगी। जीवधारियों के तंत्र में एन्ट्रॉपी यानी अव्यवस्था की सबसे उच्च दशा मृत्यु है। अतः मृत्यु से बचने के लिए सभी जीवधारियों को ऊर्जा की निरन्तर आपूर्ति (supply) की आवश्यकता होती है। इस प्रकार सभी जीवधारियों के तंत्रों में जीवन के विविध प्रक्रमों (processes) के हेतु शक्ति प्रदान करने के लिए ऊर्जा अवश्य ही उपलब्ध होती रहनी चाहिए। सारणी 8.1 में दिखाया गया है कि कुछ महत्वपूर्ण आवश्यक कार्यों को पूरा करने के लिए कोशिका कैसे ऊर्जा का उपयोग करती है :

सारणी 8.1

कोशिकीय ऊर्जा
- कोशिका विभाजन (Division)
- नए घटकों तथा अणुओं का संश्लेषण
- परासरणी (Osmotic) कार्य
- झिल्ली के आरपार पदार्थों का परिवहन
- तंत्रिकीय चालन (nervous conduction)
- पेशीय संकुचन (Contraction) आदि

जीवधारियों के तंत्रों के लिए ऊर्जा का सबसे अधिक उपयुक्त रूप रासायनिक ऊर्जा है क्योंकि इसे आसानी से **स्थानांतरित, रूपांतरित** और **संचित** किया जा सकता है। चूंकि रासायनिक ऊर्जा को प्रायः ही ऊर्जा के अन्य रूपों में बदला जाता है इसलिए जीवधारियों की सभी कोशिकाओं की यही प्राथमिक ऊर्जा है।

जीवधारियों की कोशिकाओं की ऊर्जा की मुद्रा (currency) एक रासायनिक यौगिक है, जिसे ऐडीनोसिन ट्राइ फॉस्फेट (ए० टी० पी०—ATP) कहते हैं। ए० टी० पी० में एक नाइट्रोजनीय क्षारक (base), ऐडीनीन, होता है जो पाँच कार्बन वाली शर्करा (sugar), राइबोस से सम्बद्ध होता है। तीन फॉस्फेट अणुओं की श्रृंखला शर्करा के अणु से सम्बद्ध होती है। एक फॉस्फेट समूह में फॉस्फोरस का एक, और ऑक्सीजन के तीन परमाणु होते हैं (चित्र 8.1)।
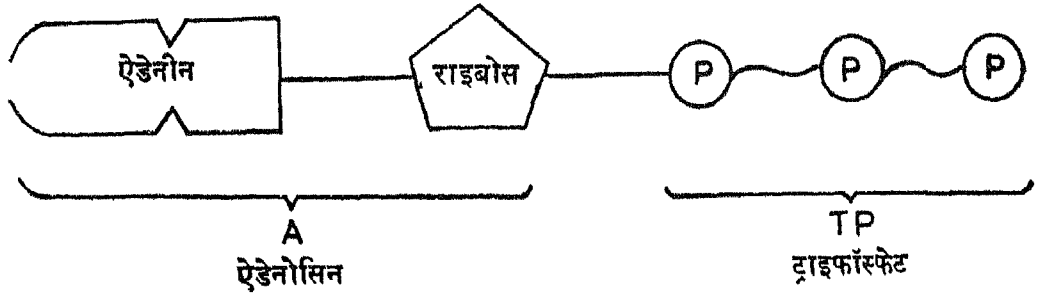
चित्र 8.1 : ए० टी० पी० (ATP) अणु का आरेखीय निरूपण।

ए० टी० पी० की अधिकांश ऊर्जा दो फॉस्फेट समूहों के बन्धनों (bonds) में सिरे पर होती है। जब एक ए० टी० पी० अणु एंजाइम की सहायता से जल से अभि-क्रिया करता है तो दूसरे तथा तीसरे फॉस्फेट के बीच का
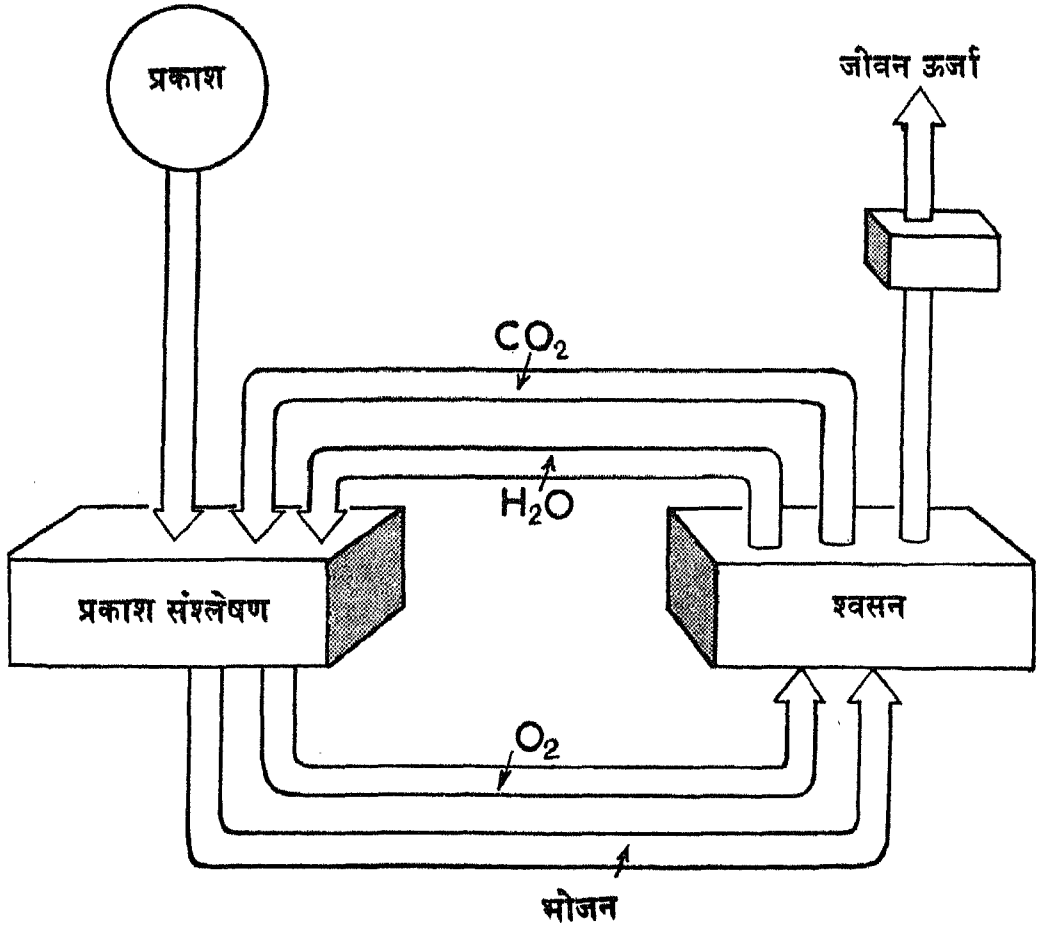
चित्र 8.2 : जीवधारियों की दुनिया में ऊर्जा का प्रवाह दर्शाने वाला आरेख।

बन्धन टूट जाता है। इससे ऊर्जा निर्मुक्त होती है यानी निकलती है और जिसे ऊष्मा ऊर्जा (heat energy) के रूप में मापा जा सकता है।

$ATP + H_2O \rightarrow ADP + P_1 + 30K$ ऊर्जा जूल इस प्रकार ए०टी०पी०के सिरे वाले फॉस्फेट-अवशिष्ट के निराकरण या पृथक्करण से 30K जूल उष्मा/अणु उन्मुक्त होती है इसलिए इस बन्धन को ऊर्जा की अधिकता वाला फॉस्फेट-बंधन कहते हैं। जीवित कोशिकाओं के अन्दर उन्मुक्त ऊर्जा ऊष्मा के रूप में नष्ट नहीं की जाती बल्कि कोशिका के कार्यों को करने में उसका उपयोग किया जाता है। जब ए० टी० पी० का एक अणु अधिक ऊर्जा वाले फॉस्फेट समूह को खोता है तो वह ऐडीनोसिन डाइ फॉस्फेट (ए० डी० पी०—ADP) बन जाता है। लेकिन फिर से ए० टी० पी० का अणु बनाने के लिए ए० डी० पी० को एक फॉस्फेट समूह से जुड़ना होता है। फॉस्फेट समूह को ए० डी० पी० से जोड़ने के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है वह कोशिका के अन्दर ग्लूकोस सरीखे कार्बनिक यौगिक के टूटने से उपलब्ध होती है।

कोशिकाओं में ऊर्जा के स्रोत

जैसा कि ऊपर बताया गया है, जीवधारी शर्कराओं, वसाओं अथवा अमीनो अम्लों सरीखे कार्बनिक यौगिकों को तोड़कर ए० टी० पी० के संश्लेषण के लिए ऊर्जा प्राप्त करते हैं लेकिन ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत सूर्य है। सूर्य की प्रकाश-ऊर्जा हरे पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण (photosynthesis) की प्रक्रिया के माध्यम से, कार्बन डाइऑक्साइड और जल की सहायता से, शर्कराओं के संश्लेषण में प्रयुक्त की जाती है। सामान्य रूप से सभी प्राणी भोजन के रूप में कार्बनिक यौगिकों के लिए पौधों पर निर्भर रहते हैं, जिनका उपयोग श्वसन (respiration) की प्रक्रिया में ऊर्जा यानी ए० टी० पी० के उत्पादन के लिए किया जाता है। यद्यपि कार्बन डाइऑक्साइड, जल और ऑक्सीजन श्वसन प्रकाश-संश्लेषण के चक्रों से सम्बद्ध हैं तो भी जीवधारियों की दुनिया में ऊर्जा एक ही दिशा में प्रवाहित होती है। सूर्य के प्रकाश से इस ऊर्जा को प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा रूपांतरित और श्वसन की क्रिया द्वारा उन्मुक्त किया जाता है (चित्र 8 2)।

जीवित कोशिकाओं में श्वसन और प्रकाश-संश्लेषण के ये कार्य क्रमशः माइटोकॉन्ड्रिया और हरितलवक (chloroplast) नाम के दो विशेष अंगकों द्वारा किए जाते हैं। आगे हम इन अंगकों का अध्ययन करेंगे और साथ ही यह जानकारी भी प्राप्त करेंगे कि इन कार्यों को ये कैसे पूरा करते हैं।

प्रश्न

1. विस्तारपूर्वक इस तथ्य का उल्लेख कीजिए कि ऊर्जा उत्पन्न करने वाली अभिक्रियाएं कई चरणों (अवस्थाओं) में होती हैं।
2. ग्लूकोस और सूक्रोस में से आप शीघ्र ऊर्जा-प्राप्ति के लिए कौन-सा पदार्थ लेंगे ? और क्यों ?
3. कोशिका के उन महत्वपूर्ण कार्यों को बतलाइए जिनमें ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।
4. समझाइए कि कोशिका की प्रक्रियाओं के लिए ए० टी० पी० के रूप में रासायनिक ऊर्जा ही क्यों ऊर्जा का सबसे अधिक उपयुक्त रूप है।

अध्याय 9

माइटोकॉन्ड्रिया

माइटोकॉन्ड्रिया को कोशिका का "बिजलीघर" कहा जाता है क्योंकि ये ऊर्जा के उत्पादक हैं। माइटोकॉन्ड्रिया सबसे पहले सन् 1886 ई० में ऑल्टमान द्वारा देखे गए थे और उस समय ये **बायोब्लास्ट्स** (bioblasts) कहलाए। बेन्डा (1897) ने इनको अभिरंजित करके (रंग कर) विस्तार में इनका अध्ययन किया और इनको **माइटोकॉन्ड्रिया** (यूनानी भाषा का **माइटो** : धागा, **कॉन्ड्रियन** : कणिका) नाम दिया। जीवाणुओं (बैक्टीरिया) और नीले-हरे शैवालों को छोड़कर माइटोकॉन्ड्रिया समस्त पौधों व प्राणियों की कोशिकाओं में पाए जाते हैं। यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इससे विकास-क्रम में इनके उद्भव (origin) पर प्रकाश डालना सम्भव हो सकेगा। स्तनियों की रक्ताणु (erythrocytes) आर० बी० सी० (RBC) सरीखी कुछ अधिक विशिष्टीकृत कोशिकाओं ने द्विवतीयक लक्षण के रूप में अपने माइटोकॉन्ड्रिया को खो दिया है। प्रति कोशिका इनकी संख्या कुछ से लेकर कई हजार तक हो सकती है, जो कोशिका के प्रकार और प्रकार्यात्मक दशा पर निर्भर करता है।

माइक्रोस्टीरियास नामक शैवाल में केवल एक माइटोकॉन्ड्रियन (माइटोकॉन्ड्रिया का एकवचन) होता है लेकिन कैओस कैओस नामक अमीबा में 50,000 माइटोकॉन्ड्रिया तक हो सकते हैं। मानव की यकृत कोशिकाओं में ये 1000 किन्तु वृक्क या गुर्दे की कोशिका में 300 से 400 तक हो सकते हैं। यद्यपि विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में इनका साइज़ बदलता रहता है तो भी आम तौर पर व्यास में ये 0.5 से 1.0 माइक्रॉन तथा लम्बाई में 5 से 10 माइक्रॉन या इससे अधिक होते हैं। इनका साइज़ (आकार), आकृति और संख्या कोशिकाओं की शरीर क्रियात्मक, विकृति (pathological) और विभेदन की दशाओं के अनुसार बदलती रह सकती हैं। ऊतक (tissue) की पतली काट लेकर और उसे उपयुक्त अभिरंजकों से रंगकर माइटोकॉन्ड्रिया आसानी से देखे जा सकते हैं। प्रावस्था-विपर्यासी सूक्ष्मदर्शी (फेज़ कॉन्ट्रास्ट माइक्रोस्कोप) की सहायता से इन्हें जीवित कोशिकाओं में भी देखा जा सकता है। वास्तव में माइटोकॉन्ड्रिया की उपस्थिति तब तक विवादास्पद रही जब तक कि प्रावस्था-विपर्यासी और इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शियों द्वारा इनका निरीक्षण नहीं कर लिया गया।

संरचना

प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी में एक कोशिका के माइटोकॉन्ड्रिया तंतुमय (filamentous) गोलाकार अथवा सॉसेज की आकृति के कायों या रचनाओं के रूप में दिखलाई देते हैं। लेकिन माइटोकॉन्ड्रियन की विस्तृत संरचना तो इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही सुस्पष्ट होती है। माइटोकॉन्ड्रियन में एक दोहरी झिल्ली होती है—एक बाहरी और दूसरी भीतरी। बाहरी झिल्ली और भीतरी झिल्ली के बीच में 60-100 A° चौड़ा अवकाश या स्थान (space) होता है। भीतरी झिल्ली बहुत अधिक मुड़ी-तुड़ी

या चुन्नटदार होती है (चित्र 9.1)। इन अंतर्वलनों या अन्दर की ओर वाली चुन्नटों को शिखा (cristae) या किरीट कहते हैं। इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्म चित्रों में ये शिखाएँ ही माइटोकॉन्ड्रिया की परिच्छेदिकाओं (profiles) में उनकी पहचान कराने वाले विशेष लक्षण हैं। बृहत् इस प्रकार माइटोकॉन्ड्रियन के प्रत्येक भाग को जीवरासायनिक विश्लेषण के लिए प्राप्त किया जा सकता है। माइटोकॉन्ड्रिया में करीब 25 से 35 प्रतिशत लिपिड, 5 से 7 प्रतिशत आर० एन० ए० तथा सूक्ष्ममात्रा (लेशमात्र) में डी० एन० ए०, और 60 से 70 प्रतिशत
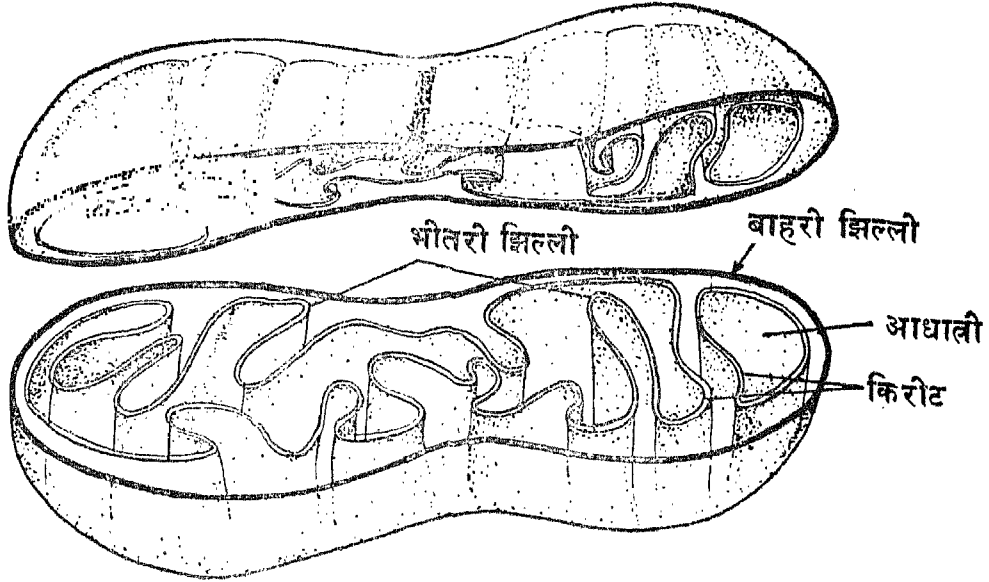
चित्र 9.1 : माइटोकॉन्ड्रियन की आरेखी संरचना।

अन्तर्वलनों के कारण भीतरी झिल्ली का पृष्ठीय क्षेत्रफल (surface area) बाहरी झिल्ली के पृष्ठीय क्षेत्रफल से काफी अधिक होता है। भीतरी झिल्ली से ढका भाग ही आधात्री (मैट्रिक्स) होता है। इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शिकी (microscopy) में नकारात्मक अभिरंजन (negative staining) की एक विशेष तकनीक द्वारा भीतरी झिल्ली की शिखाओं में टेनिस के बल्ले (रैकेट) की आकृति की कई सवृंत (stalked) रचनाएँ या पिंड होते हैं। इन्हें मूल कण (elementary particles) अथवा **ऑक्सीसोम** कहते हैं। अब ऐसी तकनीकें भी मालूम हैं जिनसे हम शुद्ध रूप में माइटोकॉन्ड्रिया को ही नहीं बल्कि बाहरी व भीतरी झिल्लियों तथा आधात्री को भी पृथक् कर सकते हैं।

प्रोटीन होते हैं। माइटोकॉन्ड्रियन में लगभग 60 विभिन्न प्रकार के एंजाइम पाए गए हैं। अब माइटोकॉन्ड्रियन के विभिन्न भागों में इनमें से कुछ एंजाइमों का स्थान निर्धारित करना और उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों से सम्बन्ध स्थापित करना संभव हो गया है (चित्र 9.2)।

कार्य

माइटोकॉन्ड्रिया द्वारा किए जाने वाले **कार्य** हैं— *संश्लेषण द्वारा कोशिकीय ऊर्जा का रूपांतरण व स्थानान्तरण*, कोशिका की गतिविधियों के उपयोग के लिए ए० टी० पी० का संचय और मोचन (release), और कुछ सीमा तक अपनी ही झिल्लियों में उनसे बाहर और भीतर पदार्थों व जल के परिवहन का नियंत्रण। इस प्रकार

चित्र 9.2 : माइटोकॉन्ड्रियन की शिखाओं (cristae) का एक भाग, जिसमें मूलकण दिखलाया गया है।

माइटोकॉन्ड्रिया छोटी जीवरासायनिक फैक्टरियाँ है जो खाद्य पदार्थों, ऑक्सीजन और ऐडीनोसिन डाइ फॉस्फेट (ए० डी० पी०) से अधिक ऊर्जा वाले ए० टी० पी० अणु उत्पन्न करते हैं। चित्र 9.3 के आरेख (diagram) से माइटोकॉन्ड्रियन के निवेश (input) और निर्गम (output) को अच्छी तरह से समझा जा सकेगा।

यद्यपि ऊपर इसे सरल बताया गया है लेकिन ए० टी० पी० उत्पादन की प्रक्रिया से कई परस्पर सम्बन्धित अभिक्रियाएं सम्बद्ध होती हैं और इनमें से प्रत्येक अभिक्रिया एक विशिष्ट एंजाइम से नियंत्रित होती है। ऊर्जा के रूपांतरण, मोचन और स्थानान्तरण की शृंखला चरणवार (stepwise) धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है (चित्र 9.4)।

फॉस्फेटीकरण (phosphorylation) की प्रक्रिया में, यानी फॉस्फेट को ए० डी० पी० से जोड़ने की प्रक्रिया में, ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो इलेक्ट्रॉनों के मोचन तथा प्रग्रहण (capture) के व्यवस्थित नियंत्रण द्वारा प्राप्त की जाती है। रसायनविज्ञान की भाषा में कहें तो कह सकते हैं कि एक अणु से दूसरे अणु में इलेक्ट्रॉनों के स्थानांतरण में ऑक्सीकरण (oxidation) और अपचयन
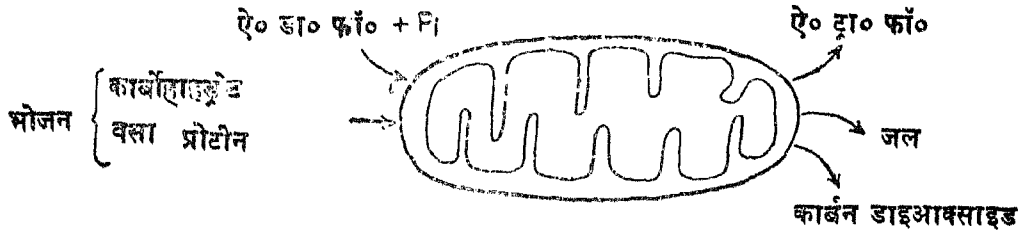
चित्र 9. 3 माइटोकॉन्ड्रिया में भोजन का अधिक ऊर्जा वाले ए०टी० पी० में रूपांतरण।

(reduction) की अभिक्रियाएँ सम्बद्ध होती हैं। इलेक्ट्रोन को खोने वाला अणु **ऑक्सीकृत** (oxidised) और इलेक्ट्रोन प्राप्त करने वाला अणु **अपचित** (reduced) हो जाता है। एक अणु से दूसरे अणु में इलेक्ट्रोनों के ऐसे स्थानान्तरण से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग ए० डी० पी० में फॉस्फेट का अणु जोड़ने में, यानी ए० टी० पी० बनाने में, किया जाता है। इस प्रक्रिया को **ऑक्सीकरणी फॉस्फेटीकरण** कहते हैं। इलेक्ट्रोनों के इस स्थानांतरण का सदुपयोग और नियन्त्रण अभिक्रियाओं की एक शृंखला द्वारा किया जाता है जिसमें ऑक्सीजन का उपयोग करके उसे हाइड्रोजन के परमाणुओं से जोड़ा जाता है और जो इलेक्ट्रोन स्थानांतरण-तंत्र के उप-उत्पादों (side products) के रूप में उन्मुक्त कर दिए जाते हैं। हाइड्रोजन का ऑक्सीजन के साथ युग्मन (coupling) होने या जुड़ने से जल बन जाता है और इस प्रक्रिया से सम्बद्ध अभिक्रियाओं की शृंखला को श्वसन कहते हैं। इस प्रकार ए० टी० पी० अणुओं के उत्पादन के लिए ऑक्सीकरणी फॉस्फेटीकरण श्वसन से सम्बद्ध होता है। इलेक्ट्रोनों का
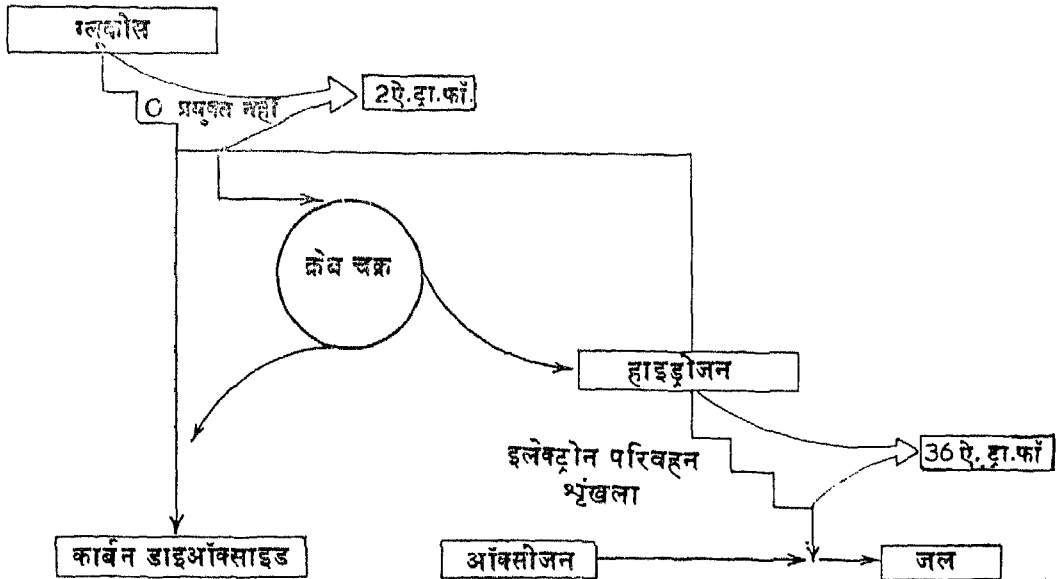
चित्र 9.4 : श्वसन के दौरान—हाइड्रोजन और ए. टी. पी. (ATP) के दो अणु उत्पन्न करने वाली अभिक्रियाओं में ऑक्सीजन के अभाव में पहले ग्लूकोस का अणु तोड़ा जाता है। क्रेब्स सिट्रिक अम्ल चक्र में यह आगे फिर कार्बन डाइऑक्साइड और हाइड्रोजन में तोड़ दिया जाता है। अंत में श्वसन-शृंखला (इलेक्ट्रोन परिवहन शृंखला) के माध्यम से ऑक्सीजन से जुड़ने के लिए जब हाइड्रोजन का स्थानांतरण किया जाता है तो ऊर्जा उन्मुक्त होती है, जिसका उपयोग ए. टी. पी. के 36 अणु बनाने के लिए किया जाता है।

यह चरणवार मोचन उपापचयी क्रियाओं के एक चक्र (cycle) द्वारा संपन्न होता है, जिन्हें सामूहिक रूप से **सिट्रिक अम्ल चक्र या क्रेब्स चक्र** कहा जाता है क्योंकि इसका उल्लेख सबसे पहले क्रेब्स नाम के वैज्ञानिक ने किया था। सभी खाद्य पदार्थ ऐसीटिल—CO-A—नाम के एक यौगिक से निम्न श्रेणी में रखे गए हैं, जो कि सिट्रिक अम्ल चक्र की शुरुआत करता है। जब सारा चक्र पूरा हो जाता है तो, उदाहरण के लिए, ईंधन (fuel) के रूप में, ग्लूकोस के एक अणु से, कार्बन डाइऑक्साइड के तीन अणु, ए० टी० पी० के छत्तीस अणु और जल का एक अणु उत्पन्न होता है।

ऊपर बताए गए कार्य माइटोकॉन्ड्रिया द्वारा ठीक-ठीक किस तरह किए जाते हैं यह अभी तक अच्छी तरह से नहीं समझा जा सका है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि इन सब अभिक्रियाओं के सही-सही सहसम्बन्ध और समन्वय (coordination) के लिए काफी अधिक समन्वित संरचनात्मक संगठन की आवश्यकता होती है। अब हमें मालूम है कि यद्यपि कुछ एंजाइम बाहरी झिल्ली में, कुछ झिल्ली और आधात्री (मैट्रिक्स) के बीच के अवकाश (स्थान) में स्थित होते हैं लेकिन अधिकांश क्रेब्स चक्र वाले एंजाइम भीतरी झिल्ली में ही स्थित होते हैं, और ए०डी०पी०अणु से शृंखलीकरण-फॉस्फेट के फॉस्फेटीकरण की क्रिया का अंतिम चरण मूल कण में ही संपन्न होता है, जिसमें इस प्रकार की अभिक्रिया के लिए ए०टी० पी० एस (ATPase) नामक एक एंजाइम होता है।

माइटोकॉन्ड्रिया का जीवात् जनन (biogenesis)

माइटोकॉन्ड्रिया किस प्रकार बनते हैं इसको समझाने के लिए तीन सामान्य संकल्पनाएं (hypothesis) प्रस्तुत की गई हैं: (1) कोशिकाद्रव्य में पूर्ववर्ती से नए सिरे से, (2) अन्य अमाइटोकॉन्ड्रियाई (non-mitochondrial) झिल्लियों से, जैसे कि केन्द्रकीय (nuclear) तथा प्लैज्मा झिल्ली से, (3) पहले से विद्यमान माइटोकॉन्ड्रिया की वृद्धि व विभाजन से। वर्तमान प्रमाण माइटोकॉन्ड्रिया के उद्भव की तीसरी संभावना के ही पक्ष में जाते हैं। पहली दो संभावनाओं के पक्ष में कम ही प्रमाण हैं। प्रमाणों की दृष्टि से सबसे लचर या कच्ची तो पहली वाली संभावना है। माइटोकॉन्ड्रियन में डी० एन० ए० की खोज और उसके अपने ही राइबोसोमों की उपस्थिति से अधिक संभावना इसी बात की है कि अपनी स्वयं की संश्लेषी कार्यप्रणाली के माध्यम से माइटोकॉन्ड्रिया पहले से विद्यमान अन्य माइटोकॉन्ड्रिया से ही उत्पन्न होते हैं। कुछ भी हो ऐसी प्रक्रिया में केन्द्रकीय नियंत्रण को तो अलग नहीं किया जा सकता।

प्रश्न

(1) माइटोकॉन्ड्रिया को कभी-कभी कोशिकाओं का बिजलीघर कह दिया जाता है, क्यों?

(2) एक माइटोकॉन्ड्रियन की परासंरचना समझाइए।

(3) फॉस्फेटीकरण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

(4) नए माइटोकॉन्ड्रिया किस प्रकार बनते हैं?

अध्याय 10

हरितलवक

कोशिकाओं के सभी अंगकों में सबसे महत्वपूर्ण हरितलवक ही है। यद्यपि ये अधिकांशतया हरे पौधों की कोशिकाओं में पाए जाते हैं तो भी सभी जीवधारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए इन्हीं पर निर्भर रहते हैं। ये जीवन के आधारभूत पदार्थ हैं जो खाद्य पदार्थों के संश्लेषण के लिए सूर्य की प्रकाश-ऊर्जा का सदुपयोग करने की क्षमता रखते हैं। पृथ्वी पर जो सारी हरियाली है वह सब इन हरितलवकों के कारण ही है। हरितलवक पौधों की कोशिकाओं में पाए जाने वाले कोशिकाद्रव्यी अंगक हैं। केवल कवक और कुछ जीवाणु (बैक्टीरिया) ही ऐसे पौधे हैं जिनमें हरितलवक नहीं होते। हरितलवक लवकों (plastids) का ही एक रूप है। लवक कई प्रकार के होते हैं। लेकिन इन्हें मुख्य रूप से तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है। अवर्णी लवक (leucoplasts) रंगहीन लवक होते हैं; वर्णलवकों (chromoplasts) में हरे रंग के अलावा अन्य रंग होते हैं; और हरे रंग वाले लवक ही हरितलवक (chloroplasts) होते हैं।

हरितलवक अपेक्षतया बड़े अंगक हैं और निर्मितियों (preparations) को रंगे (अभिरंजित) बिना भी इनको प्रकाश-सूक्ष्मदर्शी में देखा जा सकता है क्योंकि ये खुद ही हरे रंग के होते हैं। विभिन्न जातियों (species) में इनका साइज़ (आकार) और आकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कुछ शैवालों में ये प्याले की आकृति के या सर्पिल (spiral) फीते-जैसे होते हैं और कोशिकाओं के अधिकांश भाग को भरे रहते हैं। उच्चतर पौधों में अधिकांश हरितलवक प्रत्येक कोशिका में अंडाकार, लेन्साकार या चक्रिका (disc) की आकृति की संरचनाओं के रूप में होते हैं। घास की पत्ती की कोशिकाओं में प्रत्येक कोशिका में 50 से 60 हरितलवक पाए जाते हैं। उच्चतर पौधों में इनका साइज़ 2 से 4×5 से 10μ होता है। प्ररूपी या सामान्य हरितलवक में 50 से 60 प्रतिशत प्रोटीन, 25 से 35 प्रतिशत लिपिड, 5 से 10 प्रतिशत पर्णहरित (chlorophyll), पर्णहरित के अलावा अन्य वर्णक (pigments) 1 प्रतिशत और अल्प मात्रा में आर० एन० ए० तथा डी० एन० ए० होते हैं।

संरचना

हरितलवक दो झिल्लियों से परिबद्ध होते हैं जिनकी कुल मोटाई करीब $300A^{\circ}$ होती है। बाहरी झिल्ली जीवद्रव्य-कला की तरह होती है (चित्र 10.1)। भीतरी झिल्ली बहुत बारीक और जटिल प्रकार से पटलिकाओं (lamellae) का तंत्र बनाती है। हरितलवक का भीतरी भाग सुस्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित होता है—(1) अंतःस्थापित और रंगहीन भरण या आधारी पदार्थ वाला भाग या **पीठिका** (stroma), और (2) बंद चपटी थैलियों यानी **थाइलाकॉयडों** (thylakoids) का झिल्ली मय तंत्र। कुछ भागों में ये थाइलाकॉयडं सिक्कों के ढेर की तरह से, घनी तरह से ठुँसे होते हैं, और जिन्हें ग्रैना (grana) कहते हैं। एक

हरितलवक में 40 से 60 ग्रैना हो सकते हैं और प्रत्येक ग्रैनम (ग्रैना का एकवचन) में थाइलाकॉयड-जैसे 2 से

चित्र 10.1 : मक्का की पत्ती के हरितलवक की परासंरचना ।

D—झिल्लियाँ S—पीठिका
G—ग्रैना R—जालिका

100 सिक्के हो सकते हैं। पौधों की विभिन्न जातियों (स्पिसीज़) में थाइलाकॉयड कई किस्म के विन्यास (configuration) अपना सकते हैं। ये लम्बाईवार सरल समांतर (parallel) थैलियों के रूप में या थैलियों के जटिल प्रकार के परस्पर सम्बन्धित जाल के रूप में हो सकते हैं। हरितलवक का दूसरा विशेष लक्षण है कुछ मंडकणिकाओं की उपस्थिति, जो प्रायः एक विशेष क्षेत्र के निकट जमा हो जाती हैं और जिन्हें शैवालों में पाइरीनॉइड (pyrenoid) कहते हैं (चित्र 10.2)।

कार्य

हरितलवक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है प्रकाश-संश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस)। प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया में पर्ण-हरित के अणुओं द्वारा सूर्य की विकिरण ऊर्जा का उपयोग रासायनिक ऊर्जा उत्पन्न करने तथा भोजन के लिए शर्करा जैसे कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण करने में किया जाता है। इस प्रकार प्रकाश-संश्लेषण में वास्तविक रूप से दो मुख्य प्रक्रियाएँ होती हैं : (i) प्रकाश-फॉस्फैटीकरण (photo phosphorylation) यानी विकिरण-ऊर्जा की सहायता से ए०टी०पी० अणुओं का निर्माण, और (ii) इस ऊर्जा (ए०टी०पी०) के उपयोग के लिए कार्बन-डाइऑक्साइड तथा जल के संयोग से ग्लूकोस का संश्लेषण। पहली वाली अभिक्रिया तो प्रकाश पर निर्भर करती है और जो अंधेरे में हो ही नहीं सकती। इसीलिए इसे **प्रकाशिक अभिक्रिया** (photo-reaction) कहा जाता है। दूसरी वाली अभिक्रिया प्रकाश पर निर्भर नहीं करती और अंधेरे में भी हो सकती है। इसको **अप्रकाशिक अभिक्रिया** (dark-reaction) कहते हैं। इन प्रक्रियाओं का अध्ययन विस्तार में आप पहले ही कर चुके हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया में जल, कार्बन डाइऑक्साइड और प्रकाश की सहायता से हरितलवक ग्लूकोस और ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं। लेकिन हरितलवक द्वारा यह ठीक-ठीक किस प्रकार पूरा किया जाता है यह अभी ठीक से नहीं समझा जा सका है। फिर भी यह माना जाता है कि थाइलाकॉयड झिल्लियों के **क्वान्टोसोम** (quantosome) नामक कुछ कणिकीय (particulate) पिंड या संरचनाएँ प्रकाशिक अभिक्रियाओं से सम्बद्ध होती हैं, और अप्रकाशिक अभिक्रिया पीठिका के भरण (ground) या आधारी पदार्थ में होती हैं।
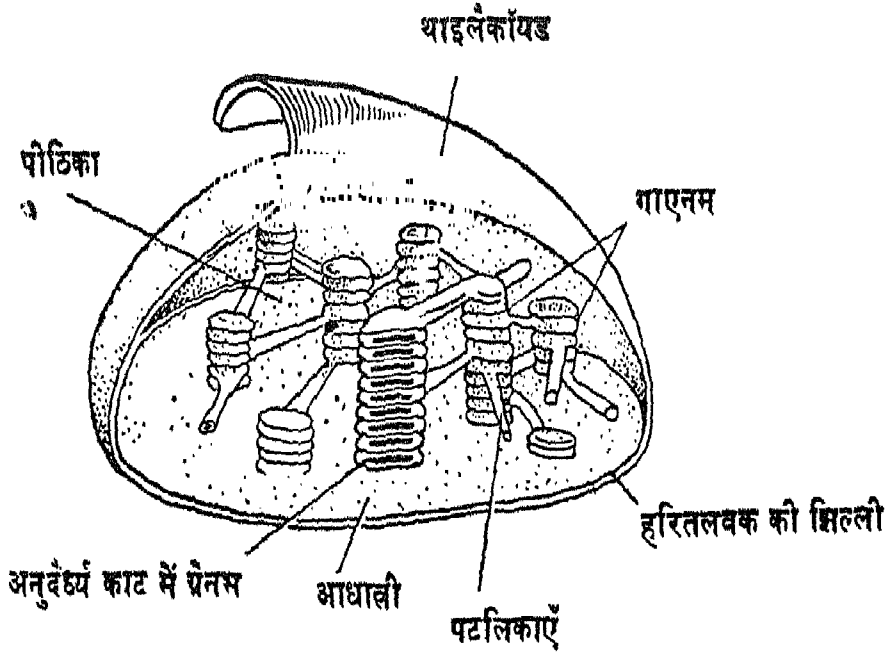
चित्र 16.2 : हरितलवक का त्रिविम संरचनात्मक आरेख ।

प्रश्न

1. प्रकाश-संश्लेषण की प्रकाशिक अभिक्रियाओं और अप्रकाशिक अभिक्रियाओं का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. प्ररूपी या सामान्य ससीमकेन्द्रकी (यूकैरिओटिक) हरितलवक की संरचना समझाइए ।
3. विभिन्न प्रकार के लवक कौन-कौन से होते हैं ?
4. क्या हम प्रकाश-संश्लेषण को जीवन का एक मूलभूत प्रक्रम (process) मान सकते हैं ?

अध्याय 11

तारककेन्द्र (Centrioles) तथा आधारी पिंड (आधारी काय)

तारककेन्द्र कोशिका-विभाजन के दौरान सूत्री विभाजन तर्कु (mitotic spindle) से सम्बद्ध चोटी कणिकाओं के रूप में दिखलाई देते हैं। ये तारककेन्द्र सूत्री विभाजन समुच्चय के ध्रुवीय (polar) सिरों पर जोड़े में देखे गए थे। विभाजन न करने वाली प्ररूपी या सामान्य कोशिकाओं में एक जोड़ा प्राय: गॉल्जी काय के निकट स्थित होता है। ये बेलनाकार संरचनाएँ हैं जो व्यास में करीब 0.15μ और लम्बाई में 0.3 से 0.5 μ होती हैं। यही प्रकाश सूक्ष्म-दर्शी की विभेदन (resolution) की सीमा भी है और इस कारण इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में इनके निरीक्षण किए जाने तक इनकी संरचना की बारीकियों के बारे में बहुत कम मालूम था।

इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में देखने पर तारककेन्द्रों को उनकी विशेष आकृति से पहचाना जा सकता है। जब ये जोड़ों में रहते हैं तो इनमें से प्रत्येक एक दूसरे पर लम्ब रूप में स्थित होता है। प्रत्येक तारककेन्द्र नलिकाकार संरचनाओं के नौ समूहों का बना होता है, जो वृत्ताकार रूप में विन्यस्त (arranged) या लगे रहते हैं। इन नौ समूहों में से प्रत्येक समूह तीन सूक्ष्मनलिकाओं (microtubules) का बना त्रिक (triplet) होता है। प्रत्येक सूक्ष्मनलिका का व्यास करीब 250A° होता है। ये त्रिक रवाहीन आधात्री में अंत: स्थापित (embedded) रहते हैं। कभी-कभी ये त्रिक समूह एक दूसरे सूक्ष्म सूत्रों (strands) द्वारा जुड़े हुए लगते हैं और बेलन (सिलिंडर) के केन्द्रीय क्रोड से अन्य बारीक तंतुक (छोटे रेशे) प्राय: फैलते हुए देखे जा सकते हैं, जो काट लेने पर "ठेले के पहिए" की तरह का विन्यास या आकृति प्रस्तुत करते हैं। लेकिन ठेले के पहिये की ये संरचनाएँ सभी तारककेन्द्रों में नहीं देखी जातीं। अनुदैर्ध्य काट (longitudinal section) में बेलन सिलिंडर वाला भाग निकटस्थ (proximal) या निकट वाले सघन सिरे सहित भारी भित्ति वाली संरचना के रूप में दिखाई पड़ता है (चित्र 11.1)।
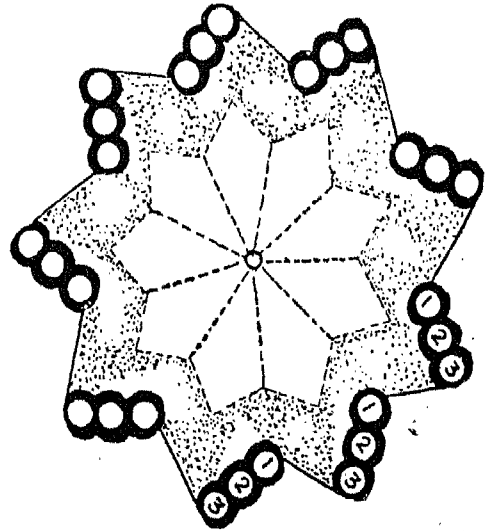
चित्र 11.1 : अनुप्रस्थ काट में तारककेन्द्र की संरचना का आरेख, जिसमें नौ उपतंतु त्रिक और, कभी-कभार उपस्थित, सूक्ष्म तंतुकों का ठेले के पहिये की आकृति की तरह बड़ा नमूना दिखलाया गया है।

अमीबा, लाल शैवालों, चीड़ तथा सभी पुष्पी पादपों (flowering plants) को छोड़कर, जिनमें कशाभी (flagellated) कोशिकाएँ नहीं पायी जातीं, तारककेन्द्र **सभी** ससीमकेन्द्रकी (यूकैरिओटिक) कोशिकाओं में पाए जाते हैं। तारककेन्द्रों के दो मुख्य कार्य होते हैं। इनसे सम्बद्ध कार्य हैं —(i) पक्ष्माभों (cilia) और कशाभों का निर्माण, तथा (ii) कोशिका के विभाजन के दौरान तर्कु तंतुओं (spindle fibres) का निर्माण। जब ये कशाभों या पक्ष्माभों को उत्पन्न करते हैं तब इन्हें **आधारी पिंड** या **आधारी काय** (basal bodies) कहते हैं। इन आधारी पिंडों (आधारी कायों) में त्रिक संगठन के वही मूलभूत नौ समूह होते हैं।

लगता है कि कोशिकाओं में तारककेन्द्र **नए सिरे से** बनते हैं। फिर भी यह अनुमान किया जाता है (सिद्ध नहीं हुआ है) कि माइटोकॉन्ड्रिया और हरितलवकों की तरह इनमें भी डी० एन० ए० होता है और ये स्वतः प्रवर्धन करने वाली तथा अर्ध स्वायत्त (semi-autonomous) संरचनाएँ हैं। लगता है कि इनमें कुछ आर० एन० ए० भी होता है।

पक्ष्माभ और कशाभ

पक्ष्माभ और कशाभ विशेष पृष्ठीय संरचनाएं हैं, जो अधिकांशतया कोशिकाओं के चलन (locomotion) में नोदकों (propellers) यानी ढकेलने वाले अंगों का कार्य करते हैं। स्थिर कोशिकाओं में ये अन्य कार्य भी करते हैं, जैसे कि कणिकाओं का निष्कासन या भोजन अथवा पानी की धाराओं को प्रवाहित करना। कशाभ, कशा या चाबुक-जैसे लम्बे उपांग (appendage) हैं जो 150μ तक लम्बे हो सकते हैं, लेकिन इनके विपरीत पक्ष्माभ छोटे यानी लम्बाई में औसत रूप से 5 से 10 माइक्रॉन होते हैं। ये पक्ष्माभ कोशिका में अनेकों की संख्या में होते हैं लेकिन कशाभ प्रायः संख्या में बहुत कम यानी एक कोशिका में एक या दो ही होते हैं। पक्ष्माभ और कशाभ दोनों व्यास में 0.5 माइक्रॉन से कम ही होते हैं।

पक्ष्माभ और कशाभ संरचनात्मक दृष्टि से समान हैं और आधारी पिंडों (आधारी कायों) से उत्पन्न होते हैं जो कि तारककेन्द्रों की तरह होते हैं। इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शिकी से ज्ञात होता है कि पक्ष्माभ, कशाभ, आधारी पिंड और तारककेन्द्र संरचना की दृष्टि से एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं क्योंकि इनमें नलिकाओं के नौ समूह एक बेलन सिलिंडर में विन्यस्त होते हैं। तारककेन्द्रों के विपरीत बेलन सिलिंडर के केन्द्र में नलिकाओं का एक अतिरिक्त जोड़ा पाया जाता है और नलिकाएं तारककेन्द्र के "त्रिकों" के बदले "द्विक" (doublet) होती हैं। इस प्रकार पक्ष्माभों और कशाभों के संगठन का नमूना 9+2 है, न कि 9+0, जैसा कि तारककेन्द्रों में होता है। तारककेन्द्र कोशिकाद्रव्य के अन्दर स्थित होते हैं और इनमें झिल्ली नहीं होती जबकि पक्ष्माभ और कशाभ एक झिल्ली द्वारा परिबद्ध होते हैं, जोकि जीवद्रव्य-कला (प्लैज्मा झिल्ली) का ही फैलाव है।
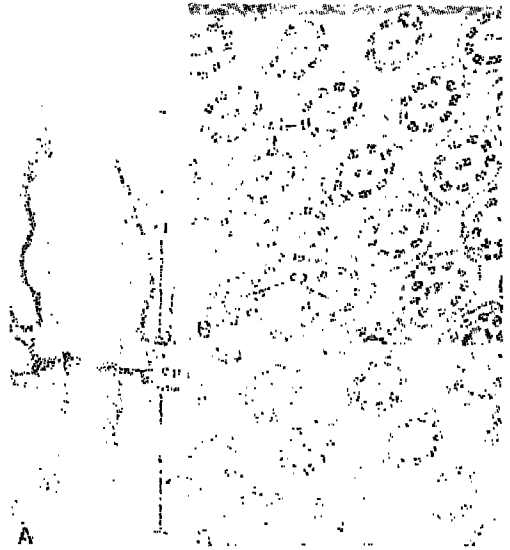
चित्र 11.2 : पक्ष्माभों के इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मलेख—
A-अनुदैर्ध्य काट, B और C-अनुप्रस्थ काट।
c-तारककेन्द्र अथवा आधारी पिंड
cp-पक्ष्माभी पट्टिका (प्लेट)
cl-एक पक्ष्माभ (सिलियम)

पक्ष्माभों और कशाभों के जीवरासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि परिधीय (peripheral) सूक्ष्मनलिकाओं में एक विशेष प्रकार का प्रोटीन **ट्यूबुलीन** होता है जो प्रकृति में पेशी-तंतु के **ऐक्टिन** की तरह होता है।

केन्द्रीय नलिकाओं और परिधीय नलिकाओं के क्षेत्रों में एक दूसरा प्रोटीन होता है जिसे **डायनीन** कहते हैं। यह ए० टी० पी०एस नामक एंजाइम के समान होता है जो ऊर्जा के मोचन (निकलने) के लिए ए० टी० पी० के फॉस्फेट-बन्धन को विपाटित कर देता है (तोड़ देता है)। यह माना जाता है कि पेशी-संकुचन की प्रक्रिया की ही तरह, कोशिकाओं के चलन के लिए पक्ष्माभों व कशाभों की गति में और मुड़ने में भी एक सर्पी या सरकवां प्रक्रिया (sliding mechanism) होती है।

पक्ष्माभों, कशाभों, आधारी पिंडों (आधारी कायों), तारककेन्द्रों, शुक्राणु-पुच्छों (sperm tails) सरीखे व्यापक रूप से भिन्न प्रकार के अंगकों में संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक समानताओं की स्थापना आधुनिक जीवविज्ञान की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

प्रश्न

1. तारककेन्द्रों और आधारी पिंडों (आधारी कायों) की संरचना समझाइए।
2. तारककेन्द्रों के प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. कशाभों और पक्ष्माभों का अन्तर स्पष्ट करिए।
4. पक्ष्माभ (सिलियम, एक वचन) और तारककेन्द्र की परासंरचना की परस्पर तुलना कीजिए।

अध्याय 12

अन्तरावस्था-केन्द्रक (Interphase Nucleus)

जो अवस्था कोशिका-विभाजन की प्रक्रिया में नहीं होती उसे ही अन्तरावस्था कहा जाता है। प्रत्येक ससीम-केन्द्रकी कोशिका की अन्तरावस्था में एक अधिक विशेष क्षेत्र, यानी केन्द्रक होता है। बिना केन्द्रक वाली कोशिकाएँ अधिक समय तक जिन्दा नहीं रह सकतीं। स्तनियों की लाल रुधिर कोशिकाएँ केवल कुछ महीनों तक ही जीवित रहती हैं क्योंकि उनमें केन्द्रक नहीं होता। **अमीबा** अथवा **ऐसीटेबुलेरिया** सरीखे एककोशिक जीव या कोशिकाएँ, जिनसे प्रयोग के तौर पर केन्द्रक निकाल लिए गए थे, लम्बे समय के बाद तभी जीवित रह पाईं जब इसी तरह के अन्य जीवों या कोशिकाओं से उन पर पुनः केन्द्रकों का प्रतिरोपण (transplantation) किया गया। इस प्रकार कोशिकाओं के जीवित रहने और लम्बी अवधि तक चलते रहने के लिए केन्द्रक बहुत आवश्यक है। और यही नहीं, बिना केन्द्रक की कोशिकाओं में नियमित रूप से न तो विभाजन हो सकता है और न विभेदन ही। इसलिए अन्तरावस्था-केन्द्रक के तीन मुख्य कार्य होते हैं; कोशिका को बनाए रखना, कोशिका की पुनरावृत्ति (replication) करना और कोशिकाद्रव्यी क्रिया-कलापों का नियंत्रण करना। इनमें से अधिकांश कार्य तो निश्चित रूप से किए ही जाते हैं क्योंकि केन्द्रक में डी० एन० ए० होता है और वही प्रोटीन-संश्लेषण के लिए आवश्यक सम्पूर्ण आर० एन० ए० उत्पन्न करता है।

मुख्य रूप से केन्द्रक का रासायनिक संघटन (Compositon) इस प्रकार से है : 9 से 12 प्रतिशत डी० एन० ए०, 5 प्रतिशत आर० एन० ए०, 3 प्रतिशत लिपिड, 15 प्रतिशत मूलभूत प्रोटीन और करीब 65 प्रतिशत अन्य प्रोटीन। केन्द्रक में बना सारा आर०एन०ए० बड़ी जल्दी कोशिका द्रव्य में पहुँच जाता है। केन्द्रकों में डी० एन० ए० और आर० एन० ए० के संश्लेषण के लिए पॉलिमेरेस सरीखे कुछ एंजाइम भी होते हैं।

केन्द्रक कोशिकाद्रव्य से केन्द्रकीय आवरण द्वारा पृथक रखा जाता है। अन्तरावस्था में केन्द्रक के अन्दर क्रोमेटिन पदार्थ का विषमांग वितरण रहता है। क्रोमेटिन पदार्थ में यूक्रोमेटिन और हैटरोक्रोमेटिन भी शामिल होते हैं। कोशिका-विभाजन के दौरान क्रोमेटिन तंतुओं के कस कर कुंडलित होने यानी मुड़ने-तुड़ने से गुणसूत्र (क्रोमोसोम) नाम की छड़-जैसी रचनाएँ बन जाती हैं। क्रोमेटिन की यूक्रोमेटिन वाली अवस्था अकुंडलित (uncoiled) और हैटरोक्रोमेटिन वाली अवस्था क्रोमेटिन की कुछ अधिक ठोस प्रकार की कुंडलित अवस्था है, और इसीलिए यदि उपयुक्त रंजकों (dyes) से रँगा जाय तो गहरा रंग आ जाता है (चित्र 12.1)।

क्रोमेटिन के रेशे को आधारभूत संरचनात्मक इकाई माना जा सकता है। ससीमकेन्द्रकी जीवों के मध्यावस्था (metaphase) वाले गुणसूत्र तथा कुछ मक्खियों की लार-ग्रंथि की कोशिकाओं में पाए जाने वाले बहुपट्टीय (polytene) गुणसूत्र सरीखे अप्ररूपी या असामान्य गुण-सूत्रों तथा जलस्थलचरों (amphibians) के अंडकों (oocytes) में पाए जाने वाले लैंपब्रुश गुणसूत्रों को

आकारकीय दृष्टि से परिवर्त (variants) या बदला रूप माना जा सकता है, जो या तो कोशिका चक्र की दशा या कोशिकाओं के विभेदन की दशा से सम्बद्ध होते हैं।

यह अच्छी तरह स्थापित बात है कि क्रोमेटिन के रेशों में आधारभूत प्रोटीनों यानी **हिस्टोनों** से सम्बद्ध सतत रैखिक डी० एन० ए० द्विवक सूत्र (continuous linear DNA duplex strand), **हिस्टोनहीन** अम्लीय या उदासीन प्रोटीन, अल्प मात्रा में आर० एन० ए० और डी० एन० ए० तथा आर० एन० ए० पॉलिमेरेस-जैसे कुछ एंजाइम होते हैं। ये सब क्रोमेटिन की संरचना और कार्य से किस तरह से सम्बद्ध होते हैं यह अभी तक स्पष्ट नहीं है लेकिन इन पहलुओं से आजकल काफी अधिक अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। पहले की धारणा के विपरीत हिस्टोनहीन प्रोटीन ही गुणसूत्र सम्बन्धी कार्यों के नियमन से सम्बद्ध होते हैं, न कि हिस्टोन-प्रोटीन।
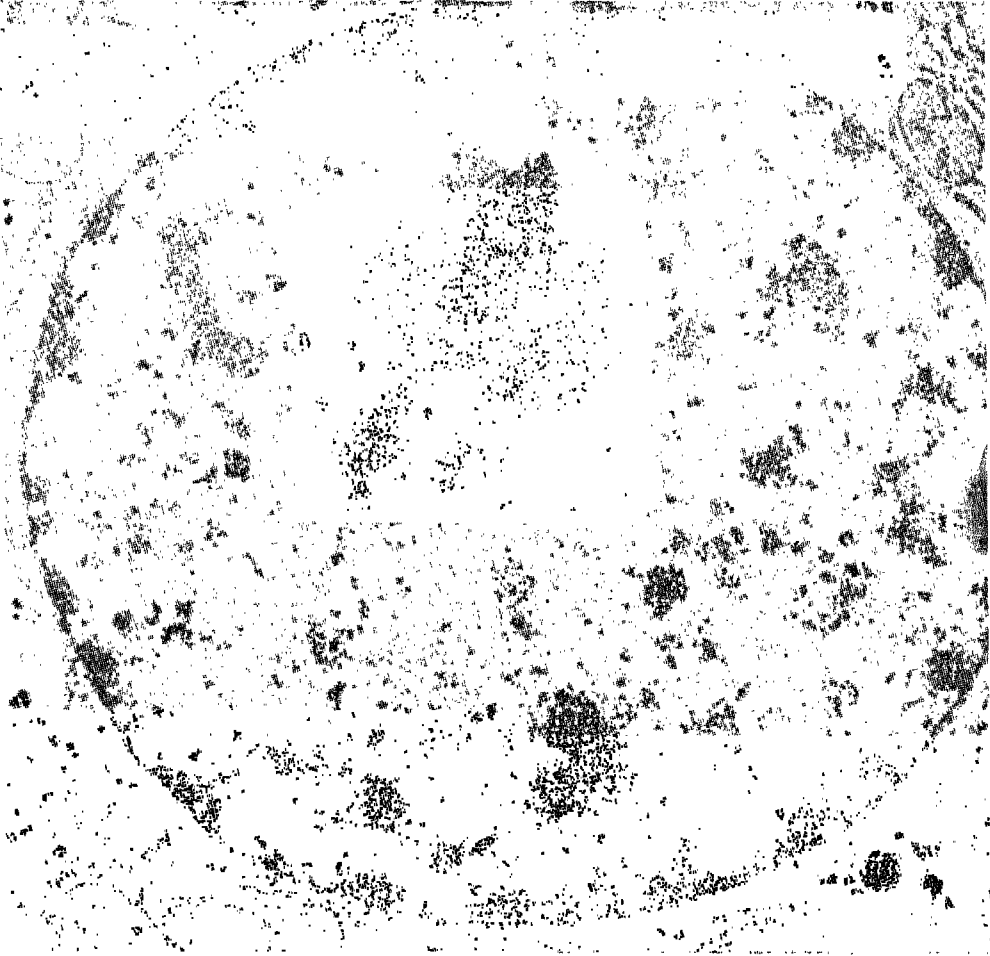
चित्र 12.1 : अन्तरावस्था-केन्द्रक को दिखलाने वाला फोटो—इसमें केन्द्रक के दो क्षेत्र और हेटरोक्रोमेटिन के खंड तथा परिक्षिप्त (dispersed) यानी बिखरा यूक्रोमेटिन देखा जा सकता है।

केन्द्रक का दूसरा महत्वपूर्ण घटक केन्द्रिक (nucleolus) है। कोशिका के प्रत्येक केन्द्रक में एक या अधिक केन्द्रिक हो सकते हैं। केन्द्रिक एक गोलाकार पिंड है जो झिल्ली से ढका नहीं होता है। इनमें आर०एन०ए०और प्रोटीन विशेष रूप से अधिक होते हैं। अब यह अच्छी तरह स्थापित कर लिया गया है कि केन्द्रिकों में डी०एन०ए० होता है, जिसका मुख्य कार्य राईबोसोमों की रचना के लिए पूर्ववर्ती आर० एन० ए० का निर्माण करना होता है। कुछ गुणसूत्रों में विशिष्ट स्थल होते हैं जिन्हें केन्द्रिकीय संगठक (nucleolar organizer) कहते हैं और जो अन्तरावस्था वृद्धि के दौरान केन्द्रिकों को उत्पन्न करते हैं। इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मलेखों में केन्द्रिकों में कम से कम दो भिन्न क्षेत्र देखे जाते हैं—दानेदार और रेशकीय (fibrillar) क्षेत्र।

केन्द्रकीय-कोशिकाद्रव्यी पारस्परिक क्रिया के लिए 'केन्द्रकीय आवरण' की संरचना बहुत महत्व की है। इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मदर्शी में केन्द्रकीय आवरण चपटी थैली की तरह दिखाई देता है जो अन्तर्द्रव्यी जालिका की झिल्ली से अधिक मिलता-जुलता है। केन्द्रकीय झिल्ली की बाहरी सतह में राइबोसोम-जैसे कण भी हो सकते हैं लेकिन भीतरी सतह चिकनी होती है। केन्द्रकीय आवरण का एक विशेष लक्षण यह है कि इसमें प्राय: भारी संख्या में छिद्र होते हैं। ये छिद्र गोलाकार अथवा बहुभुजाकार (polygonal) होते हैं जिनका व्यास करीब 500 A° से 800A° होता है। ये छिद्र झिल्लियों में मात्र छेद ही नहीं हैं, कुछ और भी हैं क्योंकि इनसे होकर पदार्थ आसानी से आ-जा नहीं सकते, लेकिन कोशिका द्रव्य और केन्द्रक के
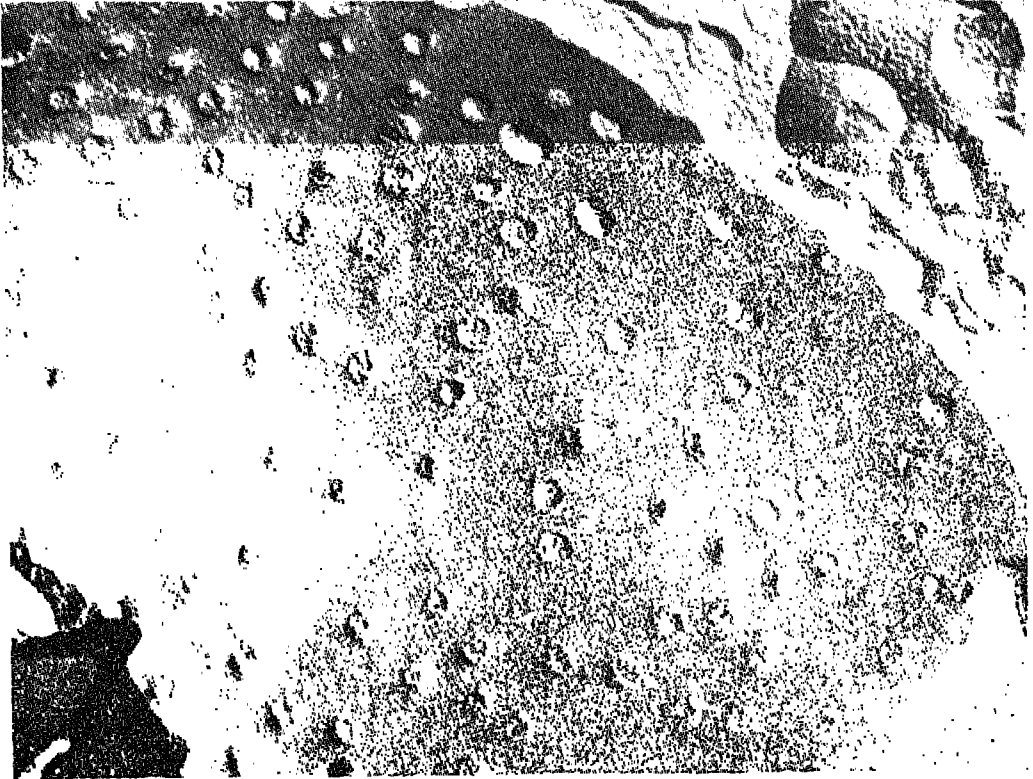
चित्र 12.2 क : केन्द्रकीय आवरण का इलेक्ट्रोन-सूक्ष्मलेख, जिसमें असंख्य छिद्र दिखलाई दे रहे हैं।
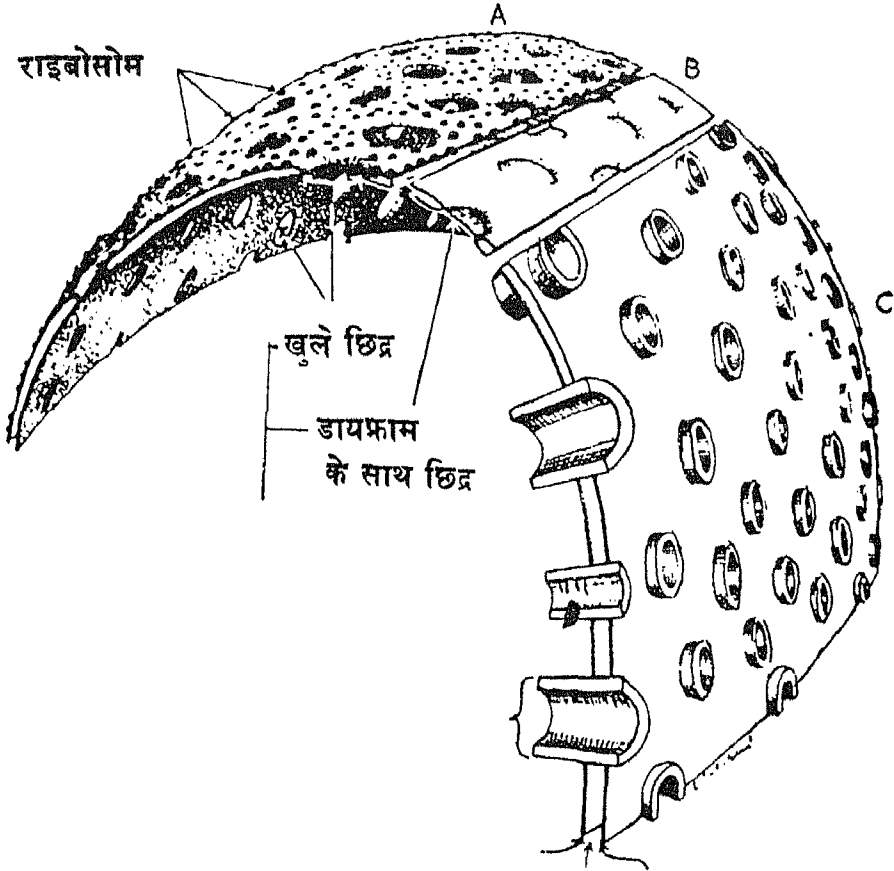
चित्र 12.2 ख : केन्द्रकीय आवरण का आरेखी चित्र। इसमें राइबोसोम-जैसे कणों सहित ऊपरी सतह और विभिन्न प्रकार के छिद्र दिखाई दे रहे हैं।

बीच वाले इन क्षेत्रों से चुने हुए प्रकार का महाआणविक विनिमय (macromolecular exchange) हो सकता है (चित्र 12.2 क ख।)

कोशिका-विभाजन के दौरान केन्द्रकीय आवरण की झिल्लियाँ टुकड़ों में बंट जाती हैं। कोशिका विभाजन के बाद संतति (daughter) केन्द्रकों में ये खंड या टुकड़े नई केन्द्रकीय झिल्लियों के निर्माण में फिर से इस्तेमाल कर लिए जाते हैं।

जीवाणु (बैक्टीरिया) सरीखी असीमकेन्द्रकी (प्रोकैरियोटिक) कोशिकाओं में केन्द्रकीय झिल्लियों वाले सुगठित केन्द्रक नहीं पाए जाते। असीमकेन्द्रकी तंत्र में अनुलेखन (transcription) और स्थानांतरण (translation) एक सतत प्रक्रिया के रूप में चलता रहता है। ससीमकेन्द्रकी कोशिकाओं के विकास में किसी तरह अनुलेखन और स्थानांतरण की प्रक्रियाएँ दो पृथक् कक्षों में पृथक् कर दी गईं —अनुलेखन के कार्य के लिए मुख्यरूप से केन्द्रक और स्थानांतरण के कार्य के लिए कोशिकाद्रव्य। यद्यपि केन्द्रक ही एकमात्र नियंत्रक है, जो कोशिकाद्रव्य के अधिकांश क्रियाकलापों का संचालन करता है, लेकिन अकेले यह भी जिन्दा नहीं रह सकता। कोशिका की अखंडता और जिन्दगी को बनाए रखने के लिए कोशिकाद्रव्य की पारस्परिक क्रिया बहुत आवश्यक है।

प्रश्न

1. केन्द्रक-कोशिकाद्रव्यी पारस्परिक क्रिया में केन्द्रक की भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. केन्द्रकीय आवरण की परासंरचना का विवेचन करिए।
3. प्ररूपी या सामान्य ससीमकेन्द्रकी (यूकैरिओटिक) गुणसूत्र के संरचनात्मक संगठन का वर्णन कीजिए।
4. केन्द्रिक (न्यूक्लिओलस) के कार्यों का विवेचन कीजिए।
5. "कोशिका-चक्र में तथाकथित सुप्त अवस्था यानी अन्तरावस्था सबसे अधिक सक्रिय अवस्था है," इस कथन को समझाइए।

अध्याय 13

एंजाइम और नियमन (Regulation)

आप लोग नानबाई की खमीर (yeast) से परिचित होंगे। यह एकल या अकेली कोशिकाओं का पुंज (समूह) होता है। खमीर (यीस्ट) शर्करा व ग्लूकोस वाले माध्यम में खूब पनपती है लेकिन यीस्ट की कोशिका सब का सब ग्लूकोस ही नहीं है। इसकी रचना कई किस्म के अणुओं से होती है, जिनमें अधिकांश ग्लुकोस से कहीं अधिक जटिल है, जैसे कि वसा और प्रोटीन। अतः यह स्पष्ट है कि यीस्ट की कोशिका ग्लूकोस को कुछ दूसरे अणुओं में बदलने का भेद जानती हैं। सचमुच इस रहस्य का पर्दाफाश करने में जीवरसायनविज्ञान की भारी विजय रही है जिसकी सहायता से कोशिका का निर्माण करने और उसकी अखंडता बनाए रखने के लिए ग्लूकोस को रासायनिक प्रकार से विभिन्न आवश्यक अणुओं में बदला जाता है। लेकिन ये सारे रासायनिक परिवर्तन एक ही चरण में नहीं हो जाते हैं, और सचाई यह है कि यह सम्पूर्ण प्रक्रिया एक मिली-जुली शृंखला है जिसे निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है :

$$A \xrightarrow{\text{एंजाइम 1}} B \xrightarrow{\text{एंजाइम 2}} C \xrightarrow{\text{एंजाइम 3}} D$$
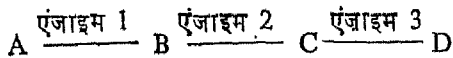
चरणवार होने वाली ये अभिक्रियाएँ उन जैविक उत्प्रेरकों (Catalysts) के नियमन या नियंत्रण से होती हैं जिन्हें एंजाइम कहते हैं। एंजाइम एक प्रोटीन है जिस की उत्पत्ति जैविक प्रकार से होती है और जो जीव-रासायनिक अभिक्रिया की दक्षता को बढ़ा देता है। अणु से संश्लेषण या अवकर्षण (degradation) का प्रत्येक चरण विशिष्ट एंजाइम द्वारा उत्प्रेरित होता है। बिना एंजाइमों के जीवधारियों के कार्य सचमुच चल ही नहीं सकते क्योंकि जीवन की सभी प्रक्रियाओं में एंजाइमों का सहयोग बहुत जरूरी है।

एंजाइम के बारे में यह बात है कि, सम्पूर्ण कार्य एंजाइम की किस्म और मात्रा पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि उसकी क्रियाशीलता पर भी निर्भर करता है। फिर यह क्रियाशीलता कई कारकों (factors) से निर्धारित होती है जिनमें अवस्तर (substrate), उत्पाद, हॉरमोन और कुछ अन्य अणु भी शामिल हैं। साथ ही एंजाइमों की क्रियाशिलता एक प्रकार की कोशिका से दूसरी प्रकार की कोशिका में बदलती रह सकती है। इस अध्याय में हम इनमें से कुछ का अध्ययन करेंगे।

एंजाइमों का रासायनिक स्वभाव

अब तक शोधित (purified) और क्रिस्टलित (Crystallized) सभी एंजाइम प्रोटीनमय स्वभाव के ही मिले हैं। कुछ एंजाइमों में तो प्रोस्थेटिक धात्विक या अधात्विक घटक होता है लेकिन एंजाइम का अधिकांश प्रोटीन से ही बनता है। प्रोटीन अमीनो अम्लों के बने होते हैं और ये अमीनो अम्ल 20 प्रकार के होते हैं। अमीनो अम्ल के प्रत्येक अणु में एक कार्बोक्सिल (COOH) समूह और एक अमीनो ($-NH_2$) समूह होता है। एक अमीनो अम्ल का कार्बोक्सिल सिरा दूसरे अमीनो अम्ल के सिरे से मिलकर पेप्टाइड बंधन बनाता है। इस प्रकार दूसरा, तीसरा, चौथा और कई अमीनो अम्ल संयोग कर

के डाइपेप्टाइट, ट्राइपेप्टाइड और पॉलिपेप्टाइड बनाते हैं। एक प्रोटीन अणु एक या अनेक पेप्टाइड श्रृंखलाओं का बना होता है। प्रोटीन के एक अणु में कम से कम 200 से 300 पेप्टाइड बन्धन होते हैं। अधिकांश एंजाइम बड़े अणु होते हैं जिनमें सैकड़ों अमीनो अम्ल और एक से अधिक पेप्टाइड श्रृंखलाएँ होतीं हैं।

एक विशेष अनुक्रम (sequence) में अमीनो अम्लों को जोड़े रहने वाले पेप्टाइड बंधन ही प्रोटीनों की प्राथमिक संरचना का गठन करते हैं। कुछ प्रोटीनों की पेप्टाइड श्रृंखलाओं के भाग व्यावृत होकर या लिपट कर एक कुंडलिनी (helix) बनाते हैं। *यह कुंडलिनी ऐसी* संरचना है, जिसमें संभवतः एक अमीनो अम्ल नीचे स्थित दूसरे अमीनो अम्ल के साथ घुमाव में हाइड्रोजन-बंधन द्वारा स्थायीकृत (stabilized) होता है। इस प्रकार के कुंडलिनी-विन्यास से ही इन प्रोटीनों की द्वितीयक संरचना का गठन होता है। अलग-अलग पेप्टाइड श्रृंखलाएँ गोलाकृतियों में आगे और अधिक कुंडलित हो जाती हैं जिनके अमीनो और कार्बोक्सिल समूहों में हाइड्रोजन बन्धन होते हैं तथा अन्य प्रकार के विभिन्न बंधन एक श्रृंखला को दूसरी श्रृंखला से आर-पार जोड़ते हुए तृतीयक (tertiary) संरचना का स्थायीकरण करते हैं। यह माना जाता है कि प्रोटीन की आकृति लगभग पूरी तरह से पाए जाने वाले अमीनो अम्लों की किस्म और विन्यास से ही निर्धारित होती है क्योंकि जहाँ आपसी बंधन हो सकते हैं उन बिन्दुओं पर उचित सम्पर्क होने के परिणामस्वरूप कुंडलन और वलन (चुन्नटों का पड़ना) होना चाहिए। जीवधारियों में प्रोटीन एंजाइमों और संरचनात्मक तत्वों यानी दोनों के रूप में कार्य करते हैं। प्रोटीनों की विशिष्ट (specific) अभिक्रियाओं की संचालन क्षमता उनकी प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक संरचना के कारण होती है।

उचित रूप से कार्य करने के लिए माध्यम में कुछ एंजाइमों को दूसरे कार्बनिक पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है। कुछ उदाहरणों में एंजाइम वास्तविक रूप से दो आणविक अंशों के बने होते हैं। इनमें से एक अंश प्रोटीन होता है जिसे एपो-एंजाइम कहते हैं। दूसरा आणविक अंश प्रोटीनहीन छोटा अणु होता है। इस छोटे अणु को सहएंजाइम (Coenzyme) कहते हैं। जैसा कि इसके नाम से ही संकेत मिलता है, यह मुख्य एपोएंजाइम अणु के साथ अभिक्रिया को चलाने में सहयोगी के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार के एपोएंजाइम और सहएंजाइम वाले तंत्र में दोनों आणविक अंश एक दूसरे से रासायनिक प्रकार से बंधे होते हैं। अन्य उदाहरणों में, सहएंजाइम एंजाइम के साथ केवल सूक्ष्म रूप से जुड़ा होता है। दोनों दशाओं में किसी भी उत्प्रेरक क्रियाकलाप के लिए सहएंजाइम की उपस्थिति आवश्यक है। उत्प्रेरित अभिक्रिया के किसी उत्पाद का निराकरण करके भी एंजाइम अपना कार्य कर सकते हैं। इससे रासायनिक तंत्र की *क्रियाशीलता में सन्तुलन स्थापित हो जाता है।* इस तरह जब तक सहएंजाइम अभिक्रिया के उत्पादों का निराकरण करता जाता है तब तक अभिक्रिया चलती रहती है।

छोटे एंजाइमों के रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इनमें अणु के अंश के रूप में प्रायः एक विटामिन होता है। इससे इस बात का संकेत मिला कि कुछ विटामिन सहएंजाइमों का कार्य करते हैं। इससे यह भी समझा जा सकता है कि जीव में कुछ विटामिनों की अनुपस्थिति से क्यों बड़े-बड़े शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। विटामिन पर आधारित सहएंजाइम के साथ क्रिया करने वाला एंजाइम अपने आप अकेले कार्य नहीं कर सकता। इसकी वजह से महत्वपूर्ण शरीरक्रियात्मक अभिक्रियाओं की सारी श्रृंखला में रोध उत्पन्न हो सकता है। इससे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता की पूर्ति के लिए क्यों विटामिनों की अल्प मात्रा ही काफी होती है। एंजाइमों की तरह सहएंजाइम के अणुओं का भी समय-समय पर, आपेक्षिक रूप से मन्द दर पर, प्रतिस्थापन (replacement) होते रहना चाहिए।

क्रिया-प्रणाली

एंजाइम जिन अभिक्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं उनके उत्पादों को उत्पन्न करने के पहले ही वे अवस्तरों से मिल जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो कहेंगे कि अवस्तर के अपघटन (decomposition) के पहले ही एंजाइम और अवस्तर मिलकर एक मध्यवर्ती सम्मिश्र (intermediate complex) बना लेते हैं (चित्र 13.11)

यह निम्नलिखित प्रकार से दो चरणों में चलने वाली अभिक्रिया है :

1. एंजाइम+अवस्तर=एंजाइम—अवस्तर सम्मिश्र
2. एंजाइम—अवस्तर सम्मिश्र=एंजाइम+उत्पाद
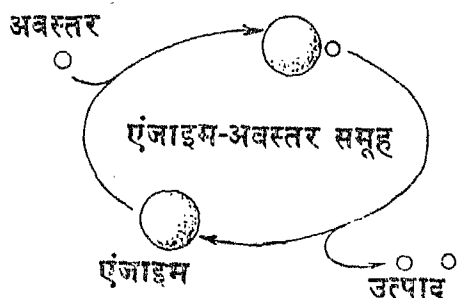
चित्र 13.1 : एंजाइम का निर्माण—एंजाइम की अभिक्रिया के दौरान अवस्तर-सम्मिश्र ।

एंजाइम किस प्रकार कार्य करते हैं ? विशिष्टता (Specificity) की परिघटना (Phenomenon) इस तथ्य की पुष्टि करती है कि क्रिया करने के लिए एंजाइम अवस्तर के अणु से अवश्य ही संयोग (Combine) करता है यानी मिलता है। अनुमान किया जाता है कि यह संयोग ताले और चाबी की तरह होता है। यदि सही चाबी सही ताले में लगती है तो ताला खोला जा सकता है, अन्यथा नहीं (चित्र 13.2 क) । इस प्रसंग में विशेष महत्व इस बात का है कि अणुओं में विशेष प्रकार की ज्यामितीय (geometric) आकृतियाँ होती हैं। प्रोटीन एंजाइमों के रूप में प्राथमिक रूप से कार्य करने में इसीलिए सक्षम हैं कि इनकी आकृति ही इस प्रकार की होती है कि उनमें अन्य अणु फिट बैठ जाते हैं। (चित्र 13.2 ख) इस फिट होने वाली प्रक्रिया के दौरान जिन अणुओं (या परमाणुओं) पर अभिक्रिया होती है उनकी ऊर्जा की दशाओं में परिवर्तन होता है। जिन अणुओं पर एंजाइमों की अभिक्रिया होती है उन्हें एंजाइमों का अवस्तर कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि उपयुक्त ज्यामितीय आकृति वाला अवस्तर-अणु ही एंजाइम के सक्रिय स्थल में फिट हो सकता है। फिर भी कुछ निश्चित दशाओं में अवस्तर के अणुओं के बिलकुल समान अन्य अणु भी एंजाइम के सक्रिय स्थल से संयोग कर सकते हैं। ऐसे में, ऐसे अणु अवस्तर से प्रतियोगिता कर सकते हैं, जिससे अभिक्रिया मंद या बंद हो सकती है। ऐसे पदार्थों को संदमक (inhibitors) कहते हैं क्योंकि ये किसी पदार्थ के उत्पादन को रोकते हैं। इस बात के काफी अधिक प्रायोगिक प्रमाण हैं कि वे एंजाइम ताला और चाबी की अनुरूपता (analogy) की रीति से ही कार्य करते हैं (चित्र 13.2 ग) ।

नाम-पद्धति (nomenclature) और वर्गीकरण

एंजाइमों का वर्गीकरण करने की कई पद्धतियाँ ज्ञात हैं लेकिन सबसे नई और सर्वमान्य वर्गीकरण पद्धति उनकी रासायनिक क्रियाशीलता पर आधारित है। कुछेक को छोड़कर, एंजाइमों के नाम पृथक् रूप से या उनके समूह को ध्यान में रखकर उस अवस्तर के नाम के बाद **एस** प्रत्यय (suffix) लगाकर रख लिए जाते हैं जिस पर कि वे क्रिया करते हैं। इस प्रकार जो एंजाइम बड़े अणुओं का जल-अपघटन छोटे अणुओं में करते हैं उन्हें **हाइड्रोलेस** कहते हैं। **प्रोटीनेस** नामक एंजाइम प्रोटीनों को अमीनो अम्लों में, **एमिलेस** मंड को शर्करा में, **सूक्रेस** को ग्लूकोस
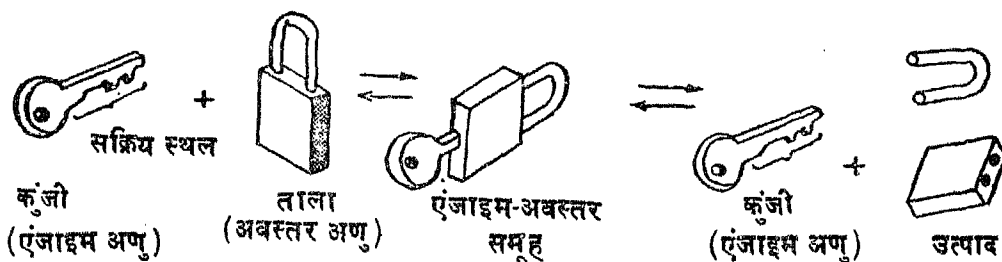
चित्र 13.2 क : एंजाइम और अवस्तर की पारस्परिक क्रियाओं को समझने के लिए ताला और चाबी वाला प्रतिरूप (मॉडल) ।
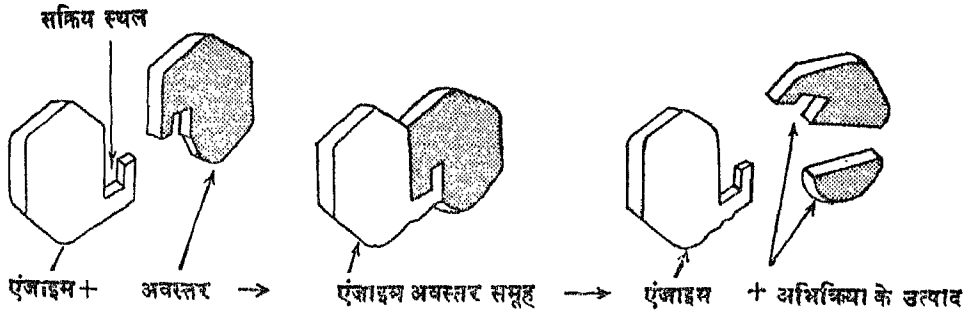
चित्र 13.2 ख : एंजाइम और अवस्तर की पारस्परिक क्रियाओं का व्यवस्थात्मक निरूपण (schematic representation)। प्रत्येक एंजाइम की एक विशिष्ट आणविक आकृति होती है जिससे वह अवस्तर की संगत (Corresponding) आकृति में फिट बैठ जाता है। इस तरह प्रत्येक एंजाइम अपनी विशिष्टता अर्जित कर लेता है।
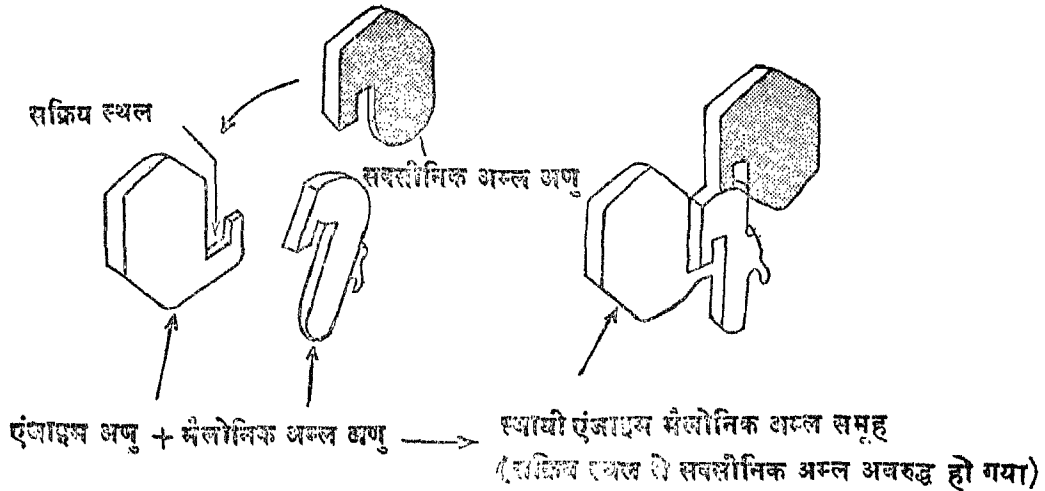
चित्र 13.2 ग : प्रतियोगी संदमकों का आरेखी निरूपण।

और फ्रक्टोस में, लाइपेस वसाओं (fats) को ग्लिसरॉल व वसा-अम्लों में, और न्यूक्लिएस न्यूक्लीक अम्लों को न्युक्लिओटाइडों में तोड़ देता है।

शब्द का 'एस' (ase) में अंत होना इस बात का द्योतक है कि वह यौगिक एंजाइम है। ट्रिप्सिन-जैसे अन्य एंजाइमों के अंत में 'इन' (in) होता है। यह इस बात का द्योतक है कि एंजाइमों की तरह ये भी प्रोटीन हैं। जिन एंजाइमों के अन्त में 'इन' आता है उनकी खोज और नामकरण अन्त में 'एस' वाली अन्तर्राष्ट्रीय नीति के पहले हो चुका था। फिर भी कुछ एंजाइमों का नामकरण फिर से किया गया है, जैसे लार का एंजाइम टायलिन (ptyalin) अब लार-एमिलेस कहलाता है। एंजाइमों का नामकरण उन यौगिकों के आधार पर भी किया गया है जिन पर कि वे क्रिया करते हैं। पेप्टाइडों पर पेप्टिडेस, परऑक्साइडों पर परऑक्सीडेस और लिपिडों पर लाइपेस नामक एंजाइम आक्रमण यानी क्रिया करते हैं। इसी तरह

एस्टर बंधनों पर एस्टरेस आक्रमण करते हैं और हाइड्रोजन के परमाणु डीहाइड्रोजनेस एंजाइमों द्वारा पृथक कर दिए जाते हैं।

एंजाइम क्रियाशीलता पर प्रभाव डालने वाले कारक

तापमान (Temperatures)

प्रोटीन होने के कारण ऊँचे तापमानों पर एंजाइमों के गुणों का पूरी तरह से नाश हो सकता है। दूसरे शब्दों में, एक निश्चित तापमान पर एंजाइम अपनी उत्प्रेरण क्रियाशीलता को इस तरह संचालित करता है कि अभिक्रिया उत्प्रेरित होकर बहुत तेजी से चलने लगती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं लिया जाना चाहिए कि यदि कोई रासायनिक अभिक्रिया तेजी से चलती है तो वह अधिक दक्ष अभिक्रिया है। इस प्रसंग में दक्षता का मतलब यह है कि जिस पदार्थ पर एंजाइम क्रिया करता है उसके अणुओं से वह कितनी बार टक्कर लेता है यानी संघर्ष करता है।

एंजाइम की क्रियाशीलता पर तापमान के जरा-से परिवर्तन से जो प्रभाव पड़ता है वह जैविक दृष्टि से बड़े महत्व का है। शरीर के तापमान में जरा-से परिवर्तन से जीव की उपापचय सम्बन्धी रासायनिक क्रिया तेज हो सकती है और मन्द भी। स्तनी (mammal) सरीखे कुछ प्राणी बाहरी वातावरण के तापमान में अधिक घट-बढ़ होने के बावजूद अपने शरीर का तापमान लगभग एक-सा बनाए रखते हैं। इसलिए उनकी उपापचयी दर बाहरी तापमान से प्रभावित नहीं होती है। लेकिन मछली, जलस्थलचर तथा सरीसृप (reptiles) सरीखे अन्य प्राणियों के शरीर का तापमान बाहर के तापमान से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है यानी उसके अनुसार घटता-बढ़ता है। ऐसे प्राणियों को साल के कुछ समय अक्रिय रहना आवश्यक है, जबकि तापमान एक निश्चित स्तर से नीचे गिर जाता है। यही नहीं यदि तापमान इस सीमा तक बढ़ जाता है कि वह एंजाइम को निष्क्रिय कर देने वाला है तो इससे वे मर भी सकते हैं।

हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (pH)

pH में परिवर्तन होने से एंजाइम-अणु के गुणों का नाश हो सकता है, जिससे उसकी क्रियाशीलता में गिरावट आ सकती है। लेकिन एंजाइमों द्वारा उत्प्रेरित अभिक्रियाओं पर pH का पड़ने वाला यही बड़ा प्रभाव नहीं है। सामान्य रूप से एंजाइम के लिए एक इष्टतम (Optimum) या अनुकूल pH होता है, और यदि यह pH मान इधर या उधर जरा भी अम्लीय या क्षारीय हो जाता है तो उससे क्रियाशीलता पर दोषपूर्ण प्रभाव पड़ जाता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कि भिन्न भिन्न एंजाइमों के लिए pH के मान अलग-अलग प्रकार से इष्टतम होते हैं (चित्र 13.3)।
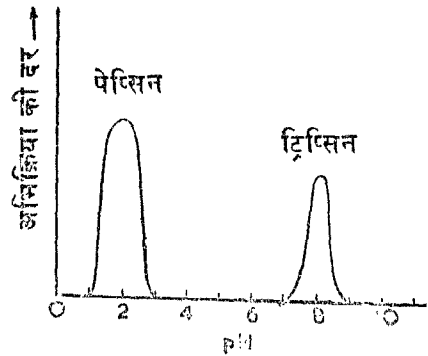
चित्र 13.3 : एंजाइमों की pH पर निर्भरता। आमाशय (stomach) का पेप्सिन नामक प्रोटीनलयी (proteolytic) एंजाइम अम्लीय वातावरण (माध्यम) में सबसे अच्छी तरह से कार्य करता है, जबकि ट्रिप्सिन नामक दूसरा प्रोटीनलयी एंजाइम छोटी आंत के क्षारकीय वातावरण (माध्यम) में उत्तम प्रकार से कार्य करता है।

एंजाइम-सांद्रता (Concentration)

एंजाइम सांद्रता में वृद्धि होने से अभिक्रिया की दर में भी वृद्धि हो जाती है। यदि अवस्तर काफी मात्रा में है तो एंजाइम सांद्रता को दुगुना करने पर अभिक्रिया की दर में भी सामान्यतया दुगुनी वृद्धि हो जाती है।

उत्पाद-सांद्रता

एंजाइम-अवस्तर सम्मिश्र की पारस्परिक क्रिया से नए पदार्थ उत्पन्न होते हैं, लेकिन उत्पाद सांद्रता की वृद्धि से अभिक्रिया की दर गिर जाती है क्योंकि एंजाइम अणुओं के दूसरे समूह से जुड़ने के लिए मुक्त हो जाता है।

अवस्तर-सांद्रता

अवस्तर-सांद्रता में वृद्धि होने से एंजाइम के सक्रिय स्थलों के एकदम इर्द-गिर्द अणुओं की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप अवस्तर-अणु के सक्रिय स्थल के सम्पर्क में आने के अवसर भी बढ़ जाते हैं।

समएंजाइम (Isoenzymes)

पहले यह माना जाता था कि एक विशेष अवस्तर पर केवल एक ही एंजाइम क्रिया कर सकता है। लेकिन अब यह माना जाता है कि आणविक संरचना की दृष्टि से जरा भिन्न एंजाइम भी एक-सी क्रियाशीलता दिखला सकते हैं। ऐसे एंजाइमों को **समएंजाइम** कहते हैं। यह अच्छी तरह स्थापित कर लिया गया है कि ये एंजाइम विकास (evolution) के दौरान आनुवंशिक (genetic) परिवर्तनों द्वारा उत्पन्न होते हैं।

समएंजाइमों के रूप में रहने वाले करीब 100 से अधिक एंजाइम हैं। समएंजाइमों का सबसे अधिक परिचित उदाहरण **लैक्टिक डीहाइड्रोजनेस** (एल० डी० एच०—LDH) है, जो पाइरुवेट की अभिक्रिया को उत्प्रेरित कर लैक्टेट में बदल देता है। पांच या इससे अधिक एल० डी० एच० समएंजाइम हैं जो अपने भौतिक गुणों और अमीनो अम्ल अनुक्रम की दृष्टि से एक दूसरे से कुछ भिन्न हैं। इन समएंजाइमों के आपेक्षिक अनुपात प्रत्येक ऊतक और विभेदन की प्रत्येक अवस्था की दृष्टि से विशिष्ट प्रकार के हैं।

नियमन

जीवधारियों के तंत्र में उत्पादन मुश्किल से ही उसके उपभोग से अधिक हो पाता है। एंजाइमों द्वारा समन्वित की जाने वाली सारी अभिक्रियाएं नियंत्रण में रखी जाती हैं, इसलिए जितना जरूरी है उससे कम या ज्यादा कुछ भी उत्पन्न नहीं किया जाता। सजीव (जीवधारियों के) तंत्रों का सबसे विशेष लक्षण यह है कि अपनी अधिक जटिलता के बावजूद वे समन्वित (coordinated) प्रकार से कार्य करते हैं। कोशिका में इतनी ढेर सारी अभिक्रियाओं के एक साथ चलने और उनके उत्कृष्ट नियमन पर हमें सचमुच आश्चर्य होता है। यह परिशुद्धता कैसे उपलब्ध की जाती है? नियंत्रणकारी प्रक्रियाएँ क्या है? ये सब आश्चर्य में डालने वाली बातें हैं। कोशिका में होने वाली इस प्रकार की नियंत्रणकारी प्रक्रियाएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की हैं। एक एंजाइम स्तर पर होती है जब एंजाइम, अवस्तर और स्वयं उत्पाद इस नियंत्रणकारी प्रक्रिया से सम्बद्ध होते हैं। दूसरे प्रकार की प्रक्रिया आनुवंशिक प्रक्रिया है, जिसमें एंजाइम के उत्पादन का नियमन जीन करते हैं।

(क) एंजाइम स्तर पर

यह सर्व विदित है कि जब कोशिका में कुछ उपापचयज (metabolites) जमा होते हैं तो वे स्वयं अपने उत्पादन का संदमन करने लगते हैं। इस प्रकार की नियंत्रणकारी प्रक्रिया को **ऋणात्मक पुनर्भरण** (negative feed back) कहते हैं। यह नियंत्रणकारी प्रक्रिया रेफ्रीजरेटर के तापस्थायी (thermostat) की प्रक्रिया के अनुरूप है, जो रेफ्रीजरेटर के अन्दर वाले तापमान की घट-बढ़ की अनुक्रिया (response) के फलस्वरूप स्विच को **बन्द चालू** कर तापमान का नियमन करता है।

सजीव (जीवित) कोशिकाओं में जीव रासायनिक अभिक्रियाओं के सब प्रकार से पूरा होने के बीच में कई अभिक्रियाएँ होती हैं। एक विशिष्ट यौगिक के संश्लेषण या अवकर्षण से सम्बद्ध शृंखला में कम से कम दो या तीन और अधिक से अधिक तीस या चालीस अभिक्रियाएँ हो सकती हैं; और चूँकि ये सारे चरण (steps) एंजाइमों द्वारा नियंत्रित होते हैं इसलिए यदि इनमें से एक भी एंजाइम प्रभावित, संदमित (inhibited) या नष्ट होता है तो इन अभिक्रियाओं की सम्पूर्ण शृंखला पर असर पड़ जाता है। इससे बहुत दूर तक पहुँचने वाले असर भी पड़ सकते हैं जिससे कोशिकाओं, ऊतकों और यहाँ तक कि जीवों की मृत्यु तक भी हो सकती है।

इस प्रकार के नियंत्रण के उत्कृष्ट उदाहरण का निदर्शन **एशरिकिआ कोली** (Escherichia coli) में आइसोल्यूसीन नामक एक अमीनो अम्ल के संश्लेषण में किया गया है। जब कोशिका में आइसोल्यूसीन का देहली (threshold) स्तर अधिक हो जाता है तो यह

जीवाणु आगे इसका संश्लेषण करना बन्द कर देता है। यह भी पाया गया कि आइसोल्यूसीन की अधिकता थ्रिऑनीन डीऐमिनेस नामक एंजाइम की क्रियाशीलता को संदमित कर देती है, जो कि अभिक्रिया की शृंखला के पहले चरण में उत्प्रेरण कर आइसोल्यूसीन का उत्पादन करता है। इस प्रकार के उपापचयी नियंत्रण को, जिसमें एक अनुक्रम का पहला एंजाइम अंतिम उत्पाद (end product) से संदमित हो जाता है, 'अंतिम उत्पाद संदमन' या शिल्प-विज्ञान की भाषा में **'पुनर्भरण संदमन'** (feed back inhibition) कहते हैं।

L थ्रिऑनीन $\xrightarrow[\text{डीऐमिनेस}]{\text{थ्रिऑनीन}}$ 1—2—3—4—आइसोल्यूसीन
↑ —— संदमित करता है—— |
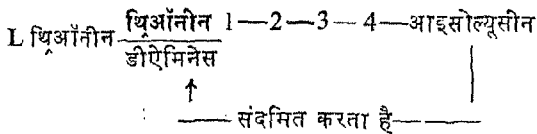
इस प्रकार का नियन्त्रण अधिकांश इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों (devices) में प्रयुक्त होने वाले स्वचालित पुनर्भरण परि-पथों (circuits) के समान होता है।

(ख) आनुवंशिक स्तर पर

डी० एन० ए० संचालक अणु होता है जो प्रोटीनों के संश्लेषण का नियंत्रण करता है, जैसा कि नीचे आरेख (diagram) में दिखाया गया है :
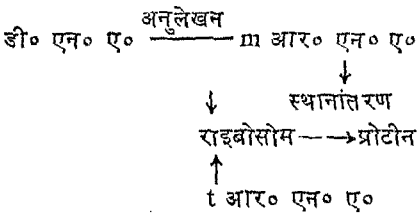
डी० एन० ए० $\xrightarrow{\text{अनुलेखन}}$ m आर० एन० ए०
↓ स्थानांतरण
↓
राइबोसोम ——→ प्रोटीन
↑
t आर० एन० ए०
(अमीनो अम्लों को ले जाने वाला)

प्रोटीन जीन क्रिया के अन्तिम उत्पाद हैं, इस बात को जानकर हम पीछे की ओर चलकर जीन का ठीक-ठीक पता लगा सकते हैं। एक औसत आकार के प्रोटीन के अणु में करीब 500 अमीनो अम्ल होते हैं। इनमें से प्रत्येक के चयन (चुनाव) के लिए तीन क्षारकों (bases) के त्रिक की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार इस प्रोटीन के लिए जीन डी० एन० ए० अणु का एक अंश है जिसमें 1500 क्षारक जोड़ें होते हैं।

कोशिका-विभाजन के दौरान सम्पूर्ण आनुवंशिक पदार्थ की पुनरावृत्ति की सुपुष्टि करने वाले प्रमाण से स्पष्ट है कि जीवधारी की प्रत्येक कोशिका में जीनों का एक ही कॉम्प्लीमेन्ट होता है। इसलिए प्रश्न उठता है कि "उन कोशिकाओं को भिन्न कौन बनाता है?"

इससे स्पष्ट है कि किसी चयनकारी प्रक्रिया द्वारा ही जीनों का नियंत्रण होना चाहिए, जिसमें कुछ तो कार्य कर सकें और बाकी चुप रहें। किसी पौधे अथवा प्राणी की वृद्धि मूलभूत रूप से जीनों को व्यवस्थित अनुक्रम में चालू करने और बन्द करने वाली उसकी प्रक्रिया द्वारा ही निर्धारित होती है।

प्रोटीन-संश्लेषण किस प्रकार से नियंत्रित होता है इसका प्रतिपादन जैकब और मोनो (Monod) नामक दो फ्रांसीसी वैज्ञानिकों द्वारा किया गया था और इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार दिया गया। उन्होंने प्रतिपादित किया कि **संरचनात्मक जीनों** (जैसे A, B, C आदि) का एक समूह एक **प्रचालक जीन** (operator gene) द्वारा नियंत्रित होता है। जब प्रचालक को बन्द कर दिया जाता है तो न m-आर०एन०ए० बनता है और न प्रोटीन का संश्लेषण ही होता है। जब प्रचालक को चालू किया जाता है तो डी०एन०ए० में आर०एन०ए० का अनुलेखन होता है और प्रोटीन का संश्लेषण शुरू हो जाता है। प्रचालक का बन्द होना और चालू होना एक **नियामक** (regulator) जीन, **R**, द्वारा नियंत्रित होता है। नियामक से प्रचालक को जाने वाला संकेत **दमनकर** (repressor) नामक पदार्थ के माध्यम से जाता है, जो कि नियामक द्वारा उत्पन्न होता है। दमनकर जब प्रचालक के साथ संयोग करता है तो अनुलेखन को बन्द कर देता है जिससे सारा तंत्र स्विच-बन्द वाली स्थिति में रहता है। लेकिन जब कोई निश्चित उपापचयज यानी **विप्रेरक** (*inducer*) उपस्थित रहता है तो यह दमनकर के साथ संयोग करता है और उसे प्रचालक को निष्क्रिय बनाने के लिए रोकता है। इस दशा में आनुवंशिक तंत्र 'स्विच-चालू' वाली स्थिति में आ जाता है और प्रोटीन का संश्लेषण होने लगता है (चित्र 13.4)।

जीन-नियंत्रण तंत्र बहुकोशिक जीवों में भी क्रियाकारी हो सकता है। लगता है ससीमकेन्द्रकी जीवों में गुणसूत्रों के प्रोटीन जीन क्रिया के नियामक होते हैं। लेकिन यह भी सम्भव है कि अन्य प्रकार के नियामक पदार्थ भी होते हों। गुणसूत्री प्रोटीन अपनी बारी पर कोशिका के बाहर
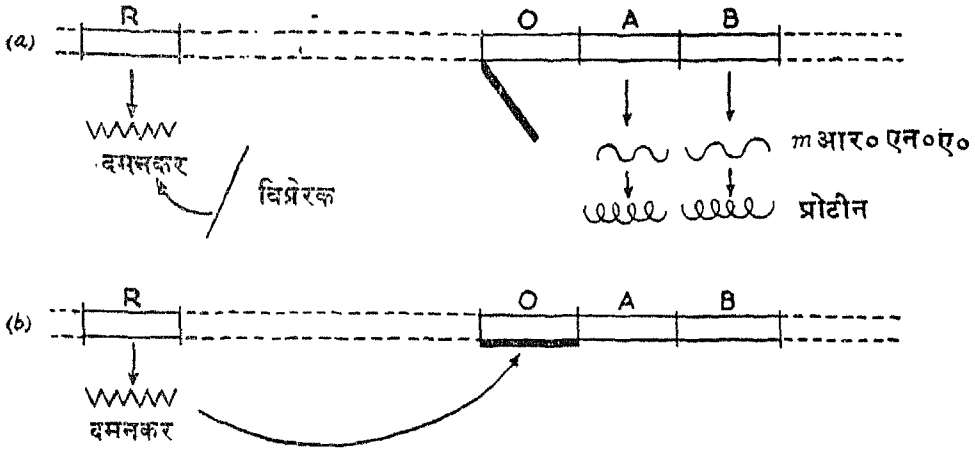
चित्र 13.4 : जीन-नियमन और एंजाइम/प्रोटीन अणुओं के उत्पादन की ऑपेरॉन संकल्पना (Concept)।

से आने वाले छोटे अणुओं, जैसे ऑक्सिन और हॉरमोनों, के नियंत्रण के अधीन हो सकते हैं।

इस प्रकार हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि जीवधारियों के तंत्रों में उपापचयी प्रक्रियाएँ बहुत जटिल होती हैं। लेकिन फिर भी सजीव अवस्था को बनाए रखने के लिए प्रत्येक प्रक्रिया का नियमन और समन्वय किया जाता है। हमारी जानकारी अभी बड़ी अधूरी अवस्था में है लेकिन हमें पूरा विश्वास है कि ज्यों-ज्यों कोशिकाओं की इन प्रक्रियाओं के बारे में हमारी जानकारी बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों इनको नियंत्रित और रूपांतरित करने की हमारी क्षमता में भी वृद्धि होती जाएगी। और असल में जीवन के इस रहस्य का पर्दाफाश करना ही हमारा उद्देश्य है।

प्रश्न

1. एंजाइम क्या हैं ? जीवधारियों की प्रक्रियाओं में इनकी क्या उपयोगिता है ? इसका विवेचन करिए।
2. एंजाइमों के कार्य की प्रक्रिया का विवेचन करिए।
3. एंजाइमों की उचित क्रियाशीलता किन सीमाकारी कारकों (limiting factors) द्वारा सम्पन्न होती है ?
4. एंजाइमों की अभिक्रियाओं का नियमन कैसे होता है ?
5. डीहाइड्रोजनेस एंजाइम का कार्य क्या है ?
6. तीन ऐसे गुण बतलाइए जो सभी एंजाइमों में पाए जाते हैं।

अध्याय 14

हॉरमोन और नियमन

जीवों (जीवन) की प्रमुख विशेषताओं में से वृद्धि (growth) भी एक विशेषता है जिसमें तीन आधारभूत प्रक्रम सम्बद्ध हैं : कोशिकाओं का विभाजन, विवर्धन (enlargement) और विभेदन। इन प्रक्रमों का नियमन जैविक (organic) पदार्थों के एक समूह द्वारा किया जाता है जिन्हें हॉरमोन या वृद्धि नियामक कहते हैं। ये रासायनिक निर्धारक (determinant) होते हैं। इनके द्वारा कई प्रकार के कार्य किए जाते हैं। इनकी विशेषताएँ हैं : (i) विशिष्ट भूमिका, (ii) उस सुदूर-स्थल पर क्रियाशीलता, जहाँ पर इनका संश्लेषण होता है, (iii) ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से स्थानांतरित हो सकते हैं, और (iv) बहुत सूक्ष्म सांद्रता में भी ये अपनी क्रिया दिखलाते हैं।

पादप-हॉरमोन

पौधों में ऐसे पदार्थ होते हैं जिनका लक्षण यह है कि वे सूक्ष्म मात्रा में रहने पर भी अभिक्रियाओं में अपनी विशिष्टता दिखलाते हैं। इन पदार्थों को हॉरमोन कहते हैं। ये पादप-हॉरमोन वृद्धि और विभेदन के प्रक्रमों से सम्बद्ध होते है। इनमें अधिक परिचित हॉरमोन हैं— ऑक्सिन, जिबरेलिन, साइटोकाइनिन, ऐब्सिसिक अम्ल तथा एथिलीन। यहाँ इन पर संक्षेप में विचार किया जाएगा।

ऑक्सिन

ये तनु या दुर्बल आर्गैनिक (organic) अम्ल हैं जिनमें अम्लीय समूह असंतृप्त वलय तंत्र (unsaturated ring system) से जुड़ी पार्श्व श्रृंखला के सिरे पर स्थित होता है। (चित्र 14.1)। ऑक्सिन जैसी क्रियाशीलता दिखलाने वाले अम्लहीन पदार्थ (जैसे इन्डोल एसीटोनाइट्रिल, आइ०ए०एन०—IAN) इस प्रकार की क्रियाशीलता एंजाइमीय सक्रियता द्वारा अम्लीय पदार्थों में
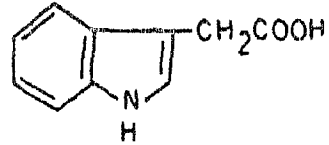
इंडोल – 3 इल ऐसीटिक अम्ल (आइ. ए. ए.)

चित्र 14.1 : इन्डोल-3 इल ऐसीटिक अम्ल—आई०ए०ए० (IAA) का संरचनात्मक सूत्र।

रूपांतरण होने से करते हैं। ये तने की शीर्षस्थ विभज्या (apical meristem), तरुण पत्तियों, वर्धमान बीजों और जड़ के सिरों में संश्लेषित होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तने के विवर्धन तथा एधा (Cambium) की क्रियाशीलता को और वर्धमान फल ऊतकों में वृद्धि को उद्दीपित (stimulate) करते हैं। बहिर्जात (exogenous) ऑक्सिनों द्वारा वृद्धि का उद्दीपन प्रयुक्त किए गए ऑक्सिन की सान्द्रता पर निर्भर करता है। कई ऑक्सिन ऐसे हैं जो वरणात्मक शाकनाशियों (herbicides) के रूप में कार्य करते हैं और इसीलिए खरपतवार (weed) को नष्ट करने के लिए इस्तेमाल किए

जाते हैं। इस तरह ऑक्सिनों के प्रभाव बहुत जटिल और कई प्रकार के होते हैं और संभवतः ये अन्य एक या अनेक वृद्धिकारी पदार्थों से मिलकर कार्य करते हैं।

जिबरेलिन

ये भी अम्लीय यौगिक हैं जो जिबेन-कार्बन कंकाल पर आधारित हैं और जो डाइटरपीनों (चित्र 14.2) से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। जिबरेलिन पौधे में चारों ओर बड़ी आसानी से गति करते हैं। तरुण पत्तियाँ, वर्धमान भ्रूण (embryo) और जड़ के शीर्ष (apices) या सिरे जिबरेलिन उत्पादन के केन्द्र हैं। जिबरेलिनों का सामान्य प्रभाव यह है कि अक्षत पौधों पर इनके अनुप्रयोग (application) से प्रायः तने और पत्तियों की वृद्धि अधिक होती है। वृद्धि पर डालने वाले प्रभावों के अतिरिक्त जिबरेलिन पौधों पर परिवर्धन से सम्बन्धित अन्य विविध पहलुओं से भी प्रभाव डालते हैं, जैसे कि प्रसुप्ति (dormancy), जीर्णता (senescence) और पुष्पन (flowering) के पहलू से। यहाँ तक कि जिबरेलिनों के छिड़काव से बिना परागण (pollination) के ही सेब, अंजीर (fig) और अंगूरों का परिवर्धन हो जाता है।
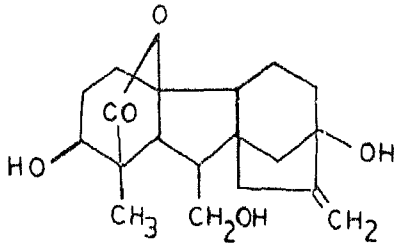
चित्र 14.2 : जिबरेलिक अम्ल (जिबरेलिन A_3) का संरचनात्मक सूत्र।

साइटोकाइनिन

ऊतक संवर्धों (cultures) में कोशिका-विभाजन की क्रियाशीलता बनाए रखने के लिए इन पदार्थों को आवश्यक पाया गया। किण (callus) में विभेदन के नमूने का निर्धारण करने में ये ऑक्सिनों के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं। साइटोकाइनिन समूचे पौधों की कई अन्य शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं से भी सम्बद्ध होते हैं, जैसे कि शीर्षस्थ प्रभाविता (apical dominance) और जीर्णता से। वृद्धि करने वाले हॉरमोनों के अन्य वर्गों (ऑक्सिन तथा जिबरेलिन) के विपरीत साइटोकाइनिन रासायनिक दृष्टि से अम्लीय होने की अपेक्षा क्षारीय होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तर्जात साइटोकाइनिन प्यूरीन नाइट्रोजनीय क्षारक-ऐडेनीन (चित्र 14.3) के व्युत्पन्न हैं। जड़ या मूल तंत्र साइटोकाइनिन संश्लेषण का वृहत क्षेत्र है। पत्तियों में प्रोटीन और पर्णहरित के स्तरों को बनाए रखने के लिए ही जड़ों की आवश्यकता होती है, और जड़ों पर की इस निर्भरता से बचने का उपाय है पत्तियों को साइटोकाइनिन उपलब्ध कराना। साइटोकाइनिन संभवतः ऊपर की ओर दारु (xylem) प्रवाह के साथ ही जाते हैं लेकिन कुछ खोजों से यह भी पता चलता है कि साइटोकाइनिनों की गति तलाभिसारी (basipetal) प्रकार से तने व वृंत या डंठल (petiole) के पृथक कंडों में भी होती है।

$$\mathrm{NH\cdot CH_2CH{:}\overset{CH_3}{\overset{|}{C}}\cdot CH_2OH}$$
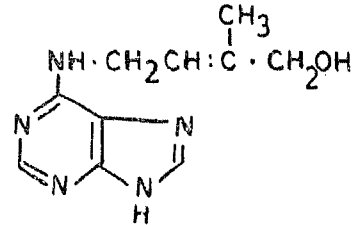
साइटोकाइनिन—जीटिन

चित्र 14.3 : साइटोकाइनिन-जीटिन का संरचनात्मक सूत्र।

ऐब्सिसिक अम्ल

प्राकृतिक रूप में पाया जाने वाला केवल एक पादप-हॉरमोन ही ऐसा है जो वृद्धि करने के बदले उसका संदमन करता है। इसको पृथक् करके इसकी पहचान कर ली गई है और यह है ऐब्सिसिक अम्ल। पौधों में जीर्णता, विलगन (abscission) और फूलों की शुरुआत सरीखी अन्य परिवर्धन-प्रक्रियाओं से सम्बद्ध होने के अतिरिक्त प्रसुप्ति के नियंत्रण में भी इसकी भूमिका स्थापित कर ली गई है। यह वृद्धिकारी हॉरमोनों के साथ अभिक्रिया करता है और वृद्धि का संदमन करने के अतिरिक्त पौधे के परिवर्धन पर भी प्रभाव डालता है।

एथिलीन

उन सभी तापमानों पर यह गैस अवस्था में ही रहती है जिनमें कि पौधे जीवित रह सकते हैं। पौधों द्वारा एथिलीन का उत्पादन विशेष रूप से फलों के पकने के दौरान होता है। एथिलीन के इस प्रभाव का फायदा सिट्रस (संतरा आदि के) उद्योग में उठाया जाता है जहाँ संतरा, नींबू, अंगूर आदि फलों को कभी-कभी उनके हरे रहते ही तोड़ दिया जाता है और फिर उन्हें एथिलीन वाले गैस-कक्ष (gas chamber) में पकाने के लिए रख दिया जाता है (अब केला और आम पकाने के लिए भी ऐसा ही किया जाता है)। यह भी ज्ञात हुआ है कि फलों के अतिरिक्त एथिलीन पौधे के अन्य भागों में भी उत्पन्न होती है। प्रसुप्ति को तोड़ने और लिंग (sex) निर्धारण सम्बन्धी खोजों में इसका उपयोग किया जाता है। (ऑक्सिन और एथिलीन के उपचार से नर पुष्प तो नहीं लेकिन स्त्री पुष्प बनने लगते हैं) लेकिन जिबरेलिन के उपचार से जायांगी (gynoecious) खीरे में नर और स्त्री दोनों प्रकार के फूल आने लगते हैं।
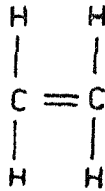
एथिलीन

चित्र 14.4 : एथिलीन का संरचनात्मक सूत्र।

प्राणि-हॉरमोन

प्राणियों में शरीर के विभिन्न भागों द्वारा किए जाने वाले क्रिया-कलापों का समन्वय तथा नियंत्रण सुस्पष्ट रूप से दो प्रकार की प्रक्रियाओं द्वारा होता है: (1) तंत्रिकीय समन्वय (nervous coordination) और (2) रासायनिक समन्वय। तंत्रिकीय समन्वय तंत्रिका-तंत्र के समस्त तत्वों द्वारा किया जाता है, जो शरीर में जाल की तरह फैले रहते हैं और रासायनिक समन्वय हॉरमोन के उत्पादन से सम्पन्न होता है।

जिन हॉरमोनों को 'रासायनिक दूत' (chemical messenger) भी कहा जाता है वे वाहिनीहीन ग्रंथियों (ductless glands) या अंतःस्रावी ग्रंथियों (endocrine glands) द्वारा स्रावित (Secreted) या उत्पन्न होते हैं। यकृत और अग्न्याशय के विपरीत, जो कि अपने स्राव (Secretion) को अपनी वाहिनियों (ducts) द्वारा प्रवाहित करते हैं, अवटु (thyroid), पीयूष (pituitary) और अधिवृक्क (adrenal) ग्रंथियाँ अपने स्रावों को रक्त के माध्यम से ही प्रवाहित करती हैं क्योंकि इनमें कोई वाहिनियाँ नहीं होतीं। इसीलिए पहले प्रकार की ग्रंथियों को (यकृत, अग्न्याशय) **बहिःस्रावी** (exocrine) ग्रंथि और दूसरे प्रकार की ग्रंथियों को **अंतःस्रावी ग्रंथि** कहते हैं। हॉरमोन शब्द एक यूनानी (ग्रीक) शब्द से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ होता है "उद्दीपित करना" (to stimulate)। हॉरमोन आर्गनिक प्रकार के शरीरक्रियात्मक यौगिक हैं जो अंतःस्रावी ग्रंथियों द्वारा उत्पन्न होते हैं और शरीर के दूर स्थित भागों के क्रिया-कलापों का निर्देशन करते हैं। इनकी क्रियाशीलता विशिष्ट प्रकार की और सही-सही होती है। हॉरमोन तंत्र के सामान्य संतुलन में किसी भी प्रकार की और जरा-सी छेड़छाड़ होने पर कई प्रकार की गड़बड़ियाँ या विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अधिकांश प्राणि-हॉरमोन निम्नलिखित कोटियों (categories) में से किसी एक में आते हैं: (1) स्टेरॉयड हॉरमोन, (2) जीवजनित (biogenic) अमीनो अम्ल हॉरमोन, (3) पेप्टाइड हॉरमोन, तथा (4) प्रोटीन पॉलिपेप्टाइड। ये जीव के उपापचय (metabolism), वृद्धि, जनन (reproduction), निर्मोचन (moulting) और परिवर्धन (development) का नियंत्रण करते हैं। मानव शरीर में अवटु, पराअवटु (parathyroid), अग्न्याशय, पिनियल, पीयूष, अधिवृक्क और नर व स्त्री लैंगिक अंग ही सब महत्वपूर्ण अंतःस्रावी ग्रंथियाँ हैं। इन्सुलिन को छोड़कर गैस्ट्रिन और सेक्रेटिन ऐसे हॉरमोन हैं जो पाचन-तंत्र के अंगों द्वारा उत्पन्न होते हैं। मस्तिष्क का अर्धश्चेतक (hypothalamus) मोचक हॉरमोन (releasing hormone) उत्पन्न कर पीयूष ग्रंथि के क्रिया-कलापों का नियंत्रण करता है। इनको निम्नलिखित छह शीर्षकों में विभाजित किया गया है :
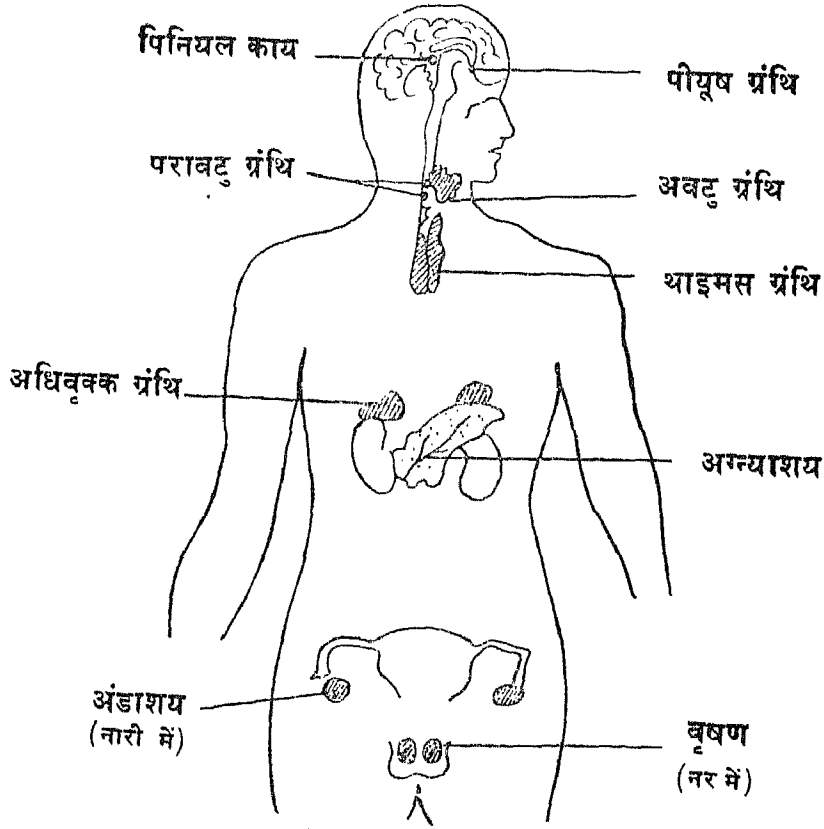
चित्र 14.5 : विभिन्न अंतःस्रावी ग्रंथियाँ और शरीर में उनकी स्थिति ।

1. टी० एस० एच०-आर० एच० [अवटु उद्दीपक हॉरमोन—मोचक हॉरमोन]
   (TSH) (RH) (अ० उ० हॉ०) (मो० हॉ०)
   (Thyroid stimulating hormone) (releasing hormone)

2. ए० सी० टी० एच०-आर० एच० [अधिवृक्क-वल्कुट प्रभावी हॉरमोन—मोचक हॉरमोन]
   (ACTH) (RH) (अ० व० प्र० हॉ०) (मो० हॉ०)
   (adrenocorticotrophic hormone) (releasing hormone)

3. एफ० एस० एच०-आर० एच० [पुटक-उद्दीपक हॉरमोन—मोचक हॉरमोन]
   (FSH) (RH) (पु० उ० हॉ०) (मो० हॉ०)
   (Follicle stimulating hormone) (releasing hormone)

4. एल० एच० आर० एच० [ल्यूटिनाइजिंग हॉरमोन—मोचक हॉरमोन]
   (LH) (RH) (ल्यू० हॉ०) (मो० हॉ०)
   (Leutinizing hormone) (releasing hormone)

5. जी० एच०-आर० एच० (GH) (RH)	[वृद्धि हॉरमोन—मोचक हॉरमोन] (वृ० हॉ०) (मो० हॉ०) (Growth hormone) (releasing hormone)
6. पी० आइ० एफ०-आर० एच० (PIF) (RH)	[प्रोलैक्टिन संदमक—मोचक हॉरमोन] (प्रो० सं०) (मो० हॉ०) (Prolactin inhibitor) (releasing hormone)

अंतःस्रावी तंत्र के महत्व पर प्रकाश डालने के लिए हॉरमोनों का संक्षिप्त विवरण देना काफी होगा।

अवटु ग्रंथि थाइरॉक्सिन का स्रवण करती है और वृद्धि तथा उपापचय पर नियंत्रण रखती है (चित्र 14.5)।

पीयूष ग्रंथि का एक जटिल तंत्र है जिसमें **तंत्रिकांश** (pars nervosa), **मध्यवर्ती अंश** (pars intermedia) और **अग्रांश** (pars anterior) कहलाए जाने वाले अंश होते हैं। अर्धचेतक केन्द्र अवटु और अधिवृक्क बल्कुट हॉरमोन के स्रवण के नियमन में मध्यस्थ यानी बिचौलिए का कार्य करते हैं। तंत्रिकांश द्वारा दाबवर्धक (pressor) और गर्भाशय संकोची (oxytocic) तत्वों का संचालन होता है। प्रतिमूत्रल (antidiuretic) हॉरमोन या वैसोप्रेशन वृक्क-नलिकाओं द्वारा पानी के निष्कासन का नियंत्रण करता है। इसका कार्य प्रतिमूत्रल हॉरमोन का कार्य करना भी होता है। गर्भाशय संकोची तत्व गर्भाशय (uterus) की चिकनी पेशियों का नियंत्रण करके उनको अपेक्षित कार्य करने के लिए सही दशा में रखता है।

मध्यवर्ती अंश के हॉरमोन से मेलानिनधरों (melanophores) पर प्रभाव पड़ता है। पीयूष ग्रंथि के अग्र अंश से इन छह हॉरमोनों का मोचन होता है—(1) एफ० एस० एच० (पुटक उद्दीपक हॉरमोन), (2) आई० सी० एस० एच० अथवा एल० एच० (ल्यूटिनाइजिंग हॉरमोन), (3) प्रोलैक्टिन, (4) टी० एस० एच० (अवटु उद्दीपक हॉरमोन), (5) ए० सी० टी० एच० (अधिवृक्क बल्कुट प्रभावी हॉरमोन), और (6) जी० एच० (वृद्धि हॉरमोन)। इनका अपने क्रम से जनन कार्यों, वृद्धि और उपापचय पर नियमनकारी प्रभाव पड़ता है।

पराअवटु ग्रंथि का स्रवण रक्त, कैल्सियम और फॉसफोरस के स्तर का नियमन करता है। पराअवटु हॉरमोन की अनुपस्थिति में रक्त का कैल्सियम कम और फॉसफोरस अधिक हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप अपतानिका (tetany), पेशीय स्फुरण (twitching), ऐंठन या आक्षेप (convulsions) होने लगते हैं।

अधिवृक्क ग्रंथियों के मध्यांश (medulla) से ऐड्रीनेलिन और नॉरऐड्रीनेलिन का स्रवण होता है जो स्वायत्त (autonomous) कार्यों का नियंत्रण करते हैं, जैसे कि हृदय स्पन्द या धड़कन (heart beat), नाड़ी-दर (pulse rate), ग्लूकोस उपापचय और पाचन व श्वसन पथों (tracts) के पेशीय सँकुचन का।

वल्कुटीय हॉरमोन परासरण (osmotic)-सन्तुलन तथा कार्बोहाइड्रेट व खनिज उपापचय का नियमन कर जनद या जनन-ग्रंथि (gonad) के जनन हॉरमोनों के कार्यों का संपूरण करते हैं (पूरा करते हैं)। लैंगिक हॉरमोन लैंगिक कोशिकाओं के उत्पादन, वृद्धि व परिवर्धन और स्त्री स्तनियों में गर्भावस्था के लिए आवश्यक तैयारी तथा शिशुओं के पोषण के लिए जिम्मेदार होते हैं। इन हॉरमोनों से ही द्वितीयक लैंगिक लक्षणों का नियंत्रण भी होता है।

अग्न्याशय के **लैंगरहेन्स द्वीप** (islets of Langerhans) द्वारा स्रावित इन्सुलिन बहुत महत्वपूर्ण प्रतिमूत्रल हॉरमोन है। कार्बोहाइड्रेट उपापचय में इसकी रासायनिक प्रकृति और भूमिका के बारे में बहुत अधिक जानकारी प्राप्त कर ली गई है।

हॉरमोन के कार्य की प्रक्रिया

हॉरमोनों को उनकी कार्य प्रणाली के आधार पर दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) **शीघ्र क्रिया करने वाले हॉरमोन** : ये हॉरमोन अपना कार्य बहुत शीघ्रता से करते हैं क्योंकि इनके प्रयुक्त होने और उसके बाद पड़ने वाले मुख्य जैविक प्रभाव के

बीच की अवधि बहुत ही कम होती है। इस प्रभाव के पड़ने तक क्रियाओं की एक लम्बी श्रृंखला होती है। इनके उदाहरण हैं—एपिनेफ्रीन, नॉरएपीनेफ्रीन, ए० सी० टी० एच० (अधिवृक्क-वल्कुट प्रभावी हॉरमोन), ग्लूकोगॉन, एल० एच० (ल्यूटिनाइजिंग हॉरमोन), टी० एस० एच० (अवटु उद्दीपक हॉरमोन) आदि।

चित्र 14.6 : विशिष्ट जीन सक्रियकारकों (activators) पर हॉरमोन ग्राही सम्मिश्र।

(ख) **पश्चता अवधि (lag period) वाले या विलंब से क्रिया करने वाले हॉरमोन** : इनके प्रसंग में, हॉरमोन के प्रयुक्त होने और उसके प्रभावों के प्रकट होने के बीच काफी लम्बी अवधि होती है। इनके उदाहरण हैं सभी स्टेरॉयड हॉरमोन।

शीघ्र क्रिया करने वाले हॉरमोन—कैटेकोलैमीनों यानी एपिनेफ्रीन और नॉरएपीनेफ्रीन के संदर्भ में सदरलैंड ने विशेष रूप से पथप्रदर्शक कार्य किया है। जब कैटेकोलैमीन दी जाती हैं तो हॉरमोन (या पहला दूत) कोशिका-झिल्ली में विद्यमान विशिष्ट ग्राही (receptor) प्रोटीन के साथ संयोग करता है (जुड़ता है) और **हॉरमोन-ग्राही सम्मिश्र** बनाता है (चित्र 14·6)। यह मिला-जुला सम्मिश्र **ऐडीनिल साइक्लेस** को सक्रियित (activate) करता है, जो कि झिल्लीबद्ध एंजाइम होता है। फिर अपनी बारी पर ऐडीनिल साइक्लेस उत्प्रेरण से ए० टी० पी० (ATP) को सी०-ए० एम० पी० (C-AMP) में रूपांतरित कर देता है।

ए० टी० पी०⟶3′, 5′ चक्रीय ए०एम०पी०

[ATP ⟶ 3′, 5′ Cyclic AMP (C-AMP)]

सी-ए० एम० पी० को सदरलैंड ने **दूसरा दूत** कहा।

सी-ए० एम० पी० **फास्फोकाइनेस** नामक एंजाइम को सक्रियित करता है, जो अपनी बारी पर अक्रिय एंजाइम फॉस्फोराइलेस बी (phosphorylase b) पर क्रिया करके उसे सक्रियित कर **फॉस्फोराइलेस** ए (Phosphorylase a) में बदल देता है। अभिक्रियाओं की श्रृंखला में यह सक्रियित एंजाइम ग्लाइकोजन का ग्लूकोस में अवकर्षण करने के लिए जिम्मेदार होता है। इसी कारण कैटेकोलैमीन अपना उपापचयी प्रभाव दिखलाते हैं, यानी रक्त में ग्लूकोस-स्तर की वृद्धि करते हैं। समग्र रूप से अभिक्रियाओं की इस श्रृंखला को सदरलैंड का **सोपानी प्रभाव** (cascade effect) कहा जाता है। इन अभिक्रियाओं या घटनाओं (चरणों) का आरेखी निरूपण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

हॉरमोन (पहला दूत)
+
विशिष्ट ग्राही प्रोटीन
↓
हॉरमोन ग्राही सम्मिश्र
↓
ऐडेनिल साइक्लेस (सक्रिय) पर क्रिया करता है।
ए० टी० पी०⟶3′, 5′ चक्रीय ए० एम० पी०
↓ (दूसरा दूत) सक्रियित करता है।
फॉस्फोकाइनेस
↓
फॉस्फोराइलेस बी (अक्रिय)
↓
फॉस्फोस्फोराइलेस ए (सक्रिय)
ग्लाइकोजन
↓ अभिक्रियाओं की श्रृंखला
ग्लूकोस

पश्चता अवधि वाले या विलंब से क्रिया करने वाले ॉरमोन—इन हॉरमोनों का मुख्य प्रभाव **नये सिरे से** जाइमों अथवा प्रोटीनों के संश्लेषण द्वारा संपन्न होता है, जससे **पश्चता अवधि** यानी विलंब वाली अवधि बीच आ जाती है। आर० एन० ए० का संश्लेषण प्रोटीन-श्लेषण की अपेक्षा पहले प्रेरित किया जाता है। **स्ट्रोजन** (estrogen) के कार्य की प्रक्रिया इसका अच्छा दाहरण है।

इनकी शुरू वाली बातें या घटनाएँ वैसी ही हैं जैसी क पहली कोटि के हॉरमोनों में होती हैं। चूहे के गर्भाशय एस्ट्रोजन देने के 15 सेकंड के अन्दर ही सी०-ए०एम० ी० उत्पन्न हो जाता है। हॉरमोन कोशिकाद्रव्य में ाहियों (receptors) के साथ संयोग करता है जिन्हें **ाइटोसॉल** कहते हैं और यहाँ से इसे फिर केन्द्रक में हुँचा दिया जाता है, जहाँ पहुँचकर हॉरमोन-केन्द्रीय ग्राही ंमिश्र डी०एन०ए० को सक्रियित कर देता है। इस प्रकार mआर०एन०ए० का संश्लेषण होता है और इसके ाद कुछ **मुख्य प्रोटीनों** (key proteins) का, जो इसके फलस्वरूप आर० एन० ए० (राइबोसोमी और m आर० एन०ए०) के स्फोटन (burst) के विप्रेरकों (inducers) का कार्य करते हैं और प्रोटीन का निर्माण करने वाले कई एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करते हैं। हॉरमोन देने (या प्रयुक्त होने) के करीब 20 से 24 घंटे बाद डी० एन० ए० का संश्लेषण होता है और इसके बाद कोशिकाओं का गुणन या संवर्धन (multiplication) होता है।

कोशिकाद्रव्य में उपस्थित रहने वाले ग्राही और केन्द्रक बहुत ही अधिक विशिष्ट प्रकार के होते हैं और **त्रिविम-विशिष्टता** (stereospecificity) दिखलाते हैं क्योंकि ये एक विशेष हॉरमोन के विभिन्न रूपों में भेद (पहचान) कर सकते हैं, जैसे एस्ट्रैडिऑल 17 α और एस्ट्रैडिऑल 17 β।

इस प्रकार हॉरमोनों की क्रियाएँ जीन अथवा कोशिकाद्रव्यी अणुओं को उद्दीपित करने पर ही प्रकट होती हैं जिनका प्रभाव तदनुसार विलंब या शीघ्रता से पड़ता है।

प्रश्न

1. हॉरमोन क्या हैं? ये इतने महत्वपूर्ण क्यों हैं?
2. पादप और प्राणि हॉरमोनों के कुछ प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. शीघ्र क्रिया करने वाले हॉरमोनों में सी-ए०एम०पी० की भूमिका का विवेचन करिए।
4. हॉरमोन किस प्रकार जीन की क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं?
5. अपनी इच्छा के अनुसार किन्हीं तीन हॉरमोनों की रासायनिक प्रकृति का वर्णन करिए।

इकाई 2

आनुवंशिकी

अध्याय 15

आनुवंशिक गुणों का भौतिक तथा रासायनिक आधार

रॉबर्ट हूक नामक वैज्ञानिक ने सन् 1665 ई० में सर्व-प्रथम कोशिकाओं को कार्क की पतली परतों में देखा और उनका अध्ययन दूसरे पेड़-पौधों में किया। किन्तु कोशिका के अन्दर केन्द्रक भी होता है और इस केन्द्रक को सबसे पहले रॉबर्ट ब्राउन नामक वैज्ञानिक ने 1831 ई० में देखा। तबसे ले कर आज तक केन्द्रक को कोशिका का अभिन्न तथा अति आवश्यक अंग माना जाता रहा है। अब हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि केन्द्रक, परम्परा द्वारा प्राप्त सूचना का भण्डार है और साथ ही कोशिका के अन्दर होने वाली सारी उपापचयी क्रियाओं का नियंत्रण भी करता है।

सामान्यत: कोशिका में प्राय: एक केन्द्रक होता है। किन्तु कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं (जैसे कवकों में नलिका-कार कोशिकाएँ) जहाँ एक कोशिका में एक से अधिक केन्द्रक होते हैं। केन्द्रक कोशिका के द्रव्य में स्थित होता है। एक नई बनी हुई कोशिका का केन्द्रक केन्द्र में होता है पर जैसे-जैसे कोशिका पुरानी होती जाती है, केन्द्रक केन्द्र से हटकर एक तरफ को आता जाता है, जिस का मुख्य कारण है कोशिका के केन्द्र में एक रिक्तिका का बन जाना (चित्र 15.1)। साधारणत: केन्द्रक गोल या अंडाकार होते हैं। परन्तु कभी-कभी लम्बे (जैसे मांसपेशियों में), गोल फूले हुए से (जैसे मनुष्य के रक्त में न्यूट्रोफिल नामक कोशिकाओं में), शाखाओं में विभाजित होते हुए (जैसे कुछ कीड़ों के लारवों में) या कई प्रकार के आकारों में (जैसे सफेद रक्त कोशिकाओं में) (चित्र 15.2) भी होते हैं। केन्द्रक की आकृति तथा आकार पर केन्द्रक का वह सतही क्षेत्रफल निर्भर करता है जो कोशिका द्रव्य के सम्पर्क में होता है।

स्ट्रासबर्गर ने 1873 में केन्द्रक के विषय में अपनी धारणा व्यक्त की और बताया कि केन्द्रक का जन्म भूतपूर्व केन्द्रक से ही होता है। हर्टविग (1875) तथा वान बेनेडेन (1875) ने स्वतन्त्र रूप से यह बताया कि अण्ड तथा शुक्राणु के केन्द्रक निषेचन के समय मिल कर एक हो जाते हैं। इस धारणा के विरुद्ध वीजमैन (1833-1885) ने अपना मत एक सिद्धान्त के रूप में व्यक्त किया और वह सिद्धान्त था—'आनुवंशिकता निश्चित रासायनिक गुणों और उससे भी अधिक, निश्चित आण्विक संगठन वाले पदार्थ के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाने से होती है।' यह निरन्तरता का सिद्धान्त था। वीजमैन ने इस तत्व का नाम रखा जर्मप्लाज्म (germplasm) और बताया कि यही केन्द्रक द्रव्य है जो एक पीढ़ी से दूसरी में जाता है।

यह भी देखा गया कि किसी भी एक स्पिसीज के जीवों में अण्ड का आकार शुक्राणु के आकार से बहुत बड़ा होता है। इस अन्तर का मुख्य कारण है कि अण्ड तथा शुक्राणु में कोशिका द्रव्य की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। इनके केन्द्रकों का आकार एक बराबर ही होता है। यही कथन पेड़-पौधों के नर तथा मादा युग्मक (गैमीट) के लिए भी सत्य है। नर तथा मादा दोनों ही का आनुवंशिक
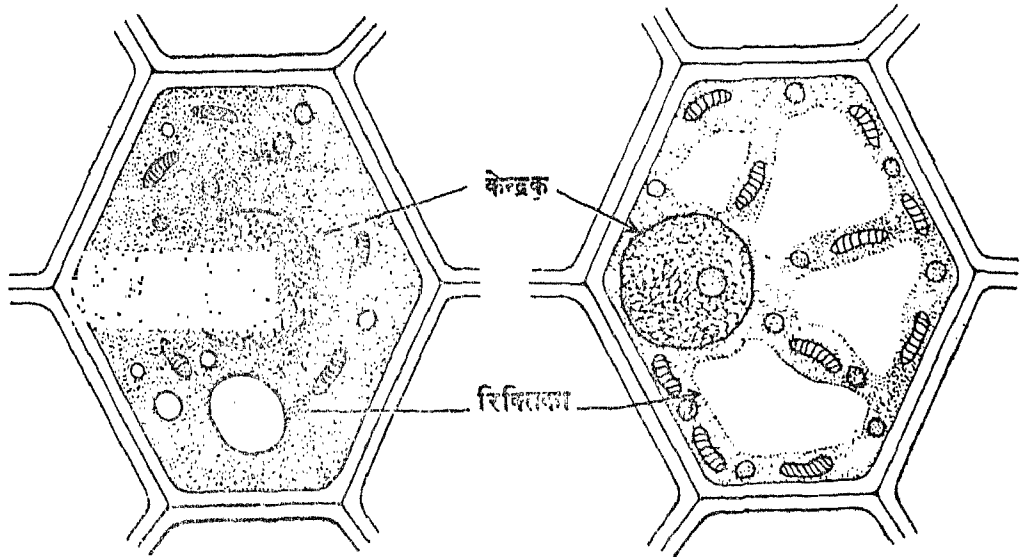
चित्र 15.1 : एक नवजात कोशिका, केन्द्र में स्थित केन्द्रक के साथ (बायें) तथा एक परिपक्व कोशिका जिसमें केन्द्रक रिक्तिता के बढ़ जाने के कारण एक तरफ को खिसक गया है (दायें)।
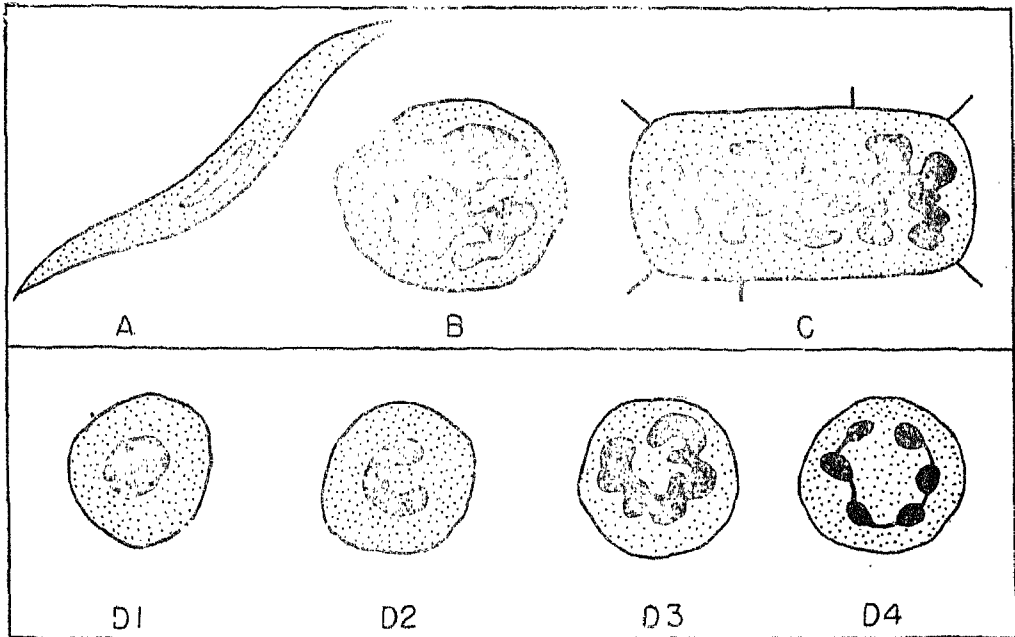
चित्र 15.2 : केन्द्रक की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ। A-पेशी तंतु में लम्बा। B-मानव न्यूट्रोफिल कोशिका में पिंड की भांति। C-कीट लारवा की रेशम कातने वाली कोशिका में विभाजित होते हुए। D1-से D4-तक श्वेताणु में विभिन्न आकृतियों में।

योगदान बराबर होता है । इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि कोशिका द्रव्य नहीं, अपितु केन्द्रक आनुवंशिक सूचनाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए प्रायोगिक प्रमाण सर्वप्रथम बोवेरी (1889) के समुद्री अर्चिन पर किए गए प्रयोगों से मिले थे। बोवेरी ने समुद्री अर्चिन के अण्डों को हिला कर दो दो भागों में ऐसे तोड़ा कि एक भाग में केन्द्रक था और दूसरे भाग में नहीं था। अण्डे के उस आधे भाग को भी जो केन्द्रक रहित था, निषेचित किया गया और फिर उसमें वृद्धि होती देखी गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि अण्ड तथा शुक्राणु केन्द्रक का आनुवंशिक सूचनाओं से सम्बन्धित योगदान बराबर है तथा शुक्राणु केन्द्रक में वृद्धि से सम्बन्धित सारी आनुवशिक सूचनायें होती हैं। समुद्री अर्चिन के उन सभी अण्डों के भागों को जिनमें केन्द्रक था तथा जो केन्द्रक रहित थे, एक ही प्रकार के शुक्राणुओं से निषेचित किया गया। इसका परिणाम बहुत मनोरंजक था। जो लारवे केन्द्रक रहित अण्ड से उत्पन्न हुए थे, उनमें केवल नर के गुण मौजूद थे जबकि वो लारवे जो केन्द्रक युक्त अण्ड से उत्पन्न हुए थे, उनमें नर तथा मादा दोनों ही के गुण देखने को मिले। इन दोनों लारवों के अन्तर का कारण केवल अण्ड में केन्द्रक की अनुपस्थिति या उपस्थिति थी। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि केन्द्रक का पैतृक गुणों के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचने में बहुत बड़ा योगदान है। इसी भाँति के और प्रयोग अमीबा, शैवाल, जल-थल चर जीव तथा और भी दूसरे जीवों पर किये गये। इन प्रयोगों ने बोवेरी के कथन की पुष्टि की। **अमीबा प्रोटियस** का केन्द्रक रहित भाग धीरे-धीरे क्रिया रहित हो जाता है और अंत में मर जाता है। यह केन्द्रक रहित भाग संकुचनशील धानी नहीं बना सकता किन्तु यदि एक ऐसी धानी पहले से ही हो तो वह उसे प्रतिपादित कर सकता है। दूसरी तरफ केन्द्रक युक्त भाग अपने आसपास के वातावरण के प्रति संवेदनशील रहता है, एक नयी धानी बना सकता है (अगर पहली वाली निकाल दी जाए), वृद्धि करता है, भोजन ग्रहण करता है तथा दो कोशिकाओं में विभाजित भी होता है। केन्द्रक रहित भाग को यदि केन्द्रक युक्त कर दिया जाय तो यह भाग पूरी तरह सक्रिय हो जाता है। इन प्रयोगों से मालूम होता है कि कोशिका बिना केन्द्रक के जीवित नहीं रह सकती तथा कोशिका का जीवित रहना, वृद्धि करना तथा विभाजित होना केन्द्रक द्वारा नियंत्रित होता है।

एक कोशिका वाली हरी शैवाल, एसीटेब्युलेरिया (चित्र 15.3) में हैमरलिंग (1953) ने रोपण के प्रयोग किये और पुनः एक बार केन्द्रक का आनुवंशिकता में योगदान के कथन की पुष्टि की। इस शैवाल की लम्बाई करीब 6 सेन्टीमीटर होती है और वह प्रायः वृंत तथा आच्छद में विभेदित रहता है। आच्छद का स्वरूप प्रत्येक स्पिसीज़ के लिए विशेष प्रकार का होता है। यदि इसको निकाल दिया जाय तो यह पुनर्योजित हो जाता है। मूलाभास में केवल एक केन्द्रक होता है। **ए० क्रेन्युलेटा** में आच्छद में लगभग 31 किरणें (अणें) होती हैं जिनके शीर्ष नोकीले होते हैं। किन्तु **ए० मेडिटरेनिया** में लगभग 81 किरणें होती हैं जिनकी नोकें गोल चिकनी होती हैं। यदि आच्छद वृंत यहाँ तक कि मूलाभास के केन्द्रक को भी हटा दिया जाय, तो भी बचा हुआ भाग पुनर्योजित हो कर एक पूरा पौधा बना सकता है। केन्द्रक रहित भाग की पुनर्योजन की शक्ति धीरे-धीरे कम होती जाती है किन्तु केन्द्रक युक्त भाग में यह शक्ति सदैव विद्यमान रहती है। जब एक स्पिसीज़ के वृंत को दूसरी स्पिसीज़ के केन्द्रक युक्त मूलाभास पर रोपित कर दिया जाता है तो एक नई प्रकार की आच्छद बन जाती है। आच्छद को हटा देने के बाद एक दूसरी आच्छद बन जाती है जो उस वर्ग की आच्छद से मिलती जुलती है जिससे उसे केन्द्रक मिला है। यदि दोनों वर्ग के केन्द्रक कोशिका द्रव्य में उपस्थित हों तो एक बीच की तरह की आच्छद बन जाती है। इन सारे प्रयोगों से एक बार फिर सिद्ध हो जाता है कि केन्द्रक, आनुवंशिक गुणों से सम्बन्धित संदेशों का भंडार है तथा उन पर पूरा नियन्त्रण भी रखता है।

समुद्री अर्चिन के केन्द्रक रहित अण्डों को हाइपरटोनिक घोल में डाल कर बिना निषेचन के भी वृद्धि के लिए उत्तेजित किया जा सकता है किन्तु थोड़ी देर के बाद ही यह विभाजन बंद कर देता है और धीरे-धीरे गलने लगता है इसलिए किसी भी कोशिका में केन्द्रक की उपस्थिति कोशिका की क्रियाओं के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य है। कोशिका द्रव्य केन्द्रक की अनुपस्थिति में बहुत लम्बे समय
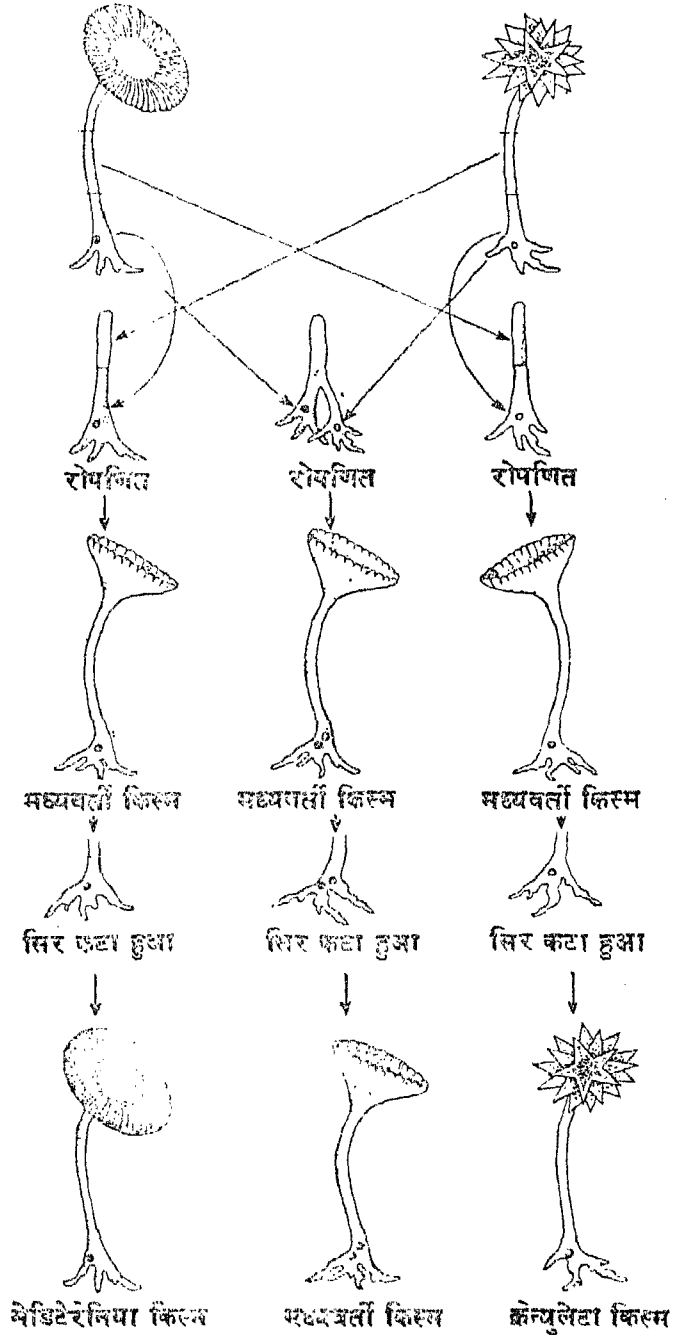
चित्र 15 3 : ऐसीटेबुलेरिया में रोपण प्रयोगों का तात्पर्य, यह प्रमाणित करने के लिए कि वंशागत लक्षण केन्द्रक द्वारा निर्धारित होते हैं, कोशिका द्रव्य द्वारा नहीं ।
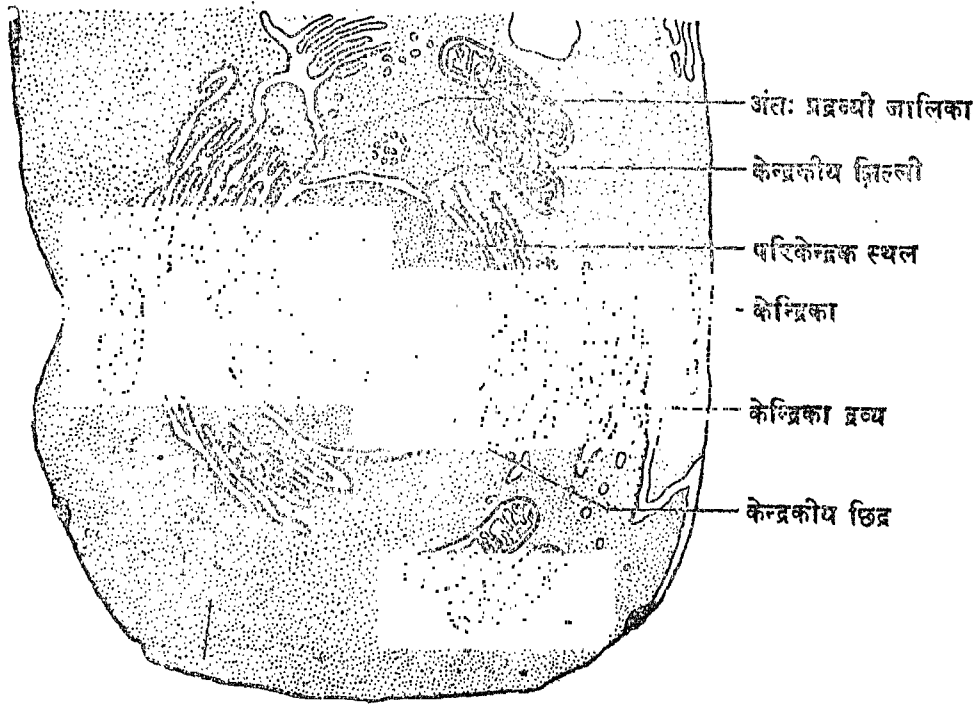
चित्र 15.4 : एक प्ररूपी कोशिका में अन्तरावस्था केन्द्रक तथा केन्द्रक आवरण की कोशिका द्रव्य झिल्लियों से निरन्तरता ।

तक जीवित नहीं रह सकता । इसी भाँति एक केन्द्रक, कोशिका द्रव्य के बिना भी जीवित नहीं रह सकता ।

केन्द्रक केन्द्रकीय आवरण से घिरा रहता है । इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के द्वारा अध्ययन करने से मालूम हुआ कि यह आवरण (केन्द्रकीय झिल्ली) दोहरी झिल्ली से बना होता है तथा इसमें कई छिद्र होते हैं जिनका व्यास 50Å (चित्र 15.4) होता है । दो झिल्लियों के बीच की जगह को परिकेन्द्रक स्थल कहते हैं । केन्द्रकीय आवरण की बाहरी झिल्ली कई स्थानों पर कोशिका झिल्ली से जुड़ी रहती है । इन केन्द्रकीय छिद्रों के कारण कोशिका द्रव्य केन्द्रकीय द्रव्य (जिसे न्यूक्लियर मैट्रिक्स, न्यूक्लियर सैप या कैरियोलिम्फ के नाम से भी जानते हैं) के साथ संचार करता है । जीवित कोशिकाओं में केन्द्रकीय द्रव्य एक समान होता है किन्तु जब इसे कुछ रंजकों से अभिरंजित किया जाता है तो भाँति-भाँति की संरचना दिखाई पड़ती है । इसमें सबसे अधिक स्पष्ट होता है धागे की तरह दिखने वाला क्रोमैटिन का जाल जो क्षारीय अभिरंजकों से अभिरंजित होता है । कभी कभी क्रोमैटिन का जाल दिखाई नहीं पड़ता । इसके स्थान पर केवल क्रोमैटिन कण दिखाई पड़ते हैं । प्रत्येक केन्द्रक में कम से कम एक, और कभी-कभी एक से अधिक, केन्द्रिका होती है जो अधिकतर गोल, घनी तथा प्रोटीन व आर० एन० ए० से परिपूर्ण रहती है । इस कोशिका को सबसे पहले वैगनर (1840) ने देखा तथा इसका केन्द्रिका नाम बोमैन (1840) ने दिया। केन्द्रिका सदा क्रोमैटिन धागों के किसी एक हिस्से से चिपकी रहती है (चित्र 15.5) ।

राइबोसोम केन्द्रकीय द्रव्य में भी देखे गये हैं । केन्द्रकीय विभाजन के दौरान क्रोमैटिन का जाल अधिक घना
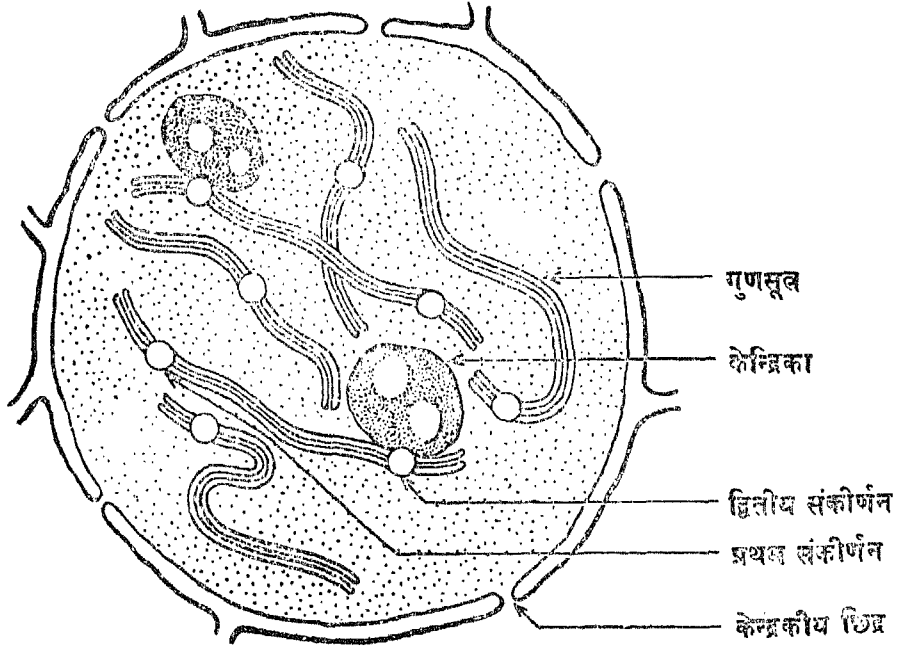
चित्र 15.5 : एक केन्द्रक अपनी केन्द्रिका के साथ जो गुणसूत्र पर एक विशेष बिन्दु से चिपकी हुई है।

तथा घूमा हुआ हो जाता है जिसके कारण क्रोमेटिन के लम्बे-लम्बे धागे छोटे तथा मोटे दिखाई देने लगते हैं। इन अधिक अभिरंजित छड़ों के समान संरचना को वाल्डेयर (1888) ने गुणसूत्र का नाम दिया और इन गुणसूत्रों को सबसे पहले होफ्मेस्टर (1848) ने देखा था।

ससीमकेन्द्रकी यूकेरियोटिक कोशिकाओं में ठीक प्रकार से बने हुए केन्द्रक तथा गुणसूत्र होते हैं। असीमकेन्द्रकी प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं, जैसे जीवाणु तथा नीली हरी शैवाल में केन्द्रक विसरित होते हैं तथा उनमें केन्द्रकीय झिल्ली नहीं होती। फिर भी उनका केन्द्रकीय तत्व पुंजित अवस्था में होता है तथा आसानी से सूक्ष्मदर्शी के द्वारा कोशिका द्रव्य में पहचाना जा सकता है (चित्र 15.6)।

हर्टविग ने 1875 में पेड़ पौधों में तथा जीव जंतुओं में निषेचन की उस प्रक्रिया को देखा जिसमें मातृ तथा पितृ केन्द्रक सम्मिलित हो जाते हैं। करीब-करीब उसी समय वॉन वेनेडन नामक वैज्ञानिक ने सूत्र-कृमि के अण्ड तथा शुक्राणु के केन्द्रकों में दो-दो धागे के समान संरचना देखीं तथा निषेचित अण्ड में इस प्रकार की चार संरचनायें देखीं। कायिका कोशिका में केन्द्रकीय विभाजन को फ्लेमिंग (1882) ने सूत्रीविभाजन (माइटोसिस) का नाम दिया। फ्लेमिंग ने यह भी देखा कि कोशिका विभाजन से कुछ देर पहले, प्रत्येक गुणसूत्र लम्बाई में विभाजित होकर दो आधे गुणसूत्र बनाता है जो एक दूसरे से अलग होकर दो हुई कोशिकाओं में चले जाते हैं। अतः हर एक कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या समान बनी रहती है। हर एक गुणसूत्र की अपनी एक विशेषता होती है और गुणसूत्रों की यह विशेषता कोशिका की उन परिस्थितियों में भी रहती है जब गुणसूत्र दिखलायी तक नहीं पड़ते।
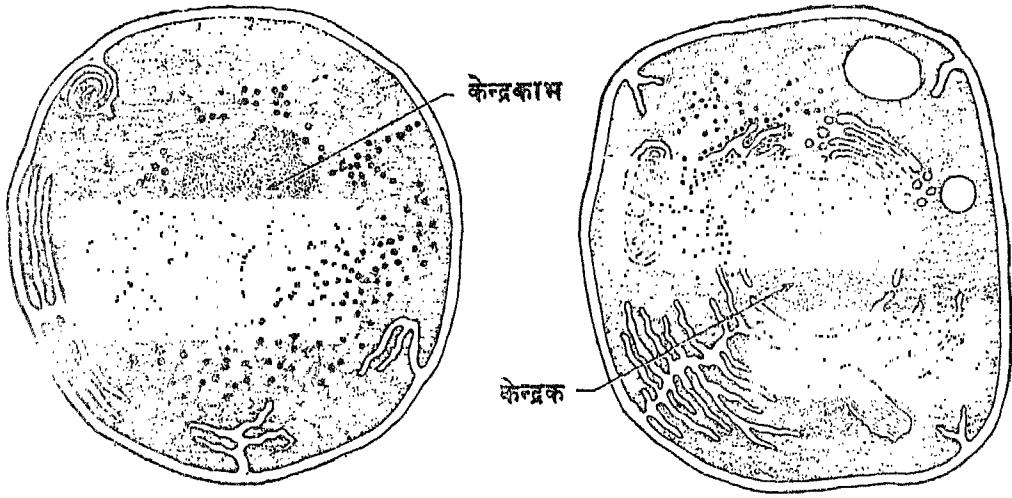
चित्र 15.6 : असीम केन्द्रकी (बायें) तथा ससीम केन्द्रकी (दायें) कोशिकाएँ अपने कोशकीय संगठन में भिन्नता दिखाती हुई।

युग्मक, कायिका कोशिका के दो बार विभाजित होने के उपरांत बनते हैं। इस तरह के कोशिका विभाजन का परिणाम यह होता है कि प्रत्येक नई कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक कोशिका से आधी होती है। इस प्रकार के कोशिका विभाजन का विस्तृत अध्ययन विनीवारटर (1900) ने खरगोशों में किया। फारमर तथा मूर (1905) ने इस प्रकार के विभाजन को अर्धसूत्री विभाजन (मियोसिस) कहा। सटन तथा बोवेरी ने भी 1901-1903 में यह देखा कि प्रजनन के समय गुणसूत्रों के व्यवहार तथा वंशागति के समय गुणों के प्रेषण में कुछ समानता है। माता तथा पिता के लक्षण संतति में घुल-मिल जाते हैं तथा बाद में युग्मक के बनने के समय फिर से अलग-अलग हो जाते हैं। इसी भाँति माता-पिता के गुणसूत्र एक ही युग्मनज में आ जाते हैं और पुनः युग्मक बनाने हेतु अर्धसूत्री विभाजन के दौरान अलग अलग हो जाते हैं (चित्र 15.7)। इस तथ्य को देखते हुए सटन तथा बोवेरी ने कहा कि गुणसूत्र आनुवंशिकता के गुणों के वाहक हैं तथा जीव विशेष के गुणों को निर्धारित करते हैं।

केन्द्रक तथा गुणसूत्र दोनों ही गुणों की वंशागति से सम्बन्ध रखते हैं इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उनकी रासायनिक संरचना को जानें जिससे कि आनुवंशिक गुणों का आणविक आधार समझा जा सके। केन्द्रक का रासायनिक अध्ययन सरलता से किया जा सकता है क्योंकि केन्द्रक को आसानी से भौतिक तथा रासायनिक तकनीकों द्वारा कोशिका के दूसरे भागों से अलग किया जा सकता है। कुछ ऐसी अभिरंजक प्रतिक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा केन्द्रक में तरह तरह के रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति तथा केन्द्रक के अन्दर के दूसरे भागों के विषय में आसानी से जानकारी हासिल की जा सकती है। केन्द्रक के कुछ रासायनिक तत्वों का अध्ययन पराबैंगनी या प्रतिदीप्त (फ्लोरोसेंट) सूक्ष्मदर्शी से भी किया जा सकता है।

चित्र 15.7 : मक्के के पौधे का जीवनचक्र-वे अवस्थाएँ दिखाते हुए जब अर्धसूत्री विभाजन तथा संगलन के होने के परिणामस्वरूप अगुणन तथा द्विगुणन स्थितियों का एकान्तरण होता है।

अभी तक पिछली सदी के अध्ययन के आधार पर केन्द्रक में निम्नलिखित अवयव होते हैं :

1. डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल (डी० एन० ए०)
2. राइबोन्यूक्लिक अम्ल (आर० एन० ए०)
3. लिपिड
4. क्षारीय प्रोटीन (हिस्टोन या प्रोटामिन)
5. जटिल प्रोटीन (जिनमें एनजाइम्स भी हैं)
6. फॉसफोरस युक्त कार्बनिक भाग तथा
7. अकार्बनिक भाग, जैसे—लवण।

इन सब में केन्द्रक का सबसे निराला हिस्सा है—न्यूक्लिक अम्ल जो कोशिका द्रव्य में अधिक मात्रा में नहीं पाया जाता। न्यूक्लिक अम्ल का पता सबसे

पहले फ्रेडरिक मीशर नामक वैज्ञानिक ने 1869 में लगाया। इस वैज्ञानिक ने पीब कोशिकाओं के केन्द्रकों को अलग किया, उनकी रासायनिक जाँच की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि केन्द्रकों में एक ऐसा रासायनिक पदार्थ है जिसके गुण उन सभी यौगिकों से भिन्न थे जो उन दिनों ज्ञात थे जैसे, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा लिपिड। क्योंकि इस नये यौगिक को केन्द्रक में से अलग किया गया था मीशर ने इसे 'न्यूक्लिन' का नाम दिया। बाद में इसी न्यूक्लिन को इसके अम्ल गुणों के कारण न्यूक्लिक अम्ल के नाम से जाना गया। सन् 1940 तक यह मालूम हो गया कि न्यूक्लिक अम्ल दो प्रकार के होते हैं—डी ऑक्सीराइबोस तथा राइबोस। यह अन्तर अलग अलग प्रकार की शर्करा के कारण होता है जो न्यूक्लिक अम्ल में होती है। राइबोन्यूक्लिक अम्ल केन्द्रक द्रव्य तथा कोशिका द्रव्य दोनों में ही पाया जाता है। न्यूक्लिक अम्ल बृहद अणु है तथा न्यूक्लिओटाइड का बहुलक होता है। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड में पाँच कार्बन शर्करा, फॉसफेट तथा प्यूरीन अथवा पायरीमिडिन क्षार (चित्र 15.8) होता है। प्यूरीन तथा पायरीमिडिन नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिक हैं। न्यूक्लिक अम्ल बहुलक या बहुन्यूक्लिओटाइड को जल-अपघटन की क्रिया द्वारा भिन्न-भिन्न घटकों में तोड़ा जा सकता है। पूर्ण जल-अपघटन की क्रिया के उपरान्त प्यूरीन तथा पायरीमिडिन क्षार शर्करा तथा फॉस्फोरिक अम्ल मिलता है। आंशिक जल-अपघटन से छोटे-छोटे बहुन्यूक्लिओटाइड, न्यूक्लिओटाइड तथा न्यूक्लिओसाइड मिलते हैं (चित्र 15.9। एक न्यूक्लिओसाइड में एक नाइट्रोजनी क्षार होता है जो पेन्टोस शर्करा के अणु से लगा रहता है। न्यूक्लिओटाइड न्यूक्लिओसाइड के फॉसफोरिक एस्टर होते हैं। पास पास के न्यूक्लिओटाइड के बन्धन एस्टर के प्रकार के होते हैं जिनमें पास की शर्करा के 5' तथा 3' हाइड्रॉक्सिल हिस्से फॉस्फोरिक अम्ल के साथ द्वि-एस्टर बनाते हैं (चित्र 15.10)। कई न्यूक्लिओटाइड इस प्रकार से जुड़ कर बहुन्यूक्लिओटाइड बनाते हैं।

डी०एन०ए० का न्यूक्लिओटाइड निम्न भागों का बना होता है : डी ऑक्सीराइबोस शर्करा, फॉस्फेट तथा निम्नलिखित चार क्षारों में एक क्षार—एडिनिन, ग्वानिन, साइटोसिन तथा थायमीन। आर० एन० ए० का न्यूक्लिओटाइड राइबोस शर्करा, फॉस्फेट तथा निम्नलिखित चार क्षारों में से एक क्षार—एडिनिन, ग्वानिन, साइटोसिन तथा यूरासिल से बना होता है। न्यूक्लिक अम्लों के पाँच, क्षारों में एडिनिन तथा ग्वानिन प्यूरीन हैं तथा थायमीन, साइटोसिन व यूरासिल पायरीमिडिन। इस तरह आर० एन० ए०, डी० एन० ए० से काफी भिन्न है। इन दोनों की शर्करा के प्रकार में तो भिन्नता है ही साथ ही आर० एन० ए० में थाइमीन के स्थान पर यूरासिल होता है।

सन् 1950 में इरविन चारगाफ ने भिन्न भिन्न उद्गमों से डी० एन० ए० को लेकर इनमें उपस्थित क्षारों की मात्रा का अध्ययन किया (तालिका 15.1)। इस वैज्ञानिक ने बताया कि डी० एन० ए० चाहे किसी भी तरह की कोशिका से प्राप्त किया गया हो, उसमें एडिनिन तथा साइटोसिन क्षार की मोलर मात्रा सदैव बराबर होती है। इस सम्बंध के कारण ऊतकों में प्यूरीन की सांद्रता भी सदैव पायरीमिडिन की सांद्रता के बराबर होती है। किन्तु विभिन्न जीवों से प्राप्त डी० एन० ए० में प्यूरीन तथा पायरीमिडिन की निरपेक्ष मात्रा में विभिन्नता होती है जो कि किसी भी स्पिसीज़ के जीवों के लिए अभिलाक्षणिक होती है। जब एक ही स्पिसीज़ के जीवों के विभिन्न अंगों से डी० एन० ए० लेकर उसका निरीक्षण किया गया तो इसकी संरचना एक समान ही पायी गयी।

विभिन्न जीवों से लिए गए डी०एन०ए०का एक्सकिरण विवर्तन (एक्सरे डिफ्रैक्शन) प्रतिरूप भी विल्किंस फ्रेंकलिन तथा अस्टबरी द्वारा एक समान पाया गया। यह भी कहा गया कि डी० एन० ए० अणु की संरचना रेखाकार व

फास्फेट भाग	शर्करा	नाइट्रोजनी क्षार
		साइटोसीन (C)
		ग्वानीन (G)
		एडेनीन (A)
		थायमीन (T)
		यूरासील (U)
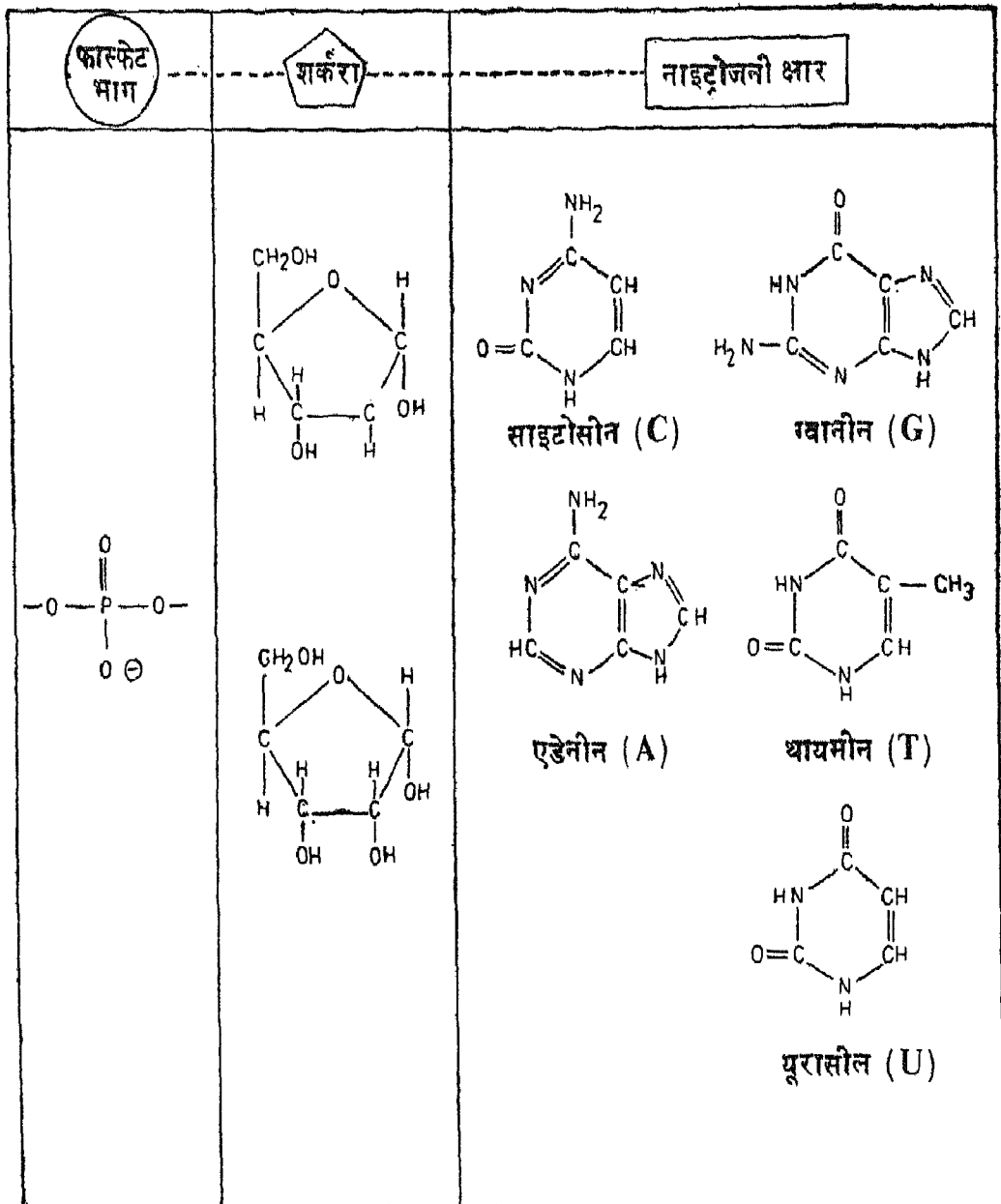
चित्र 15.8 : न्यूक्लिक अम्लों को बनाने वाले बेसों, शर्कराओं तथा फास्फेटों की रासायनिक संरचना ।
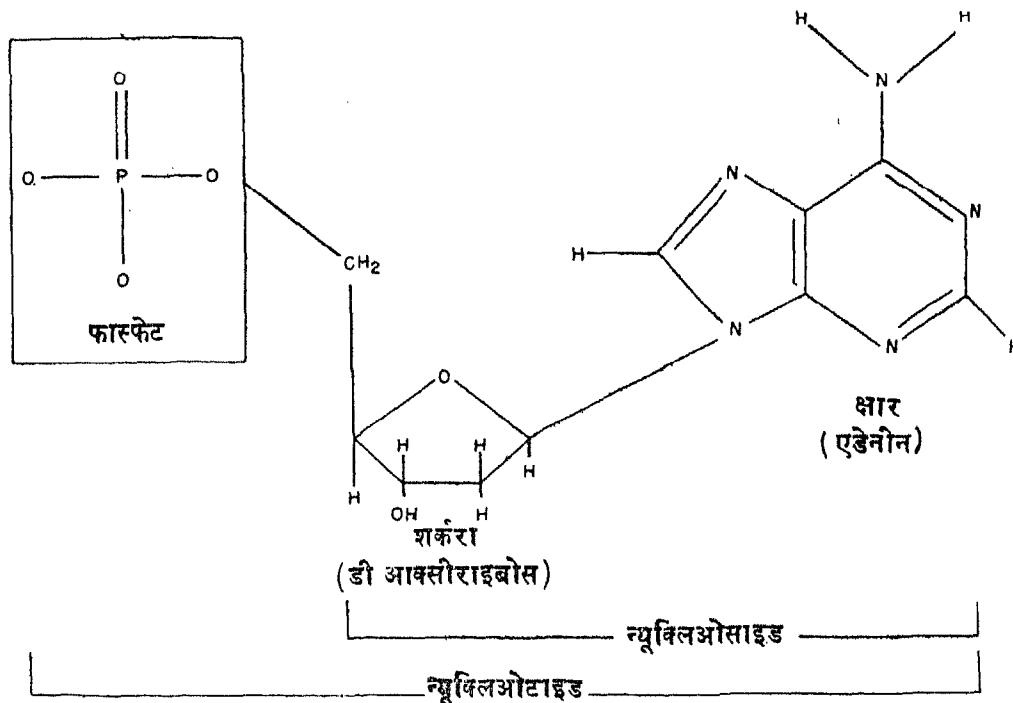
चित्र 15.9 : न्यूक्लिओटाइड तथा न्यूक्लिओसाइड की रासायनिक संरचना ।

तालिका 15.1

भिन्न भिन्न जीवों से प्राप्त डी० एन० ए० में क्षार का संयोजन

डी० एन० ए० का स्रोत	प्यूरीन		पायरमिडिन		प्रतिशत (G+C)	प्रतिशत (A+T)
	एडिनीन (A)	ग्वानीन (G)	साइटोसीन (C)	थायमीन (T)		
ईस्ट	31.3	18.7	17.1	32.9	35.8	64.2
मानव शुक्राणु	31.0	19.1	18.4	31.5	37.5	62.5
सामन शुक्राणु	29.7	20.8	20.4	29.1	41.2	58.8
गेहूँ	27.3	22.7	22.8	27.1	45.5	54.4
जीवाणु ई०कोलाइ	26.0	24.9	25.2	23.9	50.1	49.9
क्षय रोग का जीवाणु	15.1	34.9	35.4	14.6	70.3	29.7
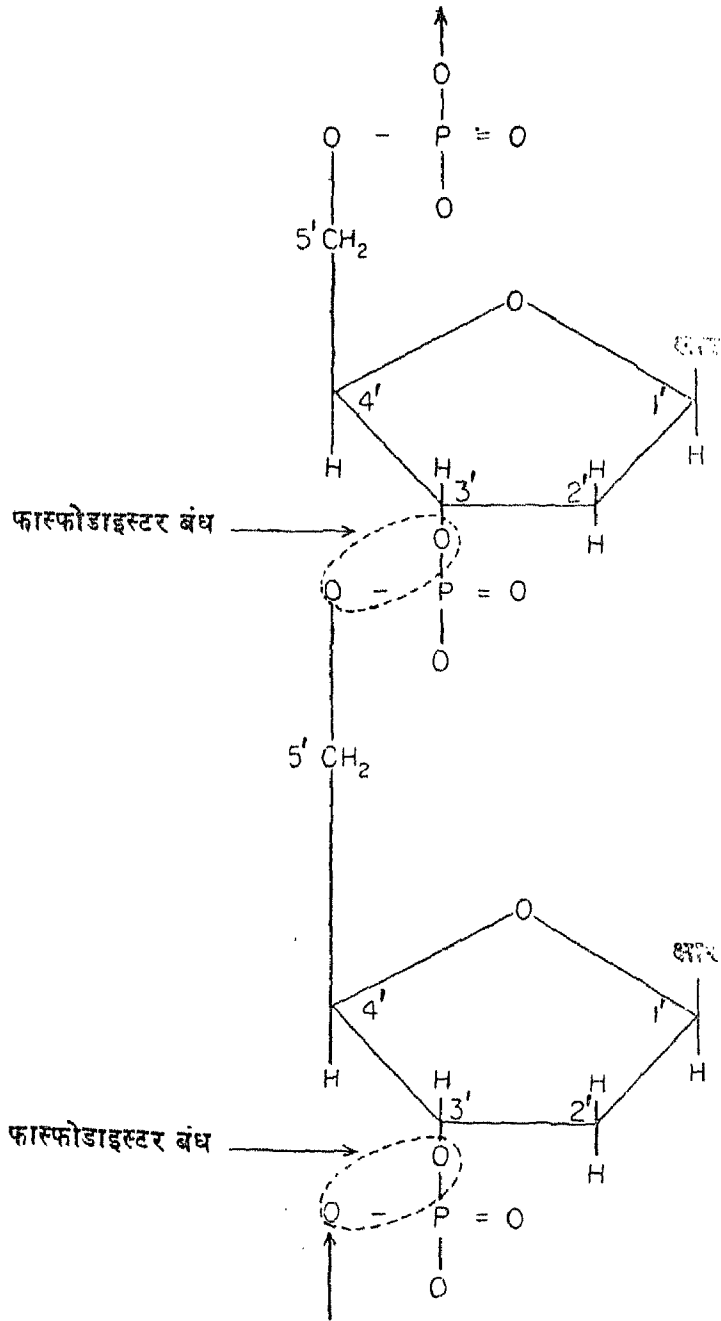
चित्र 15.10 : फास्फोडाइस्टर बंध जो न्यूक्लिओटाइडों को सहलग्न करके बहुन्यूक्लिओटाइड बनाते हैं।

होकर कुंडलित होती है। वाटसन तथा क्रिक ने 1953 में डी० एन० ए० का एक मॉडल बनाया (चित्र 15.11) जो डी० एन० ए० के रासायनिक, भौतिक तथा जैव
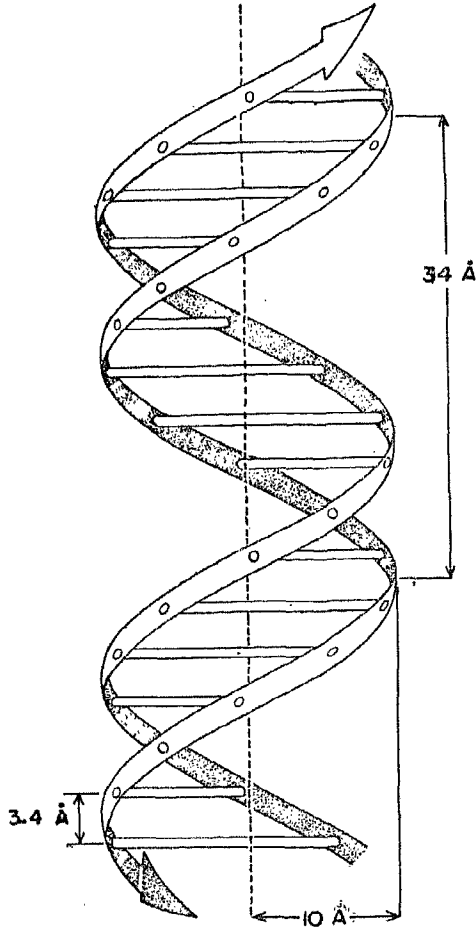
चित्र 15.11 : डी. एन. ए. का द्विकुंडलिनी मॉडल। कुंडलिनी की चौड़ाई (व्यास) 10Å है तथा कुंडलिनी का एक घेरा 34Å में पूरा होता है जिसमें दस बेस युग्म होते हैं।

गुणों को दर्शाता है। इन वैज्ञानिकों के विचार से डी० एन० ए० का प्रत्येक अणु दो बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखलाओं से बना होता है जो एक कुंडली के रूप में एक अक्ष के चारों तरफ कुंडलित रहता है।

ये दोनों शृंखलायें अपनी स्थिति में हाइड्रोजन बंधों के कारण रहती हैं जो युग्मित क्षार के बीच में होते हैं। एक बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखला की एडिनिन दूसरी ऐसी ही शृंखला के थायमीन के साथ युग्मित होती है। यदि एक बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखला में क्षार का क्रम मालूम हो तो दूसरी शृंखला का क्षार क्रम आसानी से पता लगाया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि डी० एन० ए० के दो बहुन्यूक्लिओटाइड एक दूसरे के पूरक होते हैं। शर्करा तथा फॉस्फेट अणु एकांतर क्रम से लगे रहते हैं और इस तरह प्रत्येक बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखला की रीढ़ बनाते हैं। डी० एन० ए० की संरचना विधि पूर्वक बताने के हेतु वाटसन, क्रिक तथा विलकिन्स को 1962 का मेडिसिन का नोबल पुरस्कार दिया गया। आर० एन० ए०, डी० एन० ए० से काफी भिन्न है। आर० एन० ए० में केवल एक ही शृंखला होती है। यह राइबोन्यूक्लिओटाइड की एक बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखला है।

केन्द्रक के अधिक से अधिक डी० एन० ए० गुणसूत्रों के अन्दर होते हैं। वास्तव में गुणसूत्रों में लगभग 40% डी० एन० ए०, 50% हिस्टोन व, दूसरे प्रोटीन, 1.5% आर० एन० ए० तथा 8.5% अम्लीय प्रोटीन होते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में डी० एन० ए० की द्विकुंडलित संरचना वलित तथा कुंडलित रहती है तथा हिस्टोन के साथ सम्बन्धित रहते हुए कुछ छड़ की भाँति संरचना बनाती है। गुणसूत्र के कुंडलन तथा संघनन के आधार पर गुणसूत्र छोटे और मोटे अथवा लम्बे और पतले दिखायी पड़ते हैं। विभाजन की अन्तरावस्था के दौरान गुणसूत्र इतने लम्बे हो जाते हैं कि हम उन्हें एक साधारण सूक्ष्मदर्शी से देख तक नहीं सकते। कोशिका विभाजन की मध्यावस्था में गुणसूत्र सबसे ज्यादा छोटे होते हैं। सूक्ष्मदर्शी के द्वारा अध्ययन करने से मालूम होता है कि गुणसूत्रों में समरूप आधात्री अथवा मेट्रिक्स होता है जिसमें दो धागे के समान पतली संरचनायें होती हैं जिन्हें वर्णसूत्र कहते हैं। एक गुणसूत्र के दो वर्णसूत्र एक दूसरे से गुणसूत्रबिन्दु पर जुड़े रहते हैं। गुणसूत्रबिन्दु को प्रथम संकीर्णन भी कहते हैं (चित्र 15.12)। कुछ गुणसूत्रों में द्वितीय संकीर्णन भी होता है (चित्र 15.5) जो केन्द्रिका संघटक के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसी स्थान पर

कोशिका विभाजन के दौरान केन्द्रिका प्रगट तथा लुप्त होती है।
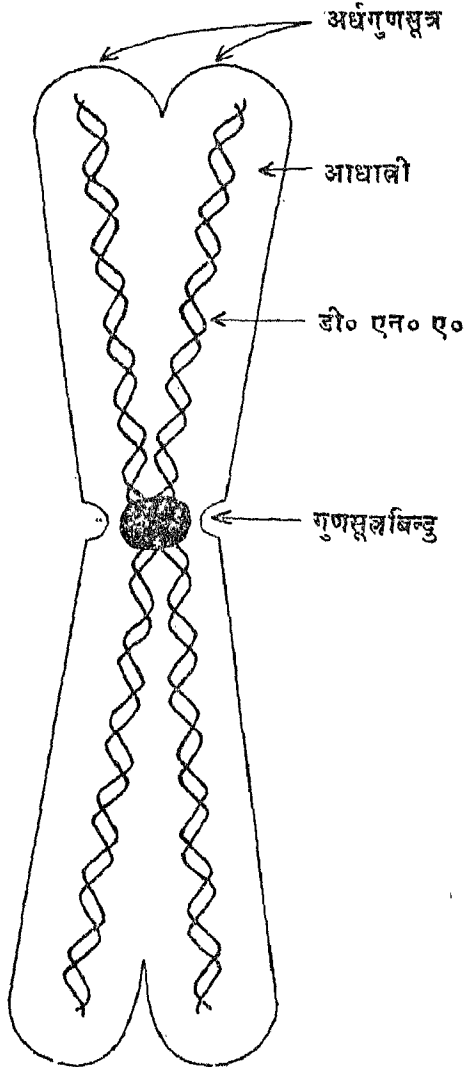
चित्र 15.12 : गुणसूत्र के विभिन्न भागों का आरेखी निरूपण ।

यद्यपि इस शताब्दी के आरम्भ में ही यह ज्ञात हो चुका था कि गुणसूत्र आनुवंशिक गुणों के वाहक हैं तथापि डी०एन०ए० का आनुवंशिक गुणों से संबंधित कार्य 1952 में उन प्रयोगों के दौरान पता चला जो 1920 के बाद किये गये थे। एक ब्रिटिश डाक्टर एस. एफ. ग्रिफिथ ने **डिप्लोकॉकस न्यूमोनी** (न्यूमोकोकस) के ऊपर कुछ प्रयोग किये। यह जीवाणु न्यूमोनिया फैलाता है। न्यूमोकोकस जीवाणु दो प्रकार के होते हैं : चिकने या स्मूथ (S) तथा खुरदुरे या रफ (R)। (S) प्रकार की कोशिकाओं में प्रत्येक युगल के ऊपर एक कवच होता है। ये कोशिकायें उग्र होती हैं तथा न्यूमोनिया उत्पन्न करती हैं। इसके विपरीत 'R' प्रकार की कोशिकाओं में कवच नहीं होता। वे अनुग्र होती हैं और किसी तरह का रोग या नुकसान नहीं पहुँचातीं। जब चूहों में 'S' प्रकार की कोशिकाओं को इनजेक्ट कर दिया जाय तो चूहों को न्यूमोनिया हो जाता है। तदुपरान्त मृत्यु। ग्रिफिथ ने 'S' प्रकार की कोशिकाओं को अधिक तापक्रम से मार दिया और फिर उन्हें चूहों में इनजेक्ट कर दिया। इस प्रयोग में ना तो चूहों को न्यूमोनिया हुआ और ना ही चूहों की मृत्यु हुई। एक दूसरे प्रयोग में ग्रिफिथ ने चूहों को अधिक तापक्रम से मारी हुई 'S' कोशिकाओं तथा 'R' प्रकार की जीवित कोशिकाओं के मिश्रण का इन्जेक्शन दिया। इन चूहों को न्यूमोनिया हो गया और अंत में वे मर गये (चित्र 15.13)। मृत्यु के पश्चात शरीर-परीक्षा से मालूम हुआ कि मृत्यु 'S' प्रकार की जीवित उग्र कोशिकाओं के कारण हुई थी।

इस प्रयोग से ग्रिफिथ ने सारांश निकाला कि यह एक जीवित किन्तु अनुग्र 'R' जीवाणु था जो कि उग्र 'S' तथा कैप्सूलयुक्त जीवाणु के रूप में परिवर्तित हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि निर्जीव 'S' प्रकार के जीवाणुओं की उग्रता जीवित 'R' प्रकार के जीवाणुओं में चली गई। कुछ वर्षों के बाद दूसरे वैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि यदि अधिक तापक्रम से 'S' प्रकार के जीवाणु 'R' प्रकार के जीवाणुओं के साथ उत्पत्ति माध्यम में रख दिये जायें तो 'S' प्रकार के जीवाणुओं की उग्रता 'R प्रकार के जीवाणुओं तक पहुँच जाती है। इससे यह सिद्ध हो गया कि एक तरह के जीवाणुओं को दूसरी तरह के जीवाणुओं में बदलने में चूहों की कोशिकाओं का कोई सहयोग नहीं होता। एक दूसरे वर्ग के वैज्ञानिकों ने और भी आगे कुछ प्रयोग किये। उन्होंने 'S' प्रकार की कोशिकाओं को उगाया और उन्हें अधिक ताप देकर मारा और उनका सार निकाला। यह सार भी 'R' प्रकार की कोशिकाओं को 'S' प्रकार की कोशिकाओं में परिवर्तित करने की क्षमता रखता था। इससे यह सिद्ध हो गया कि पूरी कोशिका नहीं बल्कि कोशिका का कोई एक हिस्सा इस
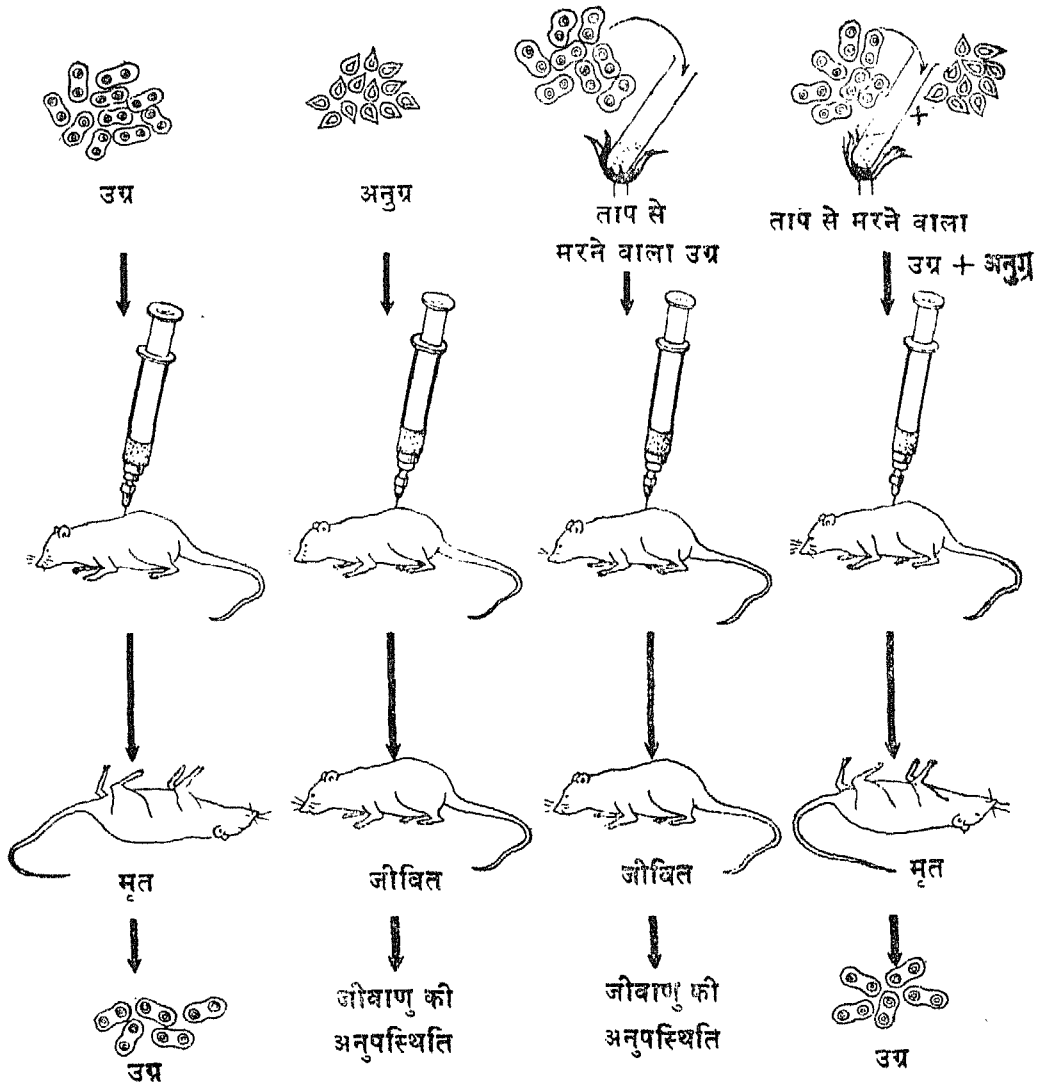
चित्र 15.13 : डिप्लोकॉकश के रूपान्तरण पर ग्रिफिथ द्वारा किए गए प्रयोगों का आरेखी सारांश।

परिवर्तन के लिये उत्तरदायी है।

ओ. टी. एवेरी, सी. मेकलोड तथा मेक्कार्टी (1944) ने न्यूमोकोकाई के सार में परिवर्तित होने वाले यौगिकों के विषय में जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि वह फैक्टर जो अनुग्र 'R' प्रकार के जीवाणुओं को उग्र 'S' प्रकार के जीवाणुओं में परिवर्तित कर देता है, वह डी० एन० ए० है। उन्होंने इस तथ्य से लाभ उठाया कि डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिएज नामक एंजाइम डी० एन० ए० को नष्ट कर देता है। इन तीन वैज्ञानिकों ने 'S' प्रकार के उग्र प्रकार के जीवाणुओं के सार को प्रोटीन, डी० एन० ए० तथा कार्बोहाइड्रेट के वर्गों में अलग अलग किया। इनमें से हर एक वर्ग को जीवित 'R' प्रकार की कोशिकाओं के साथ उत्पत्ति माध्यम में मिला कर कुछ देर के लिए छोड़ दिया। उन्होने देखा कि जब उग्र

जीवाणु से लिये गये प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट का प्रयोग किया गया तो केवल 'S' प्रकार की कोशिकाएं बन गईं। किन्तु जब 'R' प्रकार की कोशिकाओं को उग्र कोशिकाओं से निकाले हुए डी० एन० ए० से मिला दिया तो परिणाम यह हुआ कि दोनों ही 'R' तथा 'S' प्रकार की कोशिकायें बन गईं। जब इस प्रकार के डी० एन० ए० को डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिएज, जो डी० एन० ए० को नष्ट करता है, नामक एंजाइम के साथ मिलाया और फिर अनुग्र प्रकार की कोशिकाओं के साथ मिलाया तो इसके परिणामस्वरूप केवल R' प्रकार की कोशिकायें पैदा हुईं। इन सारे परिणामों से यह भली भांति सिद्ध हो गया कि उग्र न्यूमोकोकाई का डी० एन० ए० 'R' प्रकार की कोशिकाओं को 'S' प्रकार की कोशिकाओं में परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। इन परिवर्तित प्रयोगों से यह मालूम हुआ कि डी० एन० ए० एक आनुवंशिक पदार्थ है तथा यदि कोशिकाओं को निर्जीव करने के लिए तापक्रम बढ़ाया भी जाये तो यह नष्ट नहीं होता। डी० एन० ए० एक आनुवंशिक पदार्थ है, इसकी जानकारी बहुत प्रकार के तरीकों से हो चुकी है। किन्तु इन परीक्षणों में सबसे अच्छा प्रयोग बैक्टीरिओफाज (एक विषाणु जो जीवाणु को संक्रमित करता रहता है) के साथ हुआ था।

बैक्टीरिओफाज का प्रजनन जीवाणु कोशिका के अन्दर ही हो जाता है और अंत में यह कोशिका ही नष्ट हो जाती है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से यह ज्ञात हुआ कि बैक्टीरिओफाज का आन्तरिक भाग तो जीवाणु कोशिका में चला जाता है तथा प्रोटीन आवरण बाहर ही रह जाता है। प्रोटीन आवरण को संक्रामित जीवाणु से आसानी से हिला कर तथा अपकेन्द्रीकरण द्वारा अलग किया जा सकता है। चूंकि प्रोटीन आवरण हल्का होता है, यह सतह पर आ जाता है तथा संक्रमित जीवाणु से अपकेन्द्रण नलिका के तले में बैठ जाता है। बैक्टीरिओफाज T_2 जो टैडपोल की शक्ल का होता है तथा इ० कोलाइ नामक जीवाणु को संक्रमित करता है, में डी० एन० ए० कोर तथा प्रोटीन आवरण होता है। हर्षी तथा चेज़ नामक वैज्ञानिकों ने यह जानने का प्रयत्न किया कि संक्रमण के समय जीवाणु के अन्दर केवल डी० एन० ए० इनजेक्ट होता है या प्रोटीन भी। उन्होंने इ० कोलाइ को ऐसे माध्यम में उगाया जिसमें S^{35} नामक गंधक का रेडियमधर्मी समस्थानिक था। जीवाणुओं में यह रेडियधर्मी गंधक, गंधक युक्त एमिनो अम्ल (सिस्टिन तथा मीथायोनीन) में जाकर बैठ गई जो कि प्रोटीन बनाने के लिए प्रयोग होती थी। रेडियधर्मी गंधक वाले जीवाणुओं को फिर T_2 फाज से संक्रमित किया। फाज S^{35} से चिह्नित हो गया क्योंकि फाज जीवाणु की प्रोटीन का प्रयोग फाज बनाने में करता है। ऐसे फाज का इस्तेमाल सामान्य जीवाणुओं को संक्रमित करने में किया गया। संक्रमण के बाद प्रोटीन आवरण और जीवाणु कोशिकाओं को अलग अलग कर उनकी रेडियधर्मिता को नापा। हर्षी तथा चेज को पता लगा कि सारी रेडियधर्मिता सतही प्रोटीन आवरण में थी, जीवाणु कोशिका में नहीं। इससे मालूम हुआ कि जीवाणु कोशिका में संक्रमण के दौरान फाज का प्रोटीन नहीं पहुँचा था। इसी प्रयोग को दोबारा P^{32}—रेडियधर्मी फॉसफोरस का प्रयोग कर के किया जो प्रोटीन में नहीं अपितु डी० एन० ए० में एकत्रित होता है। हर्षी तथा चेज को मालूम हुआ कि सारी रेडियधर्मिता प्रोटीन आवरण के स्थान पर जीवाणु के साथ आ गई थी (चित्र 15.14)। इन प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया कि फाज का सारा डी० एन० ए० ही जीवाणु के अन्दर आ जाता है। इससे भी अधिक आवश्यक खोज यह थी कि वे जीवाणु जिनके अन्दर डी० एन०ए० इनजेक्ट किया गया था तथा जिन्हें फाज के आवरण प्रोटीन से अलग कर दिया गया था, वे भी बैक्टीरिओफाज की एक नई फसल पैदा कर सकते थे। चूँकि संक्रमण तथा संतति बैक्टीरिओफाज के बीच इनजेक्ट किया हुआ बंध डी० एन० ए० ही था इसलिए T_2 के लिए आनुवंशिक पदार्थ प्रोटीन नहीं बल्कि डी० एन० ए० है। अब हम यह पक्की तौर पर जानते हैं कि डी० एन० ए० समस्त जीवों में आनुवंशिक पदार्थ है। केन्द्रक तथा गुणसूत्रों में पाया जाने वाला डी० एन० ए० आनुवंशिकता का जिम्मेदार है। उन जीवों में जिनमें डी० एन० ए० नहीं होता, आर० एन० ए०, डी० एन० ए० के कार्य को करता है, जैसा कि टोबैको मोसइक विषाणु में होता है। अन्यथा यह डी० एन० ए० की आनुवंशिक सूचनाओं को आगे बढ़ाता है।
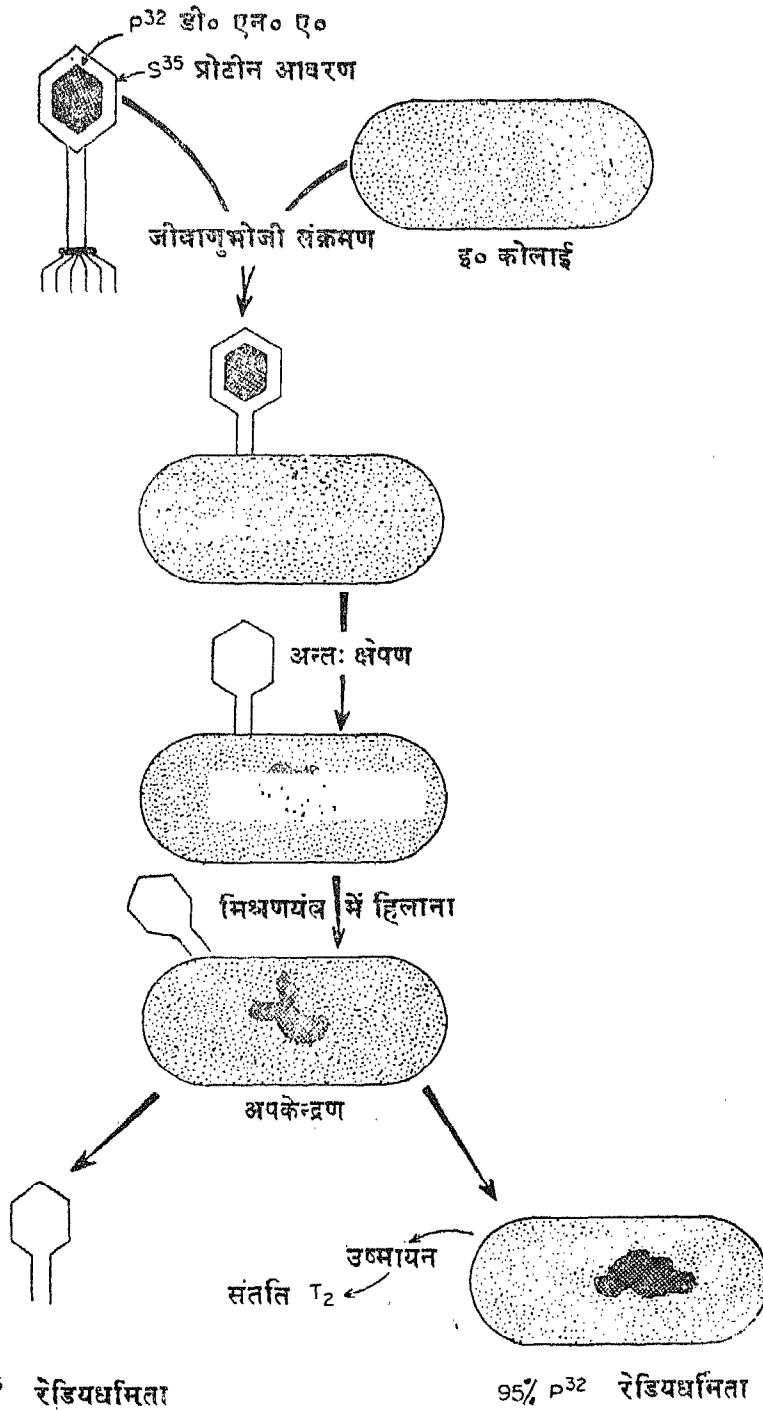
चित्र 15.14 : प्रायोगिक चित्र यह प्रमाणित करने के लिए कि बैक्टीरिओफाज टी$_2$ में आनुवंशिक जानकारी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में इसके डी. एन. ए. के द्वारा जाती है।

प्रश्न

1. "केन्द्रक आनुवंशिक सूचनायें रखता है"। इस कथन की पुष्टि कम से कम दो प्रमाण देकर करो।

2. एसिटेबुलेरिया के शिखर का आकार, केन्द्रक के प्रकार से निर्धारित होता है या कोशिका द्रव्य के प्रकार से ?

3. केन्द्रकीय छिद्रों का क्या कार्य है ?

4. असीमकेन्द्रकी तथा ससीमकेन्द्रकी कोशिका में क्या भिन्नता है ?

5. गुणसूत्र तथा लक्षणों में व्यवहार की समांतरता का क्या मतलब है ? हम इससे क्या सारांश निकालते हैं ?

6. गुणसूत्रों के रासायनिक अवयव क्या हैं तथा उनमें से कौनसा अवयव आनुवंशिक सूचनाओं को वहन करता है ?

7. निम्नलिखित में क्या संबंध हैं : क्षार, शर्करा, फॉस्फेट, न्यूक्लिओसाइड तथा न्यूक्लिओटाइड ?

8. यदि डी० एन० ए० की एक शृंखला में क्षार क्रम CAT TAG CAT CAT GAC हो तो (क) डी० एन० ए० के पूरक शृंखला का, (ख) पूरक आर० एन० ए० शृंखला का क्षार क्रम क्या होगा ?

9. वे कौन से प्रयोग थे जिनसे यह सारांश निकला कि डी० एन० ए० आनुवंशिकता का रासायनिक आधार है ?

10. क्या आर० एन० ए० आनुवंशिक पदार्थ की भाँति कार्य कर सकता है ?

11. वह कौन सा रसायन है जो रूपान्तरण करता है ?

12. बैक्टीरिओफाज जीवाणु को न्यूक्लिक अम्ल इनजैक्ट कर के या प्रोटीन आवरण इनजैक्ट कर के संक्रमित करता है, हम इसे कैसे बता सकते हैं ?

अध्याय 16

न्यूक्लिक अम्लों का कार्य सम्पादन

जीव जन्तुओं के लिए प्रजनन, यानी अपने वर्ग के जीवों की संख्या बढ़ाना, बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह केवल कोशिका विभाजन से ही सम्भव है। यह प्रक्रम बहुत ही संक्षिप्त है तथा जनक कोशिका और पुत्री कोशिका में एक समानता संधारण करता है। किसी भी कोशिका तथा जीव के गुण कोशिका की केन्द्रिकाओं, गुण-सूत्रों तथा डी० एन० ए० के द्वारा संचालित होते हैं। इस लिए यह आवश्यक हो जाता है कि कोशिका विभाजन के दौरान केन्द्रक, उसके गुणसूत्र तथा डी० एन० ए० अपनी प्रतिलिपि परिशुद्धता तथा यथार्थता से बना लें। अपनी परिशुद्ध प्रतिलिपि बनाने के अलावा परम्परागत पदार्थ का एक और भी कार्य है और वह है कोशिका और अंत में पूरे जीव के ही विभिन्न उपापचयी कार्यों को दिशा देना तथा संचालित करना। केवल यह ही स्पिसीज़ की निरन्तरता रखता है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी दर पीढ़ी अपने गुणों को संधारणित करता है। डी० एन० ए० यह दोनों ही कार्य पुनरावृत्ति द्वारा तथा इसके क्षार क्रम में उपस्थित आनुवंशिक सूचनाओं की अभिव्यक्ति करते हुए करता है।

डी० एन० ए० की पुनरावृत्ति

डी० एन० ए० की संरचना का मॉडल बनाते हुए, वॉटसन तथा क्रिक ने डी० एन० ए० की पुनरावृत्ति की क्रियाविधि की परिकल्पना की। उन्होंने बताया कि पुनरा-वृत्ति के समय डी० एन० ए० की दो पूरक लड़ें (स्ट्राण्ड) खुल जाती हैं तथा एक सिरे से ज़िपर की भाँति अलग-अलग होने लगती हैं। इस प्रक्रम के दौरान बेस के बीच के कमजोर सहसंयोजकता हाइड्रोजन बंध टूट जाते हैं। अलग हुई अकेली लड़ (स्ट्राण्ड) अब एक नई लड़ को बनाने के हेतु एक फर्मे की तरह काम करती है। (चित्र 16.1) । परिणामस्वरूप दो पुत्री डी० एन० ए० द्विक कुंडलिनियाँ बन जाती हैं जो एक दूसरे के समान होती हैं तथा जनक अणु के भी समान होती हैं। इस प्रकार की पुनरावृत्ति के कारण नई बनी हुई डी० एन० ए० कुंडलिनियाँ आधी नई तथा आधी पुरानी होंगी। दूसरे शब्दों में पुनरावृत्ति के दौरान आधा डी० एन० ए० अणु संरक्षणित हो जाता है तथा इसका पूरक आधा भाग संरक्षणित आधे भाग के बेस क्रम के अनुसार फिर से बन जाता है। इसलिए इस प्रकार की पुनरावृत्ति को सामि-संरक्षी कहा गया है तथा इसे प्रयोगों द्वारा सत्य भी सिद्ध किया गया है।

शिल्प विज्ञान के कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट के मैसिल-सन तथा स्टॉल (1958) ने पुनरावृत्ति की सामिसंरक्षी प्रणाली सिद्ध की थी। उन्होंने ई० कोलाई को कई पीढ़ियों तक एक ऐसे उत्पत्ति माध्यम में उगाया जिसमें नाइट्रोजन उदगम में केवल भारी समस्थानिक N^{15} थी। इसके परिणामस्वरूप जीवाणु का सारा डी० एन० ए० N^{15} से चिन्हित हो गया। इसके पश्चात् नाइट्रोजन उद्गम को N^{14} में बदल दिया जो कि नाइट्रोजन का एक सामान्य अरेडियधर्मी समस्थानिक है, जीवाणुओं को उगने दिया। थोड़ी-थोड़ी देर बाद कोशिकाओं के नमूने अलग कर लिये,
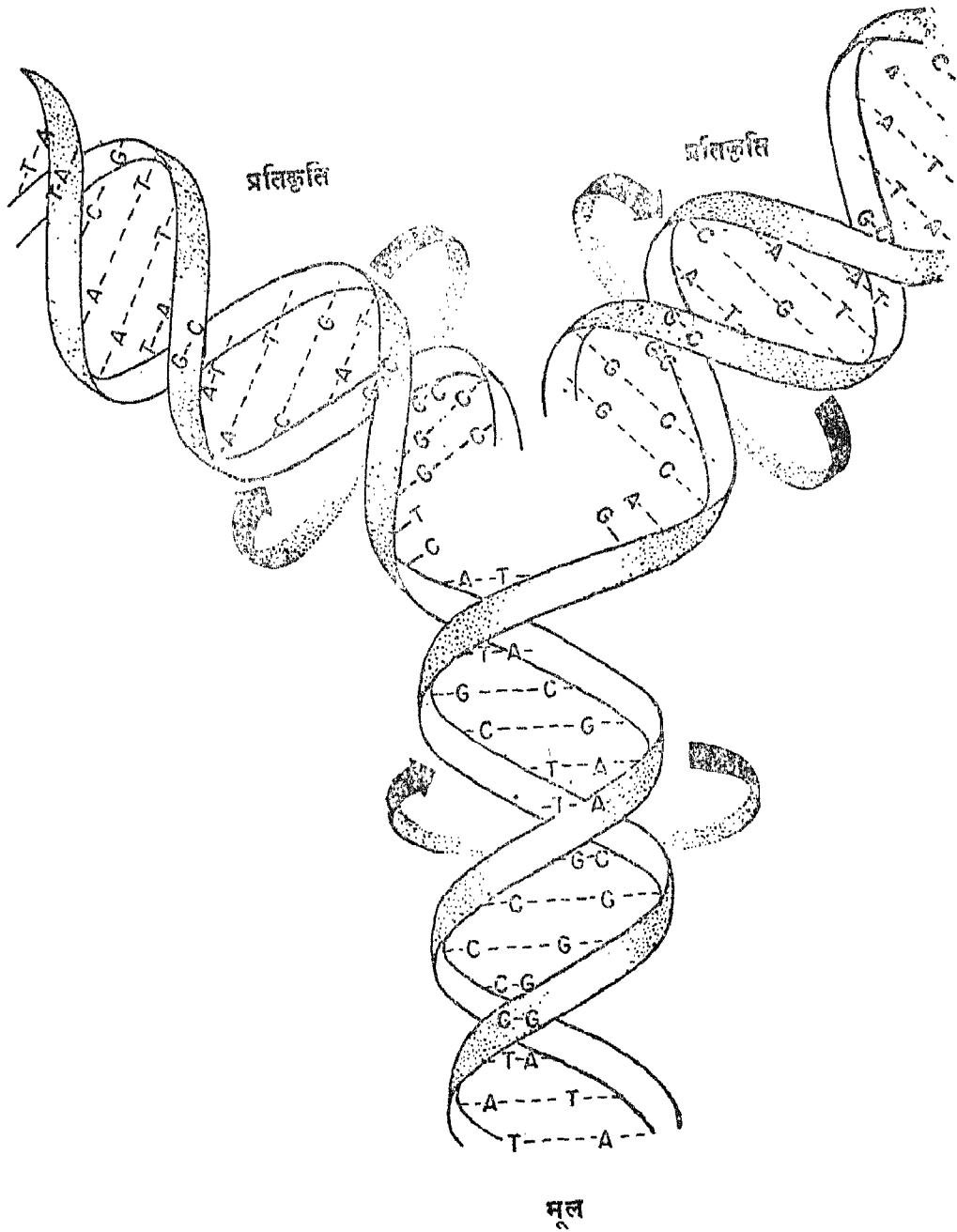
चित्र 16.1 : वॉटसन तथा क्रिक द्वारा दिया गया डी. एन. ए. पुनरावृत्ति का सामिसंरक्षी तरीका ।

उनमें से डी० एन० ए० के सार को निकाला तथा विश्लेषण इस प्रकार से किया कि डी० एन० ए० लड़ों में रेडियधर्मिता का वितरण मालूम हो सके। इस प्रयोग से विदित हुआ कि जब ऐसा डी० एन० ए० जिसकी दो लड़ें हैं तथा दोनों ही लड़ों में N^{15} है, को एक बार N^{15} की अनुपस्थिति (यानी N^{14} की उपस्थिति) में पुनरावृत्ति की अनुमति दी तो परिणाम यह हुआ कि पुत्री डी० एन० ए० की एक लड़ रेडियधर्मी थी तथा दूसरी अरेडियधर्मी थी। दूसरी पुनरावृत्ति के दौरान रेडियधर्मी तथा अरेडियधर्मी लड़ें अलग-अलग हो गईं तथा और भी अरेडियमधर्मी लड़ों को बनाने के लिए फर्मे की भाँति उपयोग होने लगीं। डी० एन० ए० के दो पुत्री अणुओं में से एक तो आधा रेडियधर्मी तथा आधा अरेडियधर्मी रहा जबकि दूसरा पूर्ण रूप से अरेडियधर्मी था (चित्र 16.2)। यह जैव रासायनिक प्रमाण, कुछ वर्षों बाद ई० कोलाई में होते हुए डी० एन० ए० के द्विगुणन के अध्ययन से भी प्रमाणित हो गया।
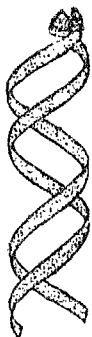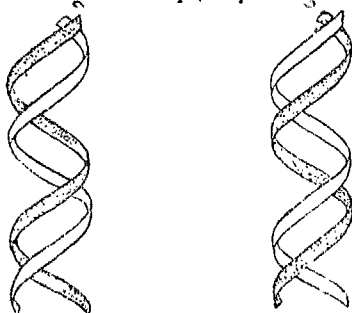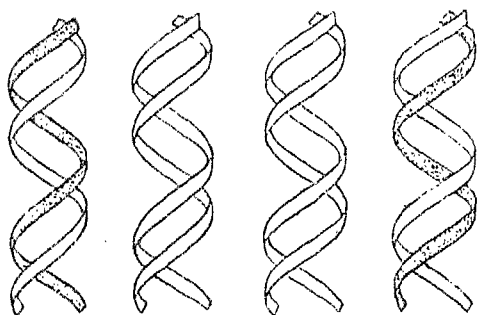
चित्र 16.2 : सामिसंरक्षी पुनरावृत्ति के परिणामस्वरूप रेडियधर्मिता का वितरण। रेडियधर्मी लड़ों को छायामय आरेखन से तथा अरेडियधर्मी लड़ों को छायारहित आरेखन से दिखाया गया है।

डी० एन० ए० गुणसूत्रों में होता है। इसलिए गुणसूत्रों को भी सामिसंरक्षी पुनरावृत्ति दर्शानी चाहिए। वास्तव में गुणसूत्रों की सामिसंरक्षी पुनरावृत्ति टेलर नामक वैज्ञानिक ने 1957 में दिखाई थी। किन्तु इस विशेषता को बहुत दिनों तक महसूस नहीं किया जा सका क्योंकि तब तक गुणसूत्रों में डी० एन० ए० के संघटन का ज्ञान नहीं था। टेलर ने थायमीन (डी० एन० ए० का बेस) को H^3 से चिन्हित किया। H^3 एक हाइड्रोजन का रेडियधर्मी समस्थानिक है। इस थायमीन को विभाजित होती हुई चौड़ी सेम की जड़ की कोशिकाओं से मिला दिया। यह रेडियधर्मी बेस नये बने हुए गुणसूत्रों के भागों में समावेशित हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने रेडियधर्मी थायमीन को अरेडियधर्मी थायमीन से बदल दिया तथा कोशिकाओं में वृद्धि तथा विभाजन होने दिया। कोशिका विज्ञान के अध्ययन से मालूम हुआ कि आरम्भ में तो पूर्ण गुणसूत्र ही चिन्हित हो गया किन्तु अरेडियधर्मी थायमीन की उपस्थिति में होते हुए द्विवक विभाजन के दौरान, रेडियधर्मिता केवल आधे गुणसूत्र में रह गई। चौड़ी सेम के विभाजित होते हुए गुणसूत्रों में रेडियधर्मिता के वितरण का प्रतिरूप तथा ई० कोलाई में डी०एन०ए० की पुनरावृत्ति के दौरान रेडियधर्मिता के वितरण का प्रतिरूप एक समान ही था। यदि हम कल्पना करें कि प्रत्येक गुणसूत्र दो लड़ों वाले डी० एन० ए० से बना है तो गुणसूत्रों की सामिसंरक्षी पुनरावृत्ति की चित्र 16.3 की भाँति कल्पना कर सकते हैं।

डी० एन० ए० की पुनरावृत्ति की अणु क्रियाविधि
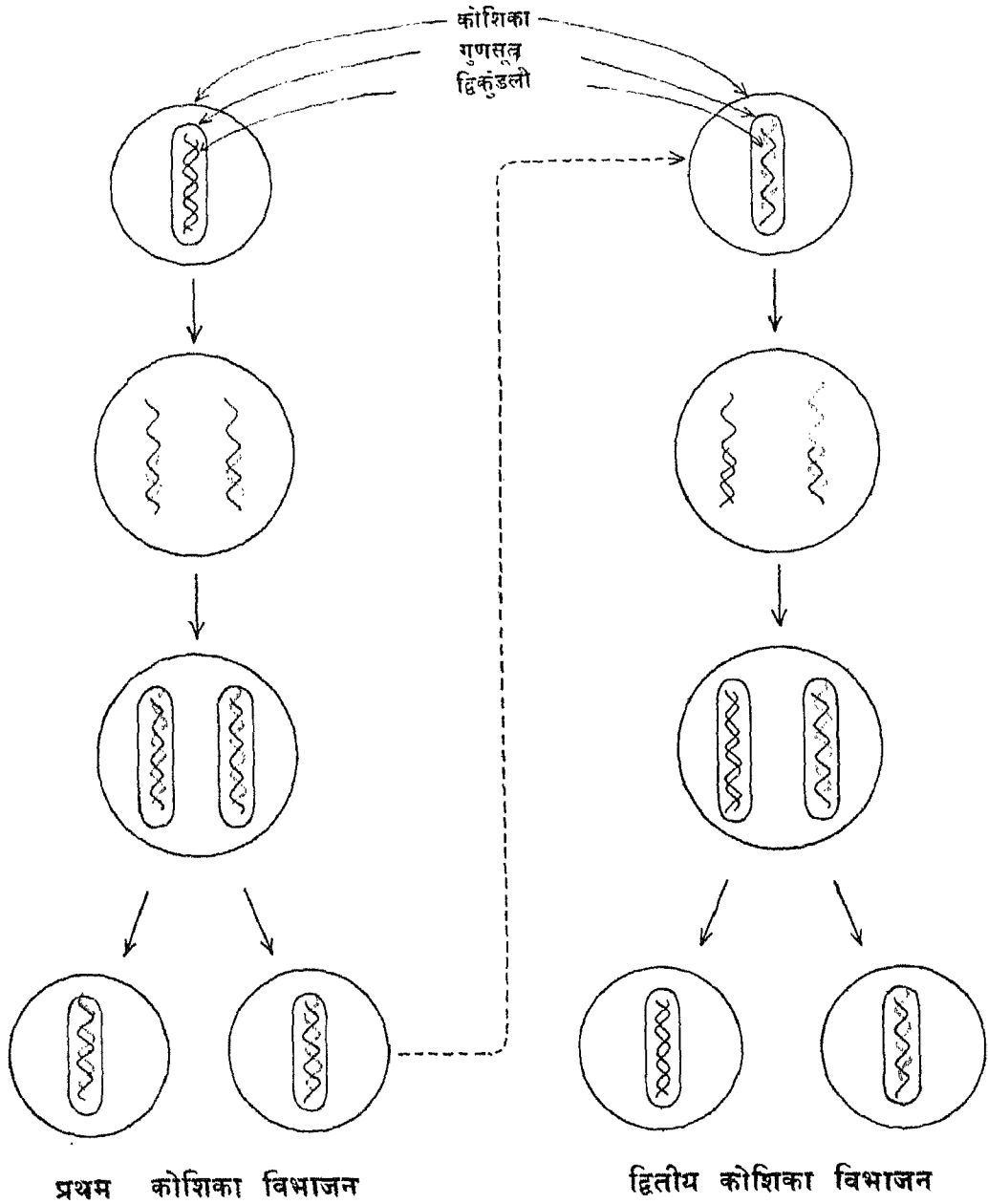
चित्र 16.3 : टेलर द्वारा किए गए गुणसूत्र द्विगुणन के प्रयोगों का सारांश। प्रथम कोशिका विभाजन रेडियमधर्मी थायमीन की उपस्थिति में हुआ जिसके कारण समस्त गुणसूत्र रेडियधर्मी हो गए। रेडियधर्मी थायमीन को द्वितीय कोशिका विभाजन के दौरान हटा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप रेडियधर्मिता केवल आधे गुणसूत्रों में रह गई। काले रंग से दिखाई गई डी. एन. ए. की लड़ें अरेडियधर्मी हैं तथा रंगीन डी. एन. ए. की लड़ें रेडियमधर्मी हैं।

पर्याप्त रूप से समझी जा चुकी है तथा इसे परखनली में भी किया जा सकता है। एक लड़ वाला डी० एन० ए० अपनी पूरक लड़ बनाने के लिए फर्मे की तरह कार्य करता है। ग्वानीन केवल साइटोसिन के साथ युग्म बनाते हैं तथा थायमीन केवल एडिनिन के साथ युग्म बनाते हैं। इसलिए फर्मे के ऊपर जो बेसों का क्रम है वह नई बनी हुई लड़ में बेसों के क्रम को तय करता है। एक बार न्यूक्लिओटाइड ठीक से क्रमबद्ध हो जायें तो वे एक दूसरे से डी० एन० ए० पोलिमिरेज नामक एंजाइम के द्वारा जोड़ दिये जाते हैं। यह भी देखा गया है कि एक समय में डी० एन० ए० छोटे छोटे खण्डों के रूप में बनता है। बाद में यही खण्ड लाइगेज नामक एंजाइम के कारण एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और डी० एन० ए० की लम्बी लड़ें बनाते हैं। एक जीवित कोशिका में डी० एन० ए० की पुनरावृत्ति बहुत ही परिशुद्धता तथा गति के साथ होती है।

आनुवंशिक सूचनाओं का संचारण

डी० एन० ए० सब जैव सूचनाओं का भण्डार है। इसके पास कोशिका के सभी दूसरे अणु बनाने के अनुदेश होते हैं। अधिकतर कोशिकाओं में यह केन्द्रक के अन्दर ही रहते हैं। किन्तु अधिक से अधिक कोशिका क्रियाएँ कोशिका द्रव्य में होती हैं। इसलिए तीन प्रश्न उठते हैं : (क) डी० एन० ए० में किस भाषा में आनुवंशिक सूचनायें लिखी होती हैं? (ख) यह सूचना किस प्रकार डी० एन० ए० से कोशिका द्रव्य तक पहुँचती है ? (ग) किस प्रकार से यह सूचना व्यक्त की जाती है ?

कोशिका की समस्त उपापचयी क्रियायें प्रोटीनरूपी एंजाइम से उत्प्रेरित होती हैं। कुछ प्रोटीन तो कोशिकांग के लाक्षणिक घटक हैं। प्रोटीन जैसे न्यूक्लिक अम्ल बृहत अणु हैं। वे बहुत सारे एमिनो अम्लों के सिरे से सिरे के जुड़ने से बने हैं। ऐसे बीस एमिनो अम्ल हैं जो प्रोटीन की बहुपेप्टाइड शृंखला का क्रम बनाते हैं। (एमिनो अम्लों की शृंखला को बहुपेप्टाइड शृंखला कहते हैं क्योंकि प्रत्येक अम्ल अपने पड़ोसी अम्ल के साथ पेप्टाइड बंध से बंधित रहता है) बहुपेप्टाइड में एमीनो अम्लों का क्रम डी०एन०ए० खण्ड में बेसों के क्रम से तय होता है। एक प्रोटीन में एक या एक से अधिक बहुपेप्टाइड शृंखलायें हो सकती हैं। हीमोग्लोबिन एक ऐसा प्रोटीन है जिसमें चार बहुपेप्टाइड शृंखलायें होती हैं—दो एक तरह की तथा दो दूसरे प्रकार की। लाइसोजाइम केवल एक बहुपेप्टाइड शृंखला का बना होता है।

प्रोटीन का संश्लेषण कोशिका द्रव्य में होता है तथा विभिन्न प्रकार के आर० एन० ए० अणु इसमें संयुक्त रहते हैं। यह इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि वह कोशिकायें जो अधिक प्रोटीन बनाती हैं उनमें आर० एन० ए० भी अधिक होता है। इस प्रकार के आर० एन० ए० को मेसेन्जर आर० एन० ए० या mRNA कहते हैं। यह सूचनाओं को डी० एन० ए० से प्रोटीन संश्लेषण के स्थान तक पहुँचाता है। डी० एन० ए० अणु की एक लड़ एम० आर० एन० ए० के संश्लेषण के लिए फर्मे की भाँति कार्य करती है। डी० एन० ए० फर्मे के ऊपर आर० एन० ए० के संश्लेषण के दौरान डी०एन०ए० थायमीन के सामने एडिनिन, यूरासिल एडिनिन के सामने, साइटोसिन ग्वानीन के सामने तथा ग्वानीन साइटोसिन के सामने पंक्तिबद्ध हो जाते हैं। इन बेसों के आर०एन०ए० पोलिमिरेज नामक एंजाइम के साथ जुड़ने के परिणामस्वरूप आर० एन० ए० अणु का संश्लेषण होता है जो कि बेसक्रम के अनुसार डी० एन० ए० की एक लड़ का पूरक होता है। आर० एन०ए०केन्द्रक से कोशिका द्रव्य की ओर जाता है तथा राइबोसोम के साथ बँध जाता है। राइबोसोम छोटी दानेदार संरचनायें हैं जो अंतःप्रद्रव्यी जालिका से बँधे पाये जाते हैं। ये आर० एन० ए० तथा प्रोटीन के बने हुए होते हैं। राइबोसोमल आर० एन० ए० (rRNA) का संश्लेषण केन्द्रक में होता है। केन्द्रक से आर० आर० एन० ए० कोशिका द्रव्य में आता है जहाँ विभिन्न प्रकार के आर० एन० ए० तथा प्रोटीन संगठित हो कर राइबोसोम बनाते हैं। राइबोसोमों को विदरित कोशिका से स्वतंत्र रूप से शोधित किया जा सकता है तथा इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखा जा सकता है। यदि राइबोसोम को, प्रोटीन बनाने के खंड (एमिनो अम्ल) तथा ऐसे वाहक अणु जो एमिनो अम्ल को प्रोटीन संश्लेषण के स्थान तक पहुँचा सकें की सूचना मिल जाये तो राइबोसोम प्रोटीन का संश्लेषण कर सकते हैं। एमिनो अम्लों का वाहक अणु भी आर० एन ए० का एक प्रकार है जिसको ट्रांसफर आर० एन० ए० (टी० आर० एन० ए०) कहते हैं। प्रत्येक एमिनो अम्ल एक विशेष प्रकार के टी० आर० एन० ए० के द्वारा उद्ग्राही किया जाता है। एमिनो
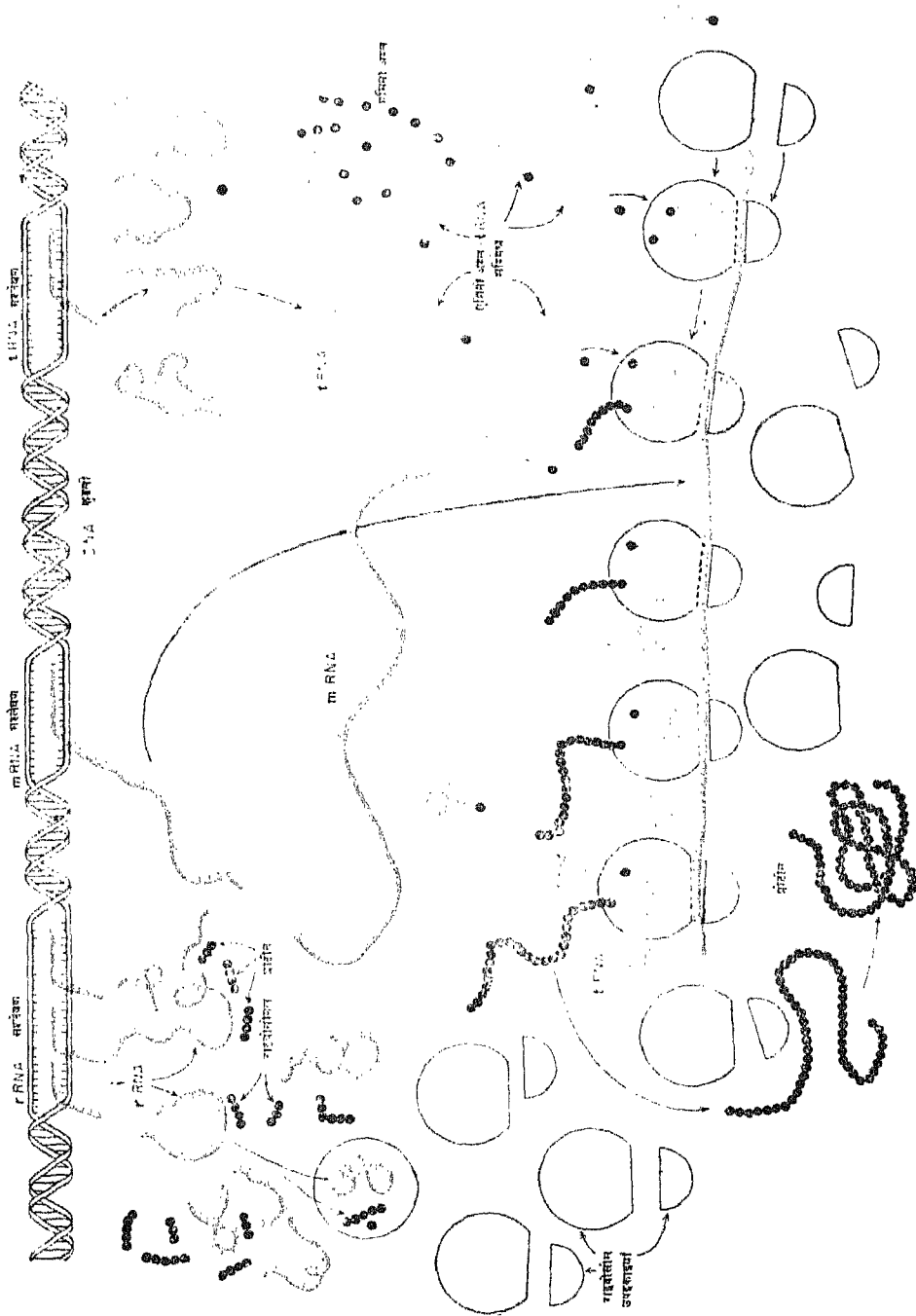
चित्र 16.4 : प्रोटीन संश्लेषण के विभिन्न चरण। rRNA, tRNA तथा mRNA के संश्लेषण के लिए डी. एन. ए., फर्मे की भाँति कार्य करता है। rRNA तथा प्रोटीन मिलकर राइबोसोम बनाते हैं जो mRNA के साथ जुड़ जाते हैं। दो tRNA एमीनो अम्ल सम्मिश्र एक समय में mRNA के ऊपर पंक्तिबद्ध हो जाते हैं। यह प्रकूट तथा अप्रकूट युग्मों के बनने के कारण होता है। एक tRNA का एमिनोअम्ल दूसरे tRNA के एमिनो अम्ल से सहलग्न होकर एक tRNA बनाता है। यह क्रिया तब तक चलती है जब तक कि एक पूर्ण बहुपेप्टाइड बन कर निकल न आये।

अम्ल की इसके टी० आर० एन० ए० के साथ जुड़ने की क्रिया को एक एंजाइम नियंत्रित करता है। टी० आर० एन० ए० एमिनो अम्लों को एम० आर० एन० ए० की अंतर्विष्ट सूचनाओं के अनुसार आदेश देते हैं। बाद में, ये एमिनो अम्ल एक दूसरे से पेप्टाइड बंध के द्वारा जुड़ कर बहुपेप्टाइड या प्रोटीन बनाते हैं। यही एम० आर० एन० ए० तथा राइबोसोम कई अणुओं का संश्लेषण सुगम बनाते हैं। इस प्रकार से डी० एन० ए०, आर० एन० ए० बनाता है तथा आर० एन० ए० प्रोटीन बनाता है। डी० एन० ए० फर्मे के ऊपर आर० एन० ए० के संश्लेषण की क्रिया को अनुलेखन कहते हैं तथा एम० आर० एन० ए० की अंतर्विष्ट सूचनाओं के अनुसार प्रोटीन संश्लेषण को स्थानांतरण कहते हैं।

अनुलेखन स्थानांतरण
डी०एन०ए०——→आर०एन०ए० ———→प्रोटीन

प्रत्येक राइबोसोम एम० आर० एन० ए० के साथ गति करता है। इसलिए ये बेस क्रम को एमिनो अम्ल क्रम में स्थानांतरित करके बहुपेप्टाइड शृंखला बनाते हैं (चित्र 16.4)। कई एक राइबोसोम एक सूचना के स्थानांतरण में एक के बाद एक कार्यरत हो सकते हैं। एक अकेले एम० आर० एन० ए० में लगे हुए राइबोसोमों के सम्मिश्र को अलग किया जा सकता है और इसे पोलीसोम या बहुराइबोसोम कहते हैं।

प्रोटीन के एमिनो अम्लों के क्रम की सूचना एम० आर० एन० ए० के बेस क्रम में होती है जो स्वयं डी० एन० ए० के न्यूक्लिओटाइड क्रम द्वारा नियंत्रित होती है।

तालिका : 16.1

विभिन्न एमिनो अम्लों के लिए आनुवंशिक कोड या एम० आर० एन० ए० त्रिक। डी० एन० ए० के अनुरूप बेस कोष्ठक में दिये गए हैं।

बेस—1	बेस—2				बेस—3
	U (A)	C (G)	A (T)	G (C)	
U (A)	Phe	Ser	Tyr	Cys	U (A)
	Phe	Ser	Tyr	Cys	C (G)
	Leu	Ser	Ochre*	Nonsense*	A (T)
	Leu	Ser	Amber*	Trp	G (C)
C (G)	Leu	Pro	His	Arg	U (A)
	Leu	Pro	His	Arg	C (G)
	Leu	Pro	Gln	Arg	A (T)
	Leu	Pro	Gln	Arg	G (C)
A (T)	Ile	Thr	Asn	Ser	U (A)
	Ile	Thr	Asn	Ser	C (G)
	Ile	Thr	Lys	Arg	A (T)
	Met**	Thr	Lys	Arg	G (C)
G (C)	Val	Ala	Asp	Gly	U (A)
	Val	Ala	Asp	Gly	C (G)
	Val	Ala	Glu	Gly	A (T)
	Val**	Ala	Glu	Gly	G (C)

* शृंखला के अंत का संकेत। Ochre तथा amber, nonsense त्रिक के नाम से भी जाने जाते हैं।
** AUG तथा GUG शृंखला के आरम्भ होने का प्रतिनिधित्व करते हैं।

चित्र 16.5 : एमीनोअम्ल तथा प्रकूट के अभिज्ञान बिन्दुओं को दर्शाते हुए यीस्ट के एलानीन टी. आर. एन. ए. के बेसक्रम ।

दूसरे शब्दों में डी० एन० ए० की चार अक्षरों वाली भाषा, आर० एन० ए० की चार अक्षरों वाली भाषा में अनुलेखित हो जाती है और फिर यह प्रोटीन की बीस अक्षरों वाली भाषा में स्थानांतरित हो जाती है। डी० एन० ए० की भाषा या कोड चार अक्षरों में लिखी जाती है A, T, G और C। यह अच्छी तरह से ज्ञात हो चुका है कि प्रत्येक एमिनो अम्ल, न्यूक्लिक अम्लों के लिए तीन अक्षरों वाले शब्द से कोड किया जाता है। इस प्रकार से तीन बेसों का क्रम यह तय करता है कि एम० आर० एन० ए० -राइबोसोम सम्मिश्र में कौन सा एमिनो अम्ल बहुपेप्टाइड शृंखला के संश्लेषण के दौरान प्रवेशित किया जाये। तीन बेसों का क्रम जो एक एमिनो अम्ल का प्रतिनिधित्व करता है कोड शब्द या कोडॉन या प्रकूट कहलाता है। चार बेस 64 सम्भव कोडॉन बना सकते हैं, किन्तु आवश्यक एमिनो अम्ल केवल 20 हैं। इससे प्रतीत होता है कि हर एमिनो अम्ल एक से अधिक कोडॉन के अनुरूप हो सकता है। नीरनबर्ग, क्रिक, खुराना तथा उनके साथियों के देदीप्यमान शोध कार्य के परिणामस्वरूप विभिन्न एमिनो अम्लों के विभिन्न कोड शब्दों को अभिनिर्धारित करना सम्भव हो गया है। डी० एन० ए० तथा आर० एन० ए० के कोड शब्द एक दूसरे के पूरक होंगे। तालिका 16.1 को देखने से विदित होगा कि फिनायलएलानिन नामक एमिनो अम्ल के लिए दो वैकल्पिक कोड शब्द हैं— आर० एन० ए० के UUU तथा UUC और डी० एन० ए० के AAA तथा AAG। ल्यूसीन तथा आर्जिनीन दोनों के पास 6 कोड शब्द हैं, जबकि ट्रिप्टोफेन तथा मीथिओनिन प्रत्येक के पास केवल एक कोड शब्द है। अन्य एमिनो अम्लों के पास प्रत्येक के लिए दो, या तीन या चार कोडॉन है। चौंसठ में से इकसठ कोडॉन एमिनो अम्लों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा शेष तीन (UAA, UAG और UGA) पूर्ण विराम की भाँति कार्य करते हैं। वे बहुपेप्टाइड शृंखला के अंतिम बिन्दु को निश्चित करते हैं। AUG तथा GUG कोडॉन क्रमशः मीथिओनिन तथा वैलीन को तो कोड करते ही हैं, साथ ही आरंभिक संकेतों को भी कोड करते हैं। डी०एन०ए० का वह खण्ड जो आरम्भिक तथा अंतिम संकेतों से बँधा हुआ है, एक पूर्ण आर० एन०ए० या बहुपेप्टाइड अणु के लिए पर्याप्त सूचना रखता है और इसे सिसट्रान या समपार कहते हैं। इस प्रकार समपार एक बहुपेपटाइड शृंखला या आर० एन० ए० अणु के लिए कोड करता है। कभी-कभी एक से अधिक समपार ऐसे बहुपेपटाइड के लिए कोड करते हैं जिनके कार्य संबन्धित होते हैं या जो सहचारी प्रोटीन बनाते हैं। इस प्रकार के संबन्धित समपार के वर्ग को जीन कहते हैं। प्रत्येक समपार स्वतंत्र रूप से अनुलेखित तथा स्थानांतरित होता है। कई एम० आर० एन० ए० अणु एक साथ समपार से अनुलेखित हो सकते हैं। हरेक दूसरे से थोड़ा-सा पीछे रहता है। इसी प्रकार कई बहुपेप्टाइड, भिन्न-भिन्न राइबोसोमों की मदद से, एक अकेले एम० आर० एन० ए० अणु में से एक के बाद एक स्थानांतरित हो सकते हैं।

एम० आर० एन० ए० का त्रिक कोड एक विशेष प्रकार की टी० आर० एन० ए० स्पिसीज से पहचाना जा सकता है। टी० आर० एन० ए० की प्रत्येक स्पिसीज में दो स्वीकृति स्थान होते हैं। इनमें से एक तो सही एमिनो अम्ल को पहचानता है तथा दूसरा बेसों की पूरकता के कारण एम० आर० एन० ए० कोडॉन को पहचानता है (चित्र 16.5)। टी० आर० एन० ए० अणु के द्वितीय स्थान को एण्टीकोडान कहते हैं। इसलिए एमिनो अम्ल एम० आर० एन० ए० के कोड क्रम तथा कोडान एन्टीकोडान की स्वीकृति के अनुसार व्यवस्थित होते हैं। आनुवंशिक कोड सम्भवतः समस्त जीवों में एक समान ही होता है, जिससे संकेत मिलता है कि जैव विकास के दौरान इसकी उत्पत्ति काफी पहले हुई होगी।

प्रश्न

1. वंशागति डी० एन० ए० के दो प्रमुख कार्य क्या हैं ?

2. यह कैसे प्रमाणित हुआ कि डी० एन० ए० पुनरावृत्ति सामिसंरक्षी होती है ?

3. डी० एन० ए० पुनरावृत्ति की आणविक कार्यविधि का संक्षेप में वर्णन करो ।

4. मेसेंजर आर० एन० ए० (mRNA) की क्या भूमिका है ?

5. राइबोसोमों का क्या कार्य है ? वे कहाँ और कैसे संश्लेषित होते हैं ?

6. अनुलेखन और स्थानांतरण की प्रक्रियाओं को समझाने वाला एक स्वयं-स्पष्ट चिन्हित आरेख बनाओ ।

7. नीचे के रिक्त स्थानों को भरो :
   डी० एन० ए० की·········· अक्षरों वाली भाषा·········· की········ ··अक्षरों वाली भाषा में······ ······हो जाती है और फिर यह················की······ ···· अक्षरों वाली भाषा में स्थानांतरित हो जाती है ।

8. एक अमीनों एसिड के लिए कितने बेस कोड करते हैं ? 1200 अमीनो एसिडों का एक पॉलीपेप्टाइड (क) डी० एन० ए० और (ख) आर० एन० ए० के कितने बेसों के पंक्तिबद्ध क्रम द्वारा कोड किया जाएगा ?

9. चौंसठ सम्भव कोड लिकों में से कितने एमीनो अम्लों के लिए होते हैं और कितने विराम चिह्नों के लिए ? क्या कुछ ऐसे भी हैं जो दोनों के लिए प्रयुक्त होते हैं ?

10. एमीनो आर्जिनीन एसिड के लिए विभिन्न mRNA कोड शब्द हैं : (क) CGU, (ख) CGC. (ग) CGA. (घ) CGG, (ङ) AGA और (च) AGG। सम्बन्धित डी० एन० ए० कोड शब्द या कोडोन क्या होंगे ?

11. tRNA अणु के दो स्वीकृति स्थान कौन से हैं ?

अध्याय 17

कोशिका विभाजन

प्रजनन किसी भी जीवित प्राणी के लिए बहुत आवश्यक है। इससे पहले के अध्याय में हम देख चुके हैं कि कैसे डी० एन० ए० (वंशागति का रासायनिक आधार) की पुनरावृत्ति होती है। डी० एन० ए० के प्रत्येक द्विगुण के बाद पुत्री प्रतिलिपियाँ दो पुत्री कोशिकाओं में अलग अलग हो जाती हैं। अधिकतर पौधों तथा जानवरों (विषाणु, जीवाणु तथा नीली हरी शैवाल को छोड़ कर) में डी० एन० ए० कोशिका के केन्द्रक के अन्दर होता है। कोशिका का अधिकतम डी० एन० ए० केन्द्रक में बनता है। केवल थोड़ा सा अंश कोशिकांगों जैसे माइटोकोन्ड्रिया तथा क्लोराप्लास्ट में होता है। डी० एन० ए० को उचित रंगों (dye) से वरणात्मक रूप से रंजित किया जा सकता है तथा इसकी मात्रा का रंजक की तीव्रता को माप कर अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार के मापों से मालूम हुआ है कि किसी भी जीव की विभिन्न कोशिकाओं के केन्द्रकों में डी० एन० ए० की मात्रा स्थिर होती है। कुछ विशेष प्रकार की कोशिकाओं में डी० एन० ए० सामान्य से आधा या दुगना हो सकता है। कुछ ऊतकों में यह गुणन और भी अधिक हो सकता है किन्तु यह सदैव सम्पूर्ण अंकों में होता है। इससे मालूम होता है कि कोशिकाओं में डी० एन० ए० निर्देशों के एक या दो या अधिक समूह होते हैं। डी० एन० ए० निर्देशों के प्रत्येक पूर्ण समूह को जीनोम (संजीन) कहते हैं। प्रत्येक जीनोम एक या एक से अधिक गुणसूत्रों में होता है। केवल एक जीनोम वाली कोशिका को अगुणित कहते हैं, दो जीनोम वाली कोशिका को द्विगुणित कहते हैं तथा बहुजीनोम वाली कोशिका को बहुगुणित कोशिका कहते हैं। जिन कोशिकाओं में जीनोमों के कई एक समूह होते हैं, उनमें गुणसूत्रों के भी कई एक समान समूह होते हैं। द्विगुणित कोशिका में समान गुणसूत्रों के दो से अधिक समूह होते हैं।

सन् 1950 के कुछ बाद तक डी० एन० ए० का वंशपरम्परा में महत्व तथा इसकी पुनरावृत्ति की क्रिया का पता नहीं था किन्तु कोशिका विभाजन तथा केन्द्रक पदार्थ का पुत्री केन्द्रकों में विभाजन, का अध्ययन सन् 1880 के आस पास ही कर लिया गया था। तब से लेकर आज तक आधार धारणा तो वही है, केवल समय समय पर कुछ विस्तार तथा अपवादों का योगदान किया गया है। रुडोल्फ विरचोव ने 1859 ई० में कहा कि कोशिकाओं का जन्म केवल भूतपूर्व कोशिका से हो सकता है—ओमनिस सेल्युला ए सेल्युला। नई कोशिकाओं का जन्म भूतपूर्व कोशिका के विभाजित होने से होता है। कोशिका के विभाजन होने के गुण के कारण, लक्षणों के समूह कोशिका की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँच जाते हैं। प्रत्येक पुत्री कोशिका को इसकी उपापचयी क्रियाओं के लिए जनक कोशिका से परम्परागत सूचनाओं का पूर्ण समूह तथा पर्याप्त कोशिकांग मिल जाते हैं।

कोशिका विभाजन दो प्रकार का होता है— सूत्रीविभाजन तथा अर्धसूत्रीविभाजन। सूत्रीविभाजन के दौरान अनेक कोशिकायें बन जाती हैं तथा प्रत्येक पुत्री कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या मात्रा कोशिका में गुणसूत्रों की
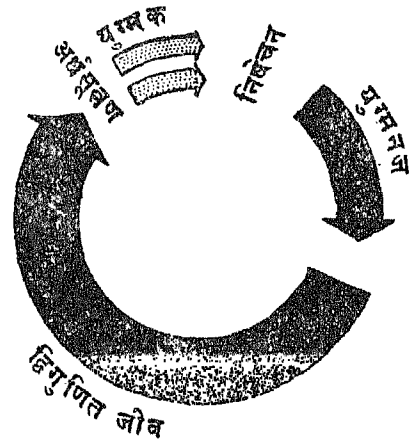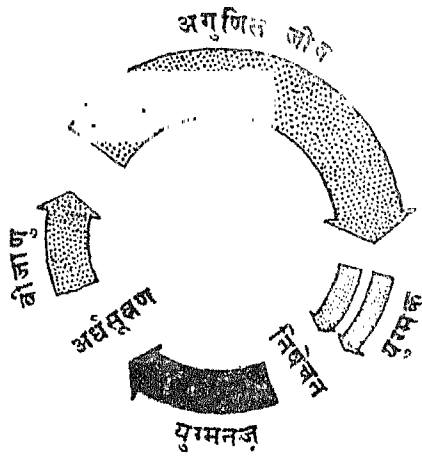
द्विगुणित अवस्था

चित्र 17.1 : अगुणित (बायें) तथा द्विगुणित (दायें) जीवों के जीवन चक्र के दौरान अर्धसूत्री विभाजन की अवस्थाएँ।

संख्या के बराबर होती है। इसके विपरीत अर्धसूत्री विभाजन के दौरान जीनोम आधा हो जाता है जिसके कारण अगुणित तथा द्विगुणित पीढ़ियों का एकान्तरण हो जाता है। द्विगुणित जीवों जैसे उच्चतर पेड़ों तथा जीवों में अर्धसूत्री विभाजन युग्मक बनने के समय होता है। अगुणित जीवों में यह विभाजन युग्मकों के संगलन के तुरंत बाद होता है (चित्र 17.1)।

कोशिका विभाजन के दौरान वृत्तान्त का क्रम बहुत ही व्यवस्थित तथा संक्षिप्त है। इसमें तीन वृत्तांत हैं — (1) डी० एन० ए० अथवा जीनोम की पुनरावृत्ति (2) केन्द्रक विभाजन तथा (3) कोशिकाद्रव्य विभाजन। कोशिका विभाजन एक निरन्तर होने वाली गतिशील क्रिया है।
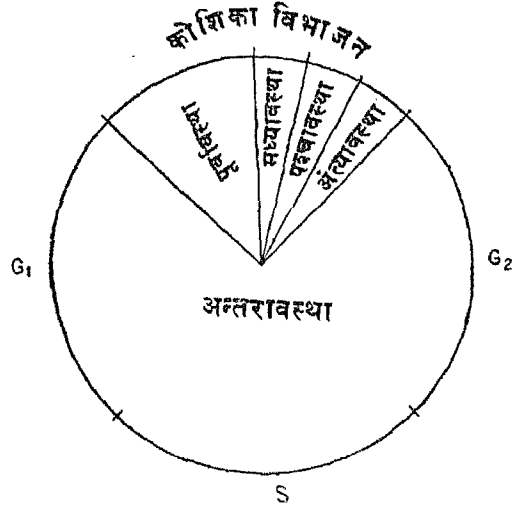
सूत्री विभाजन

सूत्री विभाजन के परिणामस्वरूप एक केन्द्रक दो एक समान केन्द्रकों को बनाता है। प्रत्येक पुत्री केन्द्रक में डी० एन० ए० की मात्रा, गुणसूत्रों के समूह तथा जनक कोशिका से परम्परागत सूचनाएँ समान होती हैं। यह विभाजन कायिक कोशिकाओं में होता है। इसलिए सूत्रीविभाजन को कायिक विभाजन या समविभाजन भी कहते हैं। सूत्रीविभाजन के आरम्भ होने से पहले, कोशिका अन्तरावस्था में होती है। इस समय गुणसूत्रों को प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सकता है। अन्तरावस्था, दो कोशिका विभाजनों के बीच में होती है। इस अवधि के दौरान कोशिका, डी० एन० ए० का द्विगुणन करके तथा सूत्री

चित्र 17.2 : G_1, S, G_2 तथा M (सूत्रीविभाजन या अर्धसूत्री विभाजन) अवस्थाओं को दर्शाता हुआ कोशिका चक्र।

विभाजन के लिए आवश्यक बृहतअणुओं को बना कर विभाजन की तैयारी करती है। जैव-रासायनिक अध्ययन के आधार पर, अन्तरावस्था के दौरान तीन प्रमुख अवस्थाओं को पहचाना जा सकता है (चित्र 17.2)। विभाजन क्रिया के अन्त के साथ कोशिका अन्तरावस्था के प्रथम चरण में प्रवेश करती है। इस G_1 अवधि के दौरान (पहली वृद्धि या बीच की अवधि) केन्द्रक, कोशिका की वृद्धि को नियंत्रित करता है। इस अवधि में बहुत सारे आर० एन० ए० तथा प्रोटीन का संश्लेषण होता है। इसके बाद आती है S अवस्था या संश्लेषण अवस्था जिसमें डी० एन० ए० की पुनरावृत्ति होती है। इस पुनरावृत्ति के परिणामस्वरूप प्रत्येक गुणसूत्र में डी० एन० ए० की लड़ों की संख्या दो गुनी हो जाती है। S अवस्था के बाद फिर से दूसरी वृद्धि अवस्था (G_2) आती है। इस अवधि में गुणसूत्रों की संरचना तथा गतिविधियों के साथ साथ प्रोटीन पदार्थ तथा शक्ति स्रोत भी निश्चित हो जाता है। G_2 अवस्था के बाद M अवस्था आती है जिसमें पूरक गुणसूत्र, पुत्री केन्द्रकों में खण्डित हो जाते हैं। इन अवस्थाओं की लम्बाइयाँ भिन्न भिन्न जीवों में भिन्न भिन्न होती हैं किन्तु एक प्रकार के वातावरण में, एक वर्ग के जीवों के लिए यह लम्बाई निश्चित होती है। वे कोशिकायें जो विभाजित नहीं होने वाली हैं, G_1 अवस्था से आगे नहीं जातीं बल्कि इसके स्थान पर विभेदन प्रारम्भ कर देती हैं।

M अवस्था या सूत्री विभाजन (चित्र 17.3 तथा 17.4) को चार अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है। प्रथम अवस्था को पूर्वावस्था कहते हैं। पूर्वावस्था के प्रारम्भ होने के साथ गुणसूत्र दृढ़ता से कुंडलित होना प्रारम्भ कर देते हैं। जैसे जैसे कुंडलीकरण में वृद्धि होती है, गुणसूत्र मोटे तथा छोटे होते जाते हैं। तदनुसार उन्हें आसानी से प्रकाश सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखा जा सकता है। इस अवस्था में केन्द्रक एक ऊन के गोले की तरह दिखाई पड़ता है। S अवस्था के दौरान हुए द्विगुणन के कारण, पूर्वावस्था में प्रत्येक गुणसूत्र दो धागों से बनी संरचना की भाँति दिखाई देता है।

इन दो धागों में से प्रत्येक धागे को अर्धगुणसूत्र कहते हैं। एक गुणसूत्र के दो अर्धगुणसूत्र एक बिन्दु पर आपस में मिले रहते हैं। इस बिन्दु को गुणसूत्र बिन्दु या प्रथम संकीर्णन कहते है। गुणसूत्रबिन्दु की स्थिति प्रत्येक गुणसूत्र के लिए अभिलाक्षणिक (विशेष) होती है। कुछ गुणसूत्रों में गुणसूत्रबिन्दु मध्य में होता है जो गुणसूत्र को दो बराबर भुजाओं (बाँयी तथा दाहिनी भुजा) में बांट देता है। दूसरे गुणसूत्रों में, गुणसूत्रबिन्दु अंत में होता है जिससे गुणसूत्र एक छोटी (समीपस्थ) तथा एक बड़ी (दूरस्थ) भुजाओं में विभाजित हो जाता है, यह वह स्थान है जहाँ केन्द्रक संलग्न रहते हैं। इन स्थानों को केन्द्रिक संघटक स्थान भी कहते हैं। जैसे जैसे पूर्वावस्था आगे की ओर बढ़ती है केन्द्रिका तथा केन्द्रक झिल्ली धीरे धीरे अदृश्य होने लगती हैं।

केन्द्रक झिल्ली तथा केन्द्रिका के अदृश्य होने के साथ साथ सूत्रीविभाजन की अगली अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है जिसे मध्यावस्था कहते हैं। इस अवस्था के दौरान गुणसूत्र मोटे तथा छोटे हो जाते हैं और इस प्रकार से व्यवस्थित हो जाते हैं कि समस्त गुणसूत्र बिन्दु, कोशिका के केन्द्र में एक समतल पर आ जाते हैं और मध्यावस्था पट्टिका बनाते हैं। गुणसूत्रों के संचलन का मार्गदर्शन कुछ रेशेदार रचनायें करती हैं जो केन्द्रकद्रव्य तथा कोशिका द्रव्य पदार्थ से बनती हैं। इस रेशेदार संरचना को तर्कु उपकरण कहते हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें मध्यावस्था पट्टिका के प्रतिकूल अंतों पर स्थित दो ध्रुवों से सूक्ष्मनलिकायें विकिरित होती हैं। ये गंधकयुक्त एमिनो अम्लों से बने प्रोटीन की बनी होती हैं। कुछ तर्कु तंतु गुणसूत्र के गुणसूत्रबिन्दु से बँधे रहते हैं तथा कुछ गुणसूत्रों के बीच में रहते हैं। अधिकतर जीव कोशिकाओं में प्रत्येक तर्कु ध्रुव में एक तारक केन्द्र होता है जो तारक के नाम से भी जाना जाता है (चित्र 17.3)। तारक केन्द्र रेशेदार, तारे के समान संरचनायें हैं। द्विगुणित जीवों के गुणसूत्र युग्मित किये जा सकते हैं। किसी भी एक युग्म के दो सदस्यों (गुणसूत्र) की लम्बाइयाँ बराबर होती हैं तथा उनके गुणसूत्रबिन्दु की स्थिति भी एक समान होती है।

पश्चावस्था का आरम्भ गुणसूत्र बिन्दु के विभाजन से होता है जिसके परिणामस्वरूप बहन अर्धगुणसूत्र अलग अलग हो जाते हैं तथा तर्कु के अक्ष के साथ साथ विपरीत ध्रुवों तक पहुँच जाते हैं। यह नया गुणसूत्र (पहले का अर्धगुणसूत्र) गुणसूत्रबिन्दु के कारण ध्रुव की ओर खिंचा
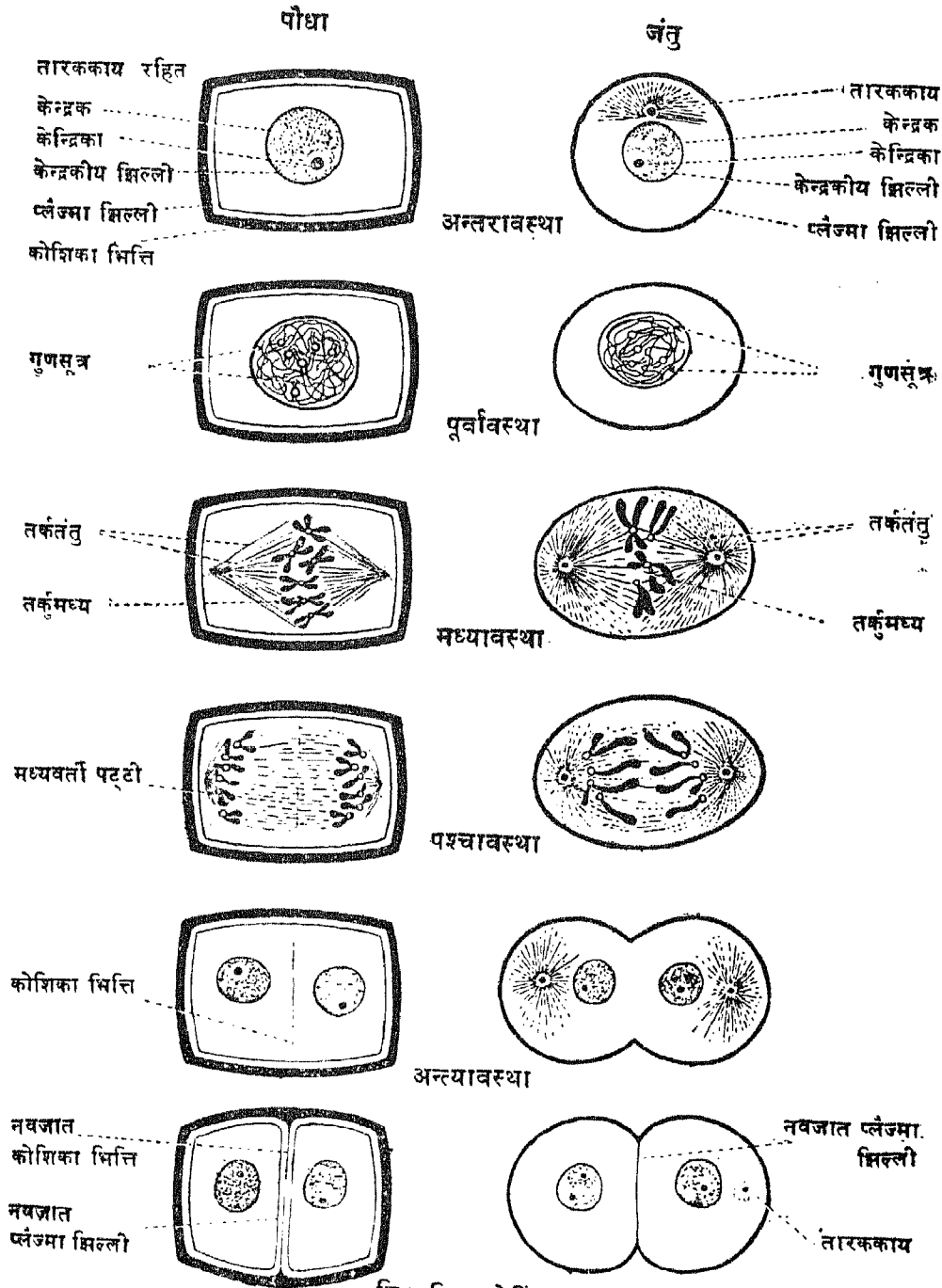
चित्र 17.3 : वनस्पति तथा जीव कोशिकाओं में कोशिका विभाजन की विभिन्न अवस्थायें ।

चला जाता है जबकि इसकी भुजायें मध्यावस्था पट्टिका की ओर लक्ष्य करती हैं। तत्पश्चात मध्य में स्थित गुणसूत्रबिन्दु वाला गुणसूत्र इस अवस्था में 'V' की शक्ल में दिखायी पड़ेगा। जिन गुणसूत्रों में गुणसूत्रबिन्दु अंत मे या अंत से कुछ पहले हैं, इस अवस्था में क्रमशः 'I' या 'J' के आकार के दिखाई पड़ेंगे।

पुत्री गुणसूत्रों के अपने अपने ध्रुवों पर पहुँचने के साथ अन्त्यावस्था का प्रारम्भ हो जाता है। इस अवधि के दौरान, गुणसूत्र अकुंडलित हो जाते हैं, अपनी विशेष प्रकार की दिखने वाली संरचना को खो देते हैं तथा बहुत पतले, लम्बे तथा दानेदार हो जाते हैं। केन्द्रक झिल्ली फिर से बन जाती है तथा प्रासङ्गिक गुणसूत्र के केन्द्रिक संघटन स्थान पर केन्द्रिका का निर्माण हो जाता है।

अन्त्यावस्था में पूर्वावस्था के वृत्तान्तों का क्रम उलटा हो जाता है। प्रत्येक कोशिका में दो केन्द्रक संगठित हो जाते हैं। तब पुत्री केन्द्रक अगले कोशिका चक्र की 'G' अवस्था यानी वृद्धि अवस्था में प्रवेश करते हैं।

केन्द्रक विभाजन साधारणतया (हरदम नहीं) कोशिका द्रव्य के दो पुत्री कोशिकाओं में विभाजित होने के साथ साथ चलता है। इस क्रिया को कोशिकाद्रव्य विभाजन कहते हैं (चित्र 17.3)। जीव कोशिकाओं में कोशिकाद्रव्य विभाजन, कोशिका के बीच में कोशिका झिल्ली के अंतर्वलन से होता है। यह खाँचा धीरे धीरे गहरा होता जाता है तथा अंत में कोशिका को दो भागों में बाँट देता है। इसके विपरीत, पौधों की कोशिकाओं में मध्यवर्ती पट्टी के ऊपर एक कोशिका पट्टी पड़ जाती है। यह पट्टिका केन्द्र से प्रारम्भ हो कर पार्श्व की ओर तब-तक बढ़ती जाती है जब तक यह कोशिका को दो भागों में ना बाँट दे। इसका कारण पेड़ों की कोशिकाओं में कड़ी कोशिका भित्ति का होना है। यदि केन्द्रक बार-बार विभाजित होता रहे किन्तु कोशिका द्रव्य विभाजित ना हो तो बहुकेन्द्रिकित दशा आ जाती है। वह बहुकेन्द्रिकित अवस्था कुछ ऊतकों में स्थायी या अस्थायी परिस्थिति है जैसे पेड़ों के बीजों का भ्रूणपोष या कंकाल पेशियाँ।

अर्धसूत्री विभाजन

अर्धसूत्री विभाजन की विशेषता यह है कि इसमें केन्द्रक तथा कोशिका द्रव्य के दो (एक के बाद एक) विभाजन होते हैं (अर्धसूत्री विभाजन I तथा अर्धसूत्री विभाजन II)। किन्तु इसमें गुणसूत्रों की पुनरावृत्ति केवल एक बार ही होती है। एक द्विगुणित कोशिका में अर्धसूत्री विभाजन के उपरान्त चार अगुणित कोशिकायें बन जाती हैं। इस प्रकार इस विभाजन से प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या तथा डी० एन० ए० की मात्रा दोनों ही आधी हो जाती हैं। अर्धसूत्री विभाजन के प्रारम्भ होने से पहले की अन्तरावस्था सूत्री विभाजन के पहले की अन्तरावस्था के समान ही होती है। एक वृद्धि अवस्था (G_1)
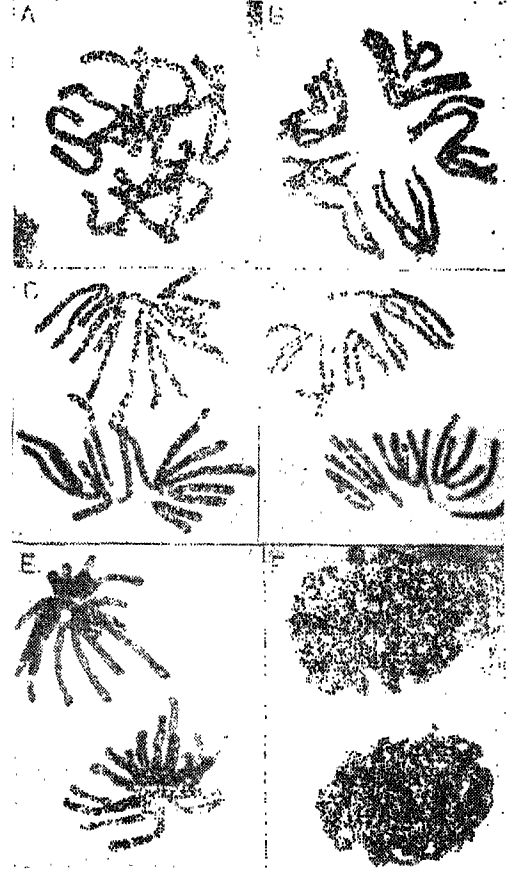
चित्र 17.4 : पैरिस पोलीफाइला की मूलाग्र कोशिकाओं में सूत्री-विभाजन की कुछ प्ररूप अवस्थाएँ, A. पूर्वावस्था, B. मध्यावस्था, ध्रुव छवि, C. आदि पश्चावस्था, D. विलंबित पश्चावस्था, E. आदि अन्त्यावस्था, F. विलंबित अन्त्यावस्था। (डाक्टर वीरेन्द्र कुमार के सौजन्य से।)

चित्र 17.5 : अर्धसूत्री विभाजन की विभिन्न अवस्थाओं का आरेखी निरूपण ।

होती है। इसके बाद संश्लेषण अवस्था (S) आती है जिसके दौरान गुणसूत्रों के डी० एन० ए० की पुनरावृत्ति होती है। संश्लेषण अवस्था के बाद दूसरी वृद्धि अवस्था (G_2) आती है। अर्धसूत्री विभाजन I तथा अर्धसूत्री विभाजन II के अन्तरावस्था की विभिन्न अवस्थायें निरन्तर होने वाली क्रियायें हैं। व्याख्या की सुविधा के लिए अन्तरावस्था को कई छोटी या सहायक अवस्थाओं (चित्र 17.5) में बाँट दिया गया है।

अर्धसूत्री विभाजन I या प्रथम केन्द्रक विभाजन

पूर्वावस्था-1

सूत्री विभाजन की तुलना में अर्धसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था अधिक लम्बी होती है तथा इसे पाँच अवस्थाओं में प्रविभाजित किया जा सकता है। तनुपट्ट (लेप्टोटीन) अवस्था के दौरान केन्द्रक में गुणसूत्र लम्बे तथा पतले धागों के समान होते हैं। जैसे-जैसे पूर्वावस्था आगे बढ़ती है,

गुणसूत्र छोटे, मोटे तथा घने होने लगते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में दो अर्धगुणसूत्र होते हैं जो कि गुणसूत्रबिन्दु पर आपस में मिले रहते हैं। एक समान या समजात गुणसूत्र युग्मपट्ट (जाइगोटीन) अवस्था में युग्मन प्रारम्भ कर देते है। स्थूलपट्ट (पैकिटीन) अवस्था के दौरान युग्मित समजात गुणसूत्र छोटे तथा मोटे हो जाने के कारण बहुत साफ दिखाई पड़ते हैं।

प्रत्येक युग्मित इकाई को युगली कहते हैं जिसमें चार अर्धगुणसूत्र होते हैं। जैसे ही द्विपट्ट (डिप्लोटीन) अवस्था आरम्भ होती है, युग्मित समजात गुणसूत्रों के बीच का युग्मित बल समाप्त होने लगता है तथा गुणसूत्र अलग होना प्रारम्भ हो जाते हैं। साथ ही साथ, समजात गुणसूत्रों के बीच में अर्धगुणसूत्रों के कुछ भागों की अदला बदली (विनिमय) आरम्भ हो जाती है और इसके परिणाम-स्वरूप क्रॉस की भाँति संरचनायें बन जाती हैं जिन्हें काइऐज्मेटा (एक वचन काइऐज्मा) कहते हैं। द्विपट्ट की वृद्धि के साथ-साथ केन्द्रक झिल्ली तथा केन्द्रिका अदृश्य हो चुकती है। युगली बहुत छोटे हो जाते हैं। इसके उपरान्त काइऐज्मेटा गुणसूत्र बिन्दु से गुणसूत्रों के सिरों की ओर गति करने लगते हैं तथा अंत में सिरों को छोड़ते हुए बाहर निकल जाते हैं।

मध्यावस्था-1

केन्द्रक झिल्ली तथा केन्द्रिका का लोप और तर्कु तंतु का संगठन, पूर्वावस्था-1 के अंत तथा मध्यावस्था-1 के प्रारम्भ की घोषणा करता है। युगली स्वयं को कोशिका के मध्य में इस प्रकार से व्यवस्थित कर लेते हैं कि युगली का काइऐज्मेटा मध्यवर्ती पट्टी के ऊपर पड़ जाता है तथा युगली के दो गुणसूत्रबिन्दु इसके आसपास ध्रुवों को लक्ष्य करते हुए रहते हैं। प्रत्येक युगली का अभिविन्यास स्वतंत्र रूप से होता है तथा माता और पिता के गुणसूत्र विपरीत ध्रुवों की ओर लक्ष्य करते हैं।

पश्चावस्था-1

समजात गुणसूत्रों के गुणसूत्र बिन्दु, तर्कु तन्तु के ऊपर विपरीत ध्रुवों की ओर गति करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप गुणसूत्र विपरीत दिशाओं की ओर खिंचने लगते हैं। पूर्वावस्था के दौरान विनिमय के कारण तथा मध्यावस्था में युगली के स्वतंत्र अभिविन्यास के कारण, गुणसूत्रों का जो समूह एक ध्रुव पर पहुँचता है उसमें माता पिता के गुणसूत्रों तथा गुणसूत्रों के भागों का मिश्रण होता है। इस प्रकार से माता तथा पिता के वंशपरंपरागत पदार्थ का अच्छा मिश्रण अर्धसूत्री विभाजन के दौरान हो जाता है।

अन्त्यावस्था-1

गुणसूत्रों का विपरीत ध्रुवों पर पहुँचना अन्त्यावस्था के प्रारम्भ का संकेत देता है। क्योंकि समजात गुणसूत्रों के युग्म में से केवल एक गुणसूत्र एक ध्रुव पर पहुँचता है, इसलिए गुणसूत्रों की कायिक या द्विगुणित संख्या में से केवल आधे एक ध्रुव पर पहुँचते हैं। गुणसूत्र अकुंडलित होने लगते हैं। केन्द्रक झिल्ली तथा केन्द्रिका फिर से संगठित हो जाते हैं। कभी-कभी अन्त्यवस्था-1 अनुपस्थित होती है तथा पश्चावस्था-1 के तुरन्त बाद मध्यावस्था-2 आ जाती है।

अन्तरावस्था

अर्धसूत्री विभाजन I तथा अर्धसूत्री विभाजन II के बीच की अन्तरावस्था यदि होती है तो बहुत संक्षिप्त होती है। सामान्य रूप से यह अनुपस्थित होती है।

अर्धसूत्री विभाजन II या द्वितीय केन्द्रक विभाजन

यह बहुत कुछ सूत्री विभाजन के समान है।

पूर्वावस्था-2

कभी-कभी पूर्वावस्था-2 अनुपस्थित होती है तथा पश्चावस्था-1 के तुरन्त बाद मध्यावस्था-2 आ जाती है। जब भी पूर्वावस्था-2 उपस्थित होती है, यह बहुत संक्षिप्त होती है तथा इस अवस्था के दौरान गुणसूत्र छोटे होने लगते हैं तथा केन्द्रिका और केन्द्रक झिल्ली लोप होने लगते हैं।

मध्यावस्था-2

केन्द्रक झिल्ली तथा केन्द्रिका के लोप होने के साथ तथा तर्कु तंतु के स्पष्ट होने के साथ मध्यावस्था-2 का प्रारम्भ होता है। गुणसूत्र स्वयं को मध्यवर्ती पट्टी के ऊपर व्यवस्थित करते हैं। इसके पश्चात गुणसूत्र बिन्दु विभाजित होते हैं। इस प्रकार से, गुणसूत्र के बहन अर्धगुणसूत्र अलग अलग हो जाते हैं।

पश्चावस्था-2

बहन अर्धगुणसूत्र अलग-अलग हो जाते हैं तथा गुणसूत्र बिन्दु की सहायता से विपरीत ध्रुवों की ओर सरकने लगते हैं।

अन्त्यावस्था-2

इस अवस्था का प्रारम्भ पूरक गुणसूत्रों के अपने-अपने ध्रुवों पर पहुँचने के साथ होता है। इस अवस्था के दौरान गुणसूत्र अकुंडलित होते हुए लम्बे हो जाते हैं। केन्द्रिका का संगठन हो जाता है। केन्द्रक झिल्ली फिर से दृष्टिगोचर होने लगती है।

कोशिकाद्रव्य विभाजन

कोशिका द्रव्य का विभाजन प्रत्येक केन्द्रक विभाजन (अर्धसूत्री विभाजन I तथा अर्धसूत्री विभाजन II) के बाद हो सकता है या फिर चार केन्द्रकों के बनने तक टल सकता है। जैसी भी परिस्थिति हो, विभाजन क्रिया का विस्तार सूत्रीविभाजन के बाद के समान ही है।

अर्धसूत्री विभाजन, सूत्री विभाजन के समान ही एक शक्तियुक्त क्रिया है। इसमें एक अवस्था दूसरी अवस्था में बिना किसी सीमारेखा के निर्धारण के बदल जाती है। अर्धसूत्री विभाजन I तथा अर्धसूत्री विभाजन II के परिणामस्वरूप, प्रतिकेन्द्रक डी० एन० ए० की मात्रा तथा पूरक गुणसूत्र, जनक कोशिका के आधे हो जाते हैं। यह युग्मक के बनने के लिए आवश्यक है। दो युग्मकों के मिलने से किसी भी जीव की द्विगुणन गुणसूत्र संख्या पुन: स्थापित हो जायेगी।

सूत्री विभाजन तथा अर्धसूत्री विभाजन में भिन्नता

सूत्री विभाजन	अर्धसूत्री विभाजन
कायिक कोशिकाओं में होता है।	प्रजनन कोशिकाओं में होता है।
प्रत्येक डी० एन० ए० अथवा गुणसूत्र की पुनरावृत्ति के पश्चात् एक केन्द्रक विभाजन होता है। इससे प्रति कोशिका डी० एन० ए० की मात्रा तथा गुणसूत्रों की संख्या हर एक पीढ़ी में एक समान रहती है।	प्रत्येक डी० एन० ए० अथवा गुणसूत्र की पुनरावृत्ति के पश्चात केन्द्रक में दो विभाजन होता है। इसलिए प्रत्येक पुत्री कोशिका में डी० एन० ए० की मात्रा तथा गुणसूत्रों की संख्या जनक कोशिका से आधी हो जाती है।
प्रत्येक गुणसूत्र स्वतंत्र रूप से व्यवहार करता है।	समजात गुणसूत्र युग्मित हो जाते हैं।
मध्यावस्था में गुणसूत्र इस प्रकार से व्यवस्थित होते हैं कि गुणसूत्र बिन्दु मध्यावस्था पट्टिका पर पड़ते हैं तथा गुण सूत्र की भुजायें स्वतन्त्र रहती हैं	मध्यावस्था में गुणसूत्र इस प्रकार से व्यवस्थित होते हैं कि समजात गुत्रसूत्रों के गुणसूत्र बिन्दु मध्यावस्था पट्टिका के अगल-बगल पड़ते हैं, विपरीत ध्रुवों को लक्ष्य करते हुए।
समजात गुणसूत्रों के बीच में अर्धगुणसूत्रों के भागों का विनिमय अथवा अदला बदली नहीं होती।	समजात गुणसूत्रों के बीच में अर्धगुणसूत्रों के भागों का विनिमय अथवा अदला बदली होती है।
एक ही जीव में सूत्रीविभाजन में अर्धसूत्री विभाजन की अपेक्षा कम समय लगता है	एक ही जीव में अर्धसूत्री विभाजन में सूत्री विभाजन की अपेक्षा अधिक समय लगता है।
सूत्री विभाजन के परिणामस्वरूप एक जनक केन्द्रक	अर्ध सूत्री विभाजन के परिणामस्वरूप एक जनक

से दो पुत्री केन्द्रक बन जाते हैं।	केन्द्रक से चार पुत्री केन्द्रक बन जाते हैं।
गुणसूत्रबिन्दु विभाजित होते हैं जिससे कि दो अर्धगुण सूत्र अलग-अलग हो जाते हैं।	मध्यावस्था-1 में गुणसूत्र बिन्दु विभाजित नहीं होते। अर्ध-गुणसूत्र के स्थान पर समजात गुणसूत्र अलग अलग हो जाते हैं। गुणसूत्र बिन्दु मध्यावस्था-2 में विभाजित होते हैं।

विभाजन के असामान्य तरीके

अमीबा या यीस्ट जैसे कई साधारण तथा आदि जीवों में सूत्रीविभाजन बहुत विस्तारपूर्वक नहीं होता। केन्द्रक, गुणसूत्रों के प्रगट होने के बिना ही एक दरार पड़ने के कारण विभाजित हो जाता है (चित्र 17.6)। इस प्रकार के केन्द्रक विभाजन को असूत्रीविभाजन कहते हैं।
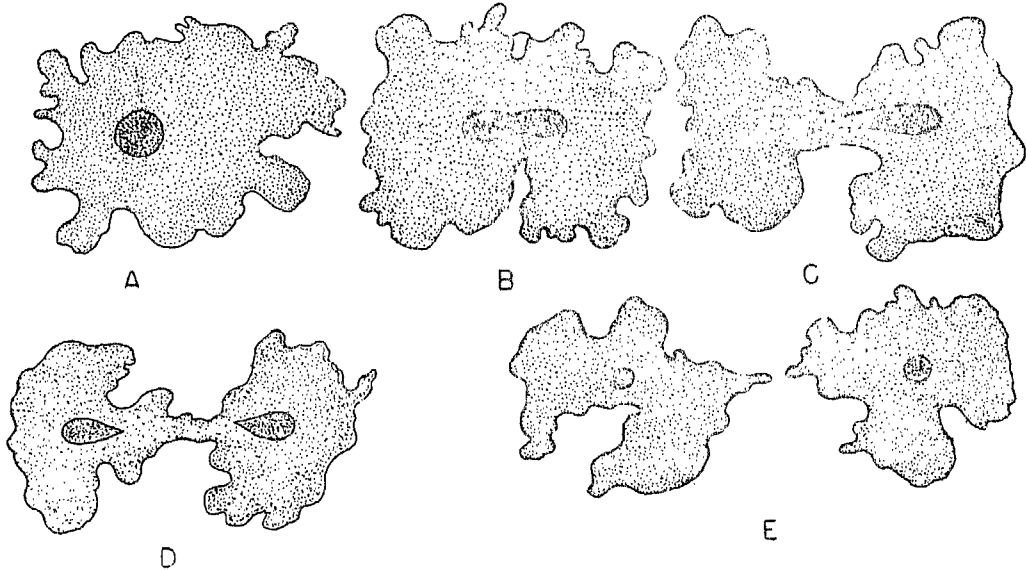
चित्र 17.6 : A से E तक—अमीबा में असूत्रीविभाजन।
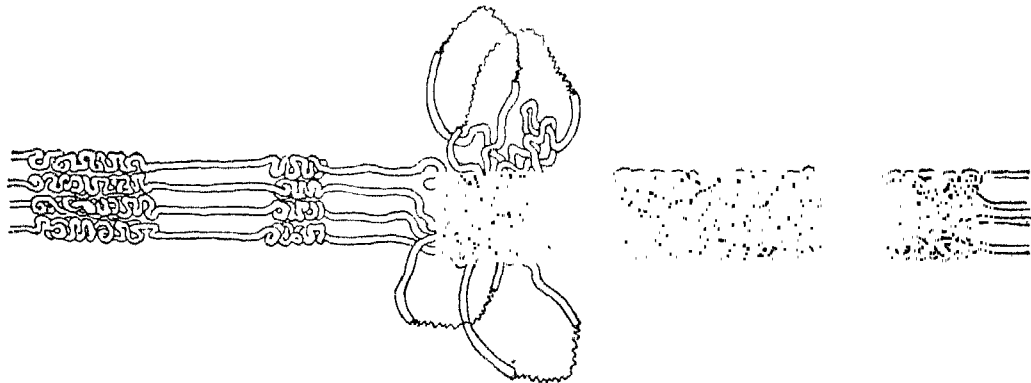
चित्र 17.7 : बहुपट्टीय गुणसूत्र के एक भाग का आरेखी निरूपण—अनेक कुंडलिनियाँ तथा वलन दर्शाते हुए। वलन मोती या पट्ट की भाँति दिखाई पड़ रहे हैं।

कभी कभी केन्द्रक विभाजित होना प्रारम्भ कर देता है किन्तु इस क्रिया को पूरा नहीं करता। इसके परिणाम-स्वरूप डी० एन० ए० तथा गुणसूत्रों दोनों की ही पुनरावृत्ति हो जाती है किन्तु केन्द्रक विभाजित नहीं होता। इस कारण से प्रति कोशिका, गुणसूत्रों की कायिक संख्या बढ़ती जाती है। इस क्रिया को अंतःगुणन कहते हैं। कभी-कभी अर्धगुणसूत्रों वाले गुणसूत्र बन जाते हैं। ड्रासोफिला तथा कुछ अन्य अकशेरुकियों के लाला-ग्रंथि गुणसूत्रों में इस प्रकार की बहुपट्टता (चित्र 17.7) के परिणामस्वरूप, प्रत्येक गुणसूत्र में 1000 तक अर्धगुणसूत्र बन जाते हैं।

कोशिकाद्रव्य विभाजन के समय कोशिकाद्रव्य के कोशिकांग जैसे माइटोकॉन्ड्रिया, हरितलवक (क्लोरोप्लास्ट), तारक केन्द्र तथा आधार-कणिका, पुत्री कोशिकाओं में चले जाते हैं। कभी कभी परिपक्व कोशिकांगों के स्थान पर केवल उनके पूर्वगामी ही पुत्री कोशिकाओं में जाते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि इनमें से प्रत्येक कोशिकांग केवल भूतपूर्व अंगक से ही बन सकते हैं। इन कोशिकांगों में इनका स्वयं का परम्परागत पदार्थ होता है। ये कोशिकांग एक सीमा तक स्वतः जनन इकाई होते हैं किन्तु इनकी वृद्धि, विभेदन तथा कार्य, केन्द्रक के द्वारा ही संचालित होता है।

प्रश्न

1. जीनोम क्या है? एक अगुणन तथा द्विगुणन कोशिका में कितने जीनोम होते हैं?
2. कोशिका विभाजन क्यों आवश्यक है?
3. एक प्ररूपी अगुणन तथा द्विगुणन के जीवन चक्र खींचो। उन अवस्थाओं को इंगित करो जहाँ अर्धसूत्री विभाजन हो रहा है।
4. अन्तरावस्था के कौन से वृत्तांत कोशिका को केन्द्रक विभाजन के लिए तैयार करते हैं?
5. एक चिह्नित कोशिका चक्र खींचो।
6. स्वतः व्याख्यात्मक चिह्नित चित्रों द्वारा सूत्री विभाजन की विभिन्न अवस्थायें बताओ।
7. पूर्वावस्था-1 की विभिन्न अवस्थाओं का स्वतः व्याख्यात्मक चिह्नित चित्र बनाओ।
8. पेड़ों तथा जीवों के तर्कु उपकरण की संरचना तथा संयोजन का संक्षेप में वर्णन करो।
9. एक पेड़ की प्ररूपी कोशिका में, कोशिका द्रव्य विभाजन एक जीव की प्ररूपी कोशिका के कोशिका द्रव्य विभाजन से किस प्रकार भिन्न है?
10. अर्धसूत्री विभाजन की विभिन्न अवस्थाओं की यथाक्रम गणना करो।
11. सूत्री विभाजन तथा अर्धसूत्री विभाजन में भेद बताओ।
12. बहुपट्टता क्या है? बहुपट्ट गुणसूत्र तुम कहाँ देख सकते हो?

अध्याय 18

वंशागति के सिद्धांत

वंशागति की क्रियाविधि का अध्ययन डी० एन० ए० तथा गुणसूत्रों को जानने से बहुत पहले किया जा चुका था। डी० एन० ए० आनुवंशिक सूचनाओं को वहन करता है—इस तथ्य को जानने से बहुत पहले वंशागति की क्रिया विधि जानी जा चुकी थी। ग्रेगर जॉह्यान मैंडल ने 1866 में —लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं—इसका प्रमाण दिया। मैंडल ने बताया कि जीव की प्रत्येक कोशिका में एक गुण के लिए दो घटक होते हैं। ये दोनों घटक अलग अलग होने के बाद भिन्न भिन्न संतति में भिन्न भिन्न युग्मकों द्वारा पहुँचते हैं। इसी घटक को बाद में जीन के नाम से जाना गया। जीन गुणसूत्रों में होते हैं जो केन्द्रकों में पाये जाते हैं। अब हम जीन के स्थूल तथा रासायनिक संगठन को विस्तारपूर्वक जानते हैं। यह भी भली भाँति ज्ञात हो चुका है कि जीन कैसे किसी जीव में लक्षणों के अभिव्यक्त होने को नियंत्रित करते हैं। आनुवंशिकी विज्ञान यानी वंशपरम्परा तथा परिवर्तन (विविधता) के विज्ञान की नींव मैंडल ने एक शतक पहले डाली थी। इसलिए मैंडल को आनुवंशिकी विज्ञान का पिता कहना अनुचित ना होगा।

मैंडल (चित्र 18.1) का लालन पालन, आज के चेकोस्लोवाकिया देश में हुआ तथा उन्हें एक ईसाई आश्रम (मठ) का पुरोहित (प्रीस्ट) नियुक्त किया गया। उन्होंने मटर (पिसम सेटिवम) के ऊपर प्रजनन प्रयोग लगभग नौ वर्षों तक किए। इन प्रयोगों के परिणामों से उन्होंने संक्षिप्त रूप में वंशागति के सिद्धान्तों को स्पष्ट किया। मैंडल से पहले भी कई लोगों ने विभिन्न पेड़ों तथा जानवरों में इस प्रकार के प्रजनन प्रयोग किये थे। परन्तु उनमें से कोई भी परिणामों का मैंडल की भाँति कुशलता से विश्लेषण ना कर सका। मटर के पौधों में भी

चित्र 18.1 : ग्रेगर जॉह्यान मैंडल—आनुवंशिकी विज्ञान के पिता।

कई लोगों ने प्रजनन प्रयोग किये थे तथा संतति में जनक के लक्षणों का सम्मिश्रण देखा था। इसी प्रकार के प्रजनन प्रयोग मैंडल ने किये तथा परिणामों की व्याख्या करने में उन्होंने अपनी गणित तथा विज्ञान की शिक्षा से लाभ उठाया। अपने से पहले के लोगों से विपरीत उन्होंने जनक पौधों के कुछ स्पष्ट रूप से भिन्न लक्षणों के समूह के वंशागति के तरीके को जानने का प्रयास किया। उन्होंने इस प्रकार के कई एक संकरणों के आँकड़ों को एकत्रित किया तथा परिणामों की क्रमबद्ध गणना की। आरम्भ में उन्होंने एक समय में एक लक्षण की वंशागति का अध्ययन किया तथा बाद में दो या दो से अधिक लक्षणों की वंशागति का भी अध्ययन किया। उन्होंने प्रत्येक वर्ष के आँकड़ों को अलग अलग तथा यथा-क्रम एकत्रित किया और इसी कारण उन्हें सफलता भी मिली। प्रयोगों के लिए मटर के पौधे का चुनाव भी एक बुद्धिमत्ता थी क्योंकि इस पौधे के फूल की संरचना के कारण नियंत्रित प्रजनन सम्भव है, कम समय में कई पीढ़ियाँ पैदा हो जाती हैं तथा इस पौधे को सरलता से उगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्पष्ट रूप से विपरीत लक्षणों वाली शुद्ध किस्में बड़ी संख्या में व्यावसायिक रूप से प्राप्त थीं। मटर के फूल की पंखुड़ियाँ प्रजनन अंगों को पूर्ण रूप से निषेचन के समय तक ढके रहती हैं। इस कारण स्वपरागण या एक ही पौधे के नर तथा मादा युग्मकों का संगलन सुरक्षित हो जाता है। इसके अतिरिक्त परपरागण या भिन्न भिन्न पौधों के नर तथा मादा युग्मकों का संगलन भी भौतिक रूप से सम्भव था। परपरागण के लिए एक फूल में से परागकणों के परिपक्व होने से पहले परागकोश को निकाल लिया जाता है फिर वर्तिकाग्र (स्टिग्मा) को इच्छित पौधे के परागकणों द्वारा परागित किया जाता है। मटर के पौधे के विशिष्ट गुणों का बड़ी संख्या में परीक्षण करने के बाद मैंडल ने यह निश्चित किया कि वे इस काम (प्रयोग) को सात विपरीत लक्षणों की वंशागति के तरीके का वृत्तान्त जानने हेतु करेंगे। सात लक्षणों में से प्रत्येक लक्षण दो विपरीत स्थितियों में था (तालिका 18.1)। इस प्रकार पौधे या तो लम्बे थे या वामन, फूल लाल या सफेद, इत्यादि। मैंडल ने प्रयोगों के लिए ऐसे पौधों को चुना जो उन लक्षणों के लिए जिनका मैंडल अध्ययन करना चाहते थे तद्रूप प्रजनन करते थे। इसके लिए उन्होंने पौधों में स्वपरागण होने दिया। संतति में से उन्होंने केवल उन पौधों को चुना जो कई एक पीढ़ियों तक एक ही प्रकार की संतति पैदा करते रहे थे। ऐसे पौधे जो कभी जनक के समान तथा कभी नई प्रकार की संतति पैदा करते थे, को मैंडल ने हटा दिया। प्रयोगों का प्रारम्भ तद्रूप प्रजनन करने वाले पौधों से करना बहुत आवश्यक था क्योंकि इस कारण से ही प्रयोग सफलतापूर्वक पूरे हुए तथा मैंडल प्रयोगों की सफल व्याख्या कर सके।

तालिका 18.1

मैंडल द्वारा अध्ययन किए हुए मटर के पौधों के प्रभावी तथा अप्रभावी लक्षण

लक्षण जिनका अध्ययन किया गया	प्रभावी	अप्रभावी
पौधे की लम्बाई	लम्बे (2 मीटर)	वामन (1/2 मीटर)
फूल तथा फली की स्थिति	अक्षीय	अंतिम
फली का रंग	हरा	पीला
फली की रचना	असंकुचित या पूर्ण	संकुचित
बीज के आवरण या फूल का रंग	रंगीन	सफेद
बीज की रचना	गोल	सिकुड़ा हुआ (झुर्रीदार)
भ्रूणपोष का रंग	पीला	हरा

एक बार आकार बन जाने के बाद, मैंडल ने कई संकरण परपरागण विधि से किए। एक लक्षण वाले मटर के पौधे के परागकणों को विपरीत लक्षण वाले मटर के पौधे के वर्तिकाग्र के ऊपर डाला। उदाहरण के लिए लम्बे पौधों को वामन पौधों के परागकण से परागित किया या फिर वामन पौधों को लम्बे पौधों के परागकणों से परागित किया। मैंडल ने देखा कि प्रथम संतानीय (पुत्री) पीढ़ी (F_1 पीढ़ी) के समस्त पौधे दो जनक पौधों में से एक पौधे के समान थे। इस पीढ़ी में दूसरे (विपरीत) जनक के लक्षण कहीं भी दिखाई नहीं पड़े। इस प्रकार तद्रूप प्रजनन लम्बे पौधों तथा तद्रूप प्रजनन वामन पौधों के संकरण से प्रथम संतानीय पीढ़ी (F_1) में केवल लम्बे पौधे पैदा हुए। परिणाम सदैव यही था चाहे परागकण लम्बे चाहे वामन पौधों से लिए गए हों। दूसरे शब्दों में व्युत्क्रम संकरण से भी समान परिणाम मिले।

प्रभाविता के सिद्धांत

अपने पहले मुख्य प्रकाशन में, मैंडल ने विपरीत लक्षण वाले सात युग्मों के परिणामों का वर्णन किया। उन्होंने देखा कि प्रत्येक विपरीत लक्षणों वाले युग्म में से एक लक्षण दूसरे लक्षण को पूर्ण रूप से दबाता है तथा F_1 पीढ़ी में प्रकट होता है जबकि दूसरा लक्षण F_1 पीढ़ी में बिल्कुल प्रकट नहीं होता तथा अप्रभावी रहता है (तालिका 18.1)। आधुनिक परिभाषा में विपरीत लक्षणों के युग्म को युग्मविकल्पी कहते हैं तथा इस युग्म के प्रत्येक सदस्य

तालिका 18.2

मैंडल के मटर में किए गए एकसंकर संकरण के परिणाम

जनक संकरण	F_1 संतति	F_2 संतति	अनुपात
गोल × झुर्रीदार बीज	सब गोल	5474 गोल 1850 झुर्रीदार 7324 योग	2.96:1
पीला × हरा बीज	सब पीले	6022 पीले 2001 हरा 8023 योग	3.01:1
रंगीन × सफेद फूल	सब रंगीन	705 रंगीन 224 सफेद 929 योग	3.15:1
फूली हुई × संकुचित फली	सब फूली हुई	882 फूली हुई 299 संकुचित 1181 योग	2.95:1
हरी × पीली फली	सब हरी	428 हरी 152 पीली 580 योग	2.82:1
अक्षीय × अंतिम फूल	सब अक्षीय	651 अक्षीय 207 अंतिम 858 योग	3.14:1
लम्बे × वामन पौधे	सब लम्बे	787 लम्बे 277 वामन 1064 योग	2.84:1
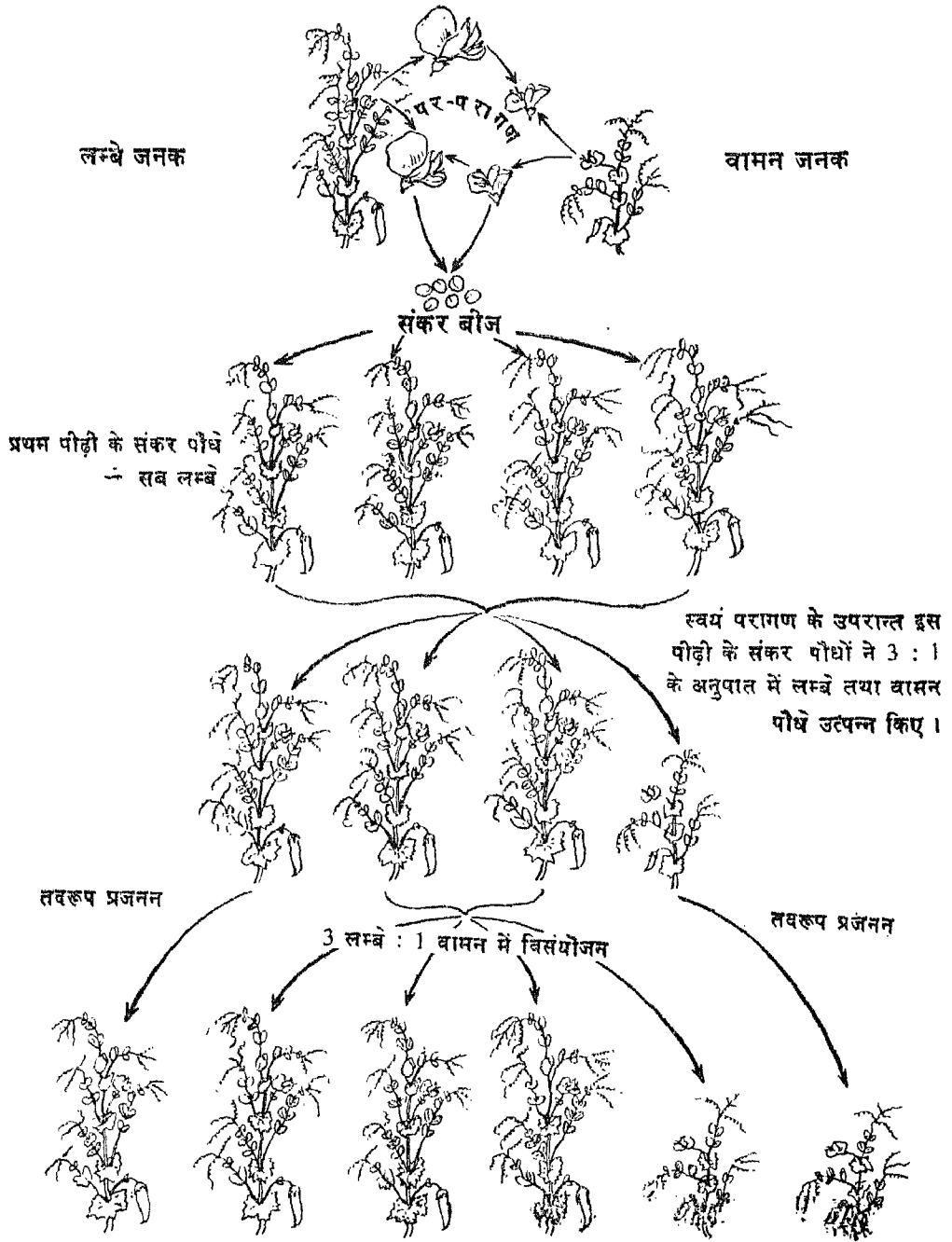
चित्र 18.2 : मेंडल द्वारा लम्बे तथा वामन पौधे के संकरण से प्राप्त परिणामों का आरेखी निरूपण।

को एक दूसरे का विकल्पी कहते हैं। इस तरह गोल और झुर्रीदार एक युग्मविकल्पी है तथा गोल झुर्रीदार का विकल्पी है तथा झुर्रीदार गोल का विकल्पी है। परिभाषा के अनुसार, विकल्पी एक ही जीन की वैकल्पिक अवस्थायें हैं। एक जीन के दो से अधिक विकल्पी हो सकते हैं।

मैंडल ने F_1 पौधों को स्वपरागण करने दिया जिसके परिणामस्वरूप F_2 पीढ़ी मिली। उन्होंने देखा कि यद्यपि F_1 पीढ़ी में अप्रभावी लक्षण नज़र नहीं आते हैं तथापि F_2 पीढ़ी में ये प्रकट होते हैं (चित्र 18.2)। अर्थात् अप्रभावी लक्षण खोए नहीं थे। ये केवल अपने प्रभावी विकल्पी की उपस्थिति में प्रकट नहीं हुए। F_2 संतति की संख्यानुसार विश्लेषण करने से मालूम हुआ कि कुल संतति में से तीन चौथाई (3/4) में प्रभावी लक्षण प्रकट हुआ था तथा एक चौथाई (1/4) में अप्रभावी लक्षण प्रकट हुआ (तालिका 18.2)। उदाहरण के लिए जब F_2 पीढ़ी लम्बे तथा वामन पौधों से बनाई गई तो मैंडल को कुल 1064 पौधे मिले, जिनमें से 787 लम्बे थे तथा 277 पौधे वामन थे। सभी प्रकार के संकरणों से समान परिणाम मिले। प्रभावी लक्षणों वाले पौधों का अप्रभावी लक्षणों वाले पौधों से अनुपात सदैव 3:1 के आसपास था।

एक युग्मविकल्पी की वंशागति के अध्ययन के लिए किए गए संकरण को एकसंकर संकरण कहते हैं तथा जो अनुपात मिलता है उसे एकसंकर अनुपात कहते हैं।
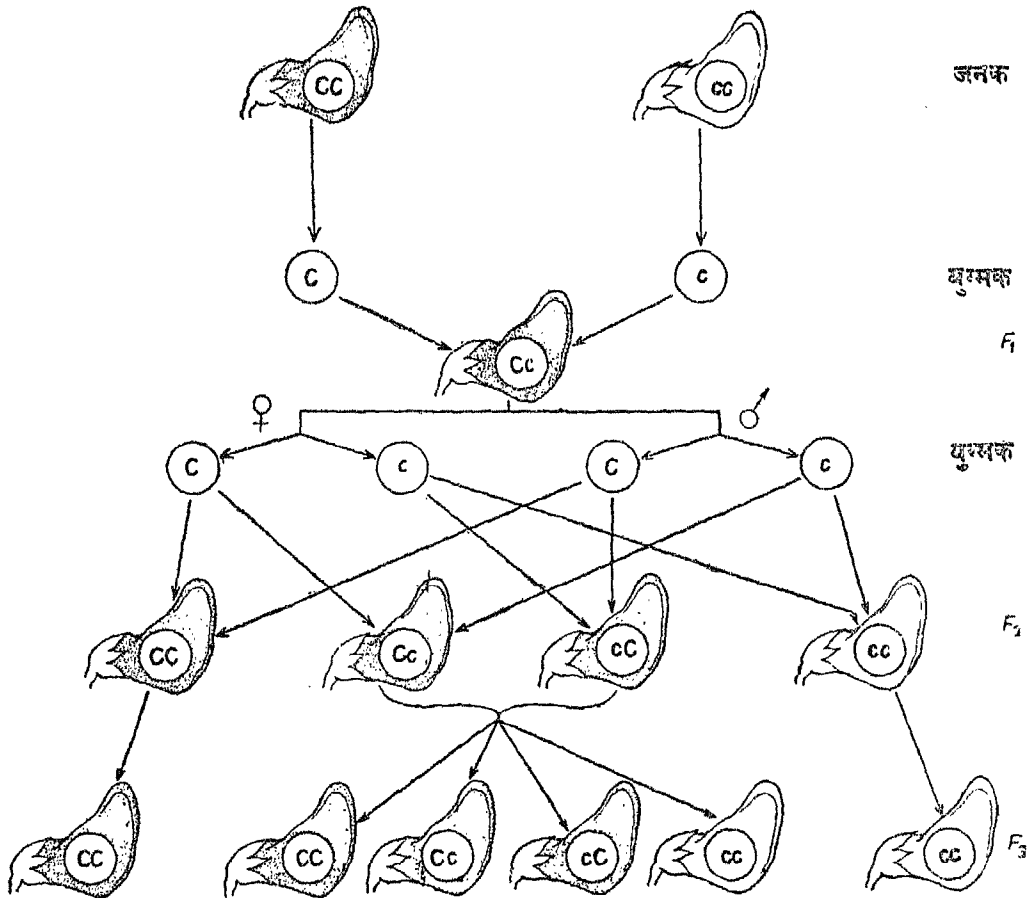
चित्र 18.3 : लाल तथा सफेद फूलों वाले पौधों के बीच एकसंकर संकरण का आनुवंशिक निरूपण।

मैंडल ने सात एकसंकर संकरण किए तथा प्रत्येक बार F_2 पीढ़ी में एकसंकर अनुपात 3:1 पाया।

युग्मकों की शुद्धता का सिद्धांत

मैंडल ने F_3 तथा उससे बाद की पीढ़ियाँ भी बनाईं और हरेक बार आशाजनक परिणाम प्राप्त किए। उन पौधों ने जिन्होंने F_2 पीढ़ी में अप्रभावी लक्षण दिखाये थे, तद्रूप प्रजनन किया तथा हर एक पीढ़ी में अपने अप्रभावी लक्षणों को सुरक्षित रखा। किन्तु F_2 में प्रभावी लक्षण दिखाने वाले पौधों में से एक तिहाई ने तो तद्रूप प्रजनन किया तथा दो तिहाई ने संतति बनाई जिनमें प्रभावी तथा अप्रभावी लक्षणों का अनुपात 3:1 था (चित्र 18.2)। उदाहरण के लिए 565 पौधों (जिनको प्रथम पीढ़ी के गोल बीज वाले पौधों से बनाया था) में से 193 पौधों ने केवल गोल बीज बनाये, जबकि 372 पौधों ने गोल तथा झुर्रीदार बीज 3:1 के अनुपात में बनाये। अतः 3:1 F_2 अनुपात वास्तव में 1:2:1 अनुपात है जिसमें से पहला तथा अन्तिम वर्ग क्रमशः प्रभावी तथा अप्रभावी लक्षणों के लिए तद्रूप प्रजनन करने वाले हैं। कुल संतति का पचास प्रतिशत बीच वाले वर्ग में आता है। ये संकर हैं तथा इसमें प्रभावी तथा अप्रभावी दोनों ही लक्षण होते हैं किन्तु बाहर से केवल प्रभावी लक्षण ही दिखाई पड़ता है।

इन परिणामों के आधार पर मैंडल ने स्वयं सिद्ध किया कि जनक पौधे से पैदा हुए प्रत्येक युग्मक में एक लक्षण के लिए एक प्रतिनिधि होता है। एक द्विगुणन प्राणी की कोशिका में प्रत्येक लक्षण के लिए दो प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि अपनी एकरूपता हरएक पीढ़ी में रखता है तथा दूसरों के साथ मिलता नहीं है। मैंडल ने वर्णमाला के अक्षरों को प्रतिनिधियों के चिह्नों के रूप में प्रयोग किया—बड़े अक्षर से प्रभावी जीन को चिह्नित किया तथा छोटे अक्षर से अप्रभावी जीन को चिह्नित किया। हम लाल फूल के प्रतिनिधि को 'C' तथा सफेद फूल के प्रतिनिधि को 'c' से चिह्नित कर सकते हैं। एक तद्रूपप्रजनन लाल फूलों वाले पौधे में लाल रंग के लिए दो प्रभावी प्रतिनिधि या जीन 'CC' हैं तथा सफेद फूलों वाले पौधे में सफेद रंग के लिए दो अप्रभावी प्रतिनिधि या जीन 'cc' हैं। तद्रूप प्रजनन लाल फूलों वाले पौधे से पैदा हुए प्रत्येक युग्मक में केवल एक जीन 'C' होगा जबकि सफेद फूलों वाले प्रत्येक युग्मक में केवल एक जीन 'c' होगा। इन दोनों युग्मकों के मिलने से युग्मनज बनेगा जिसमें प्रत्येक रंग के लिए एक जीन (Cc) होगा चाहे परागकण प्रभावी अथवा अप्रभावी जनक पौधे से लिये गये हों। ऐसे पौधे जिनमें दोनों विकल्पी हैं दो प्रकार के युग्मक बनायेंगे—50 प्रतिशत में प्रभावी विकल्पी तथा 50 प्रतिशत में अप्रभावी विकल्पी होगा। ऐसे पौधों को, जिनमें एक ही जीन के लिए दो भिन्न भिन्न विकल्पी हों, (Cc) विषमयुग्मजी कहते हैं जो दो भिन्न प्रकार के युग्मक बना सकते हैं। ऐसे पौधे जिनमें जीन के दोनों विकल्पी एक समान हों (जैसे CC या cc) को समयुग्मजी कहते हैं। इस प्रकार के पौधे केवल एक प्रकार के युग्मक बना सकते हैं, इसलिए स्वनिषेचन के परिणाम-स्वरूप, अगली पीढ़ी में जनक के समान संतति मिलेगी। दूसरे शब्दों में वे तदरूप प्रजनन हैं। समयुग्मजी प्रभावी तथा विषमयुग्मजी पौधे एक से दिखते हैं क्योंकि विषमयुग्मजी पौधों में प्रभावी विकल्पी, अप्रभावी विकल्पी को दबा देता है। इसलिए अधिकतर भिन्न भिन्न सम्भव जीनप्ररूपों का सम्भव लक्षणप्ररूपों से कोई अनुरूपता नहीं होती। उदाहरण के लिए शुद्ध लाल तथा शुद्ध सफेद फूलों वाले पौधों के संकरण से पैदा हुई F_2 संतति में केवल दो प्रकार के लक्षणप्ररूप थे (लाल तथा सफेद) किन्तु तीन सम्भव जीनप्ररूप (CC, Cc तथा cc) थे। F_2 में लक्षणप्ररूपी अनुपात 3 लाल : 1 सफेद है किन्तु अनुरूप जीनप्ररूपी अनुपात है 1CC : 2Cc : 1cc। मैंडल के द्वारा किए गए अनेक एकसंकर संकरण में से एक का आनुवंशिक प्रतिरूप चित्र 18.3 में दिया गया है।

विसंयोजन के सिद्धांत

प्रत्येक आने वाली पीढ़ी में लक्षणों की वंशागति के नियमों का वर्णन करते हुए मैंडल ने विचार प्रकट किया कि प्रजनन के समय जीन या प्रतिनिधि विसंयोजित हो जाते हैं तथा निषेचन के दौरान साथ साथ आ जाते हैं। उन्होंने बताया कि प्रत्येक लक्षण के लिए दो वैकल्पिक प्रतिनिधि युग्मक बनने के दौरान अलग अलग हो जाते हैं
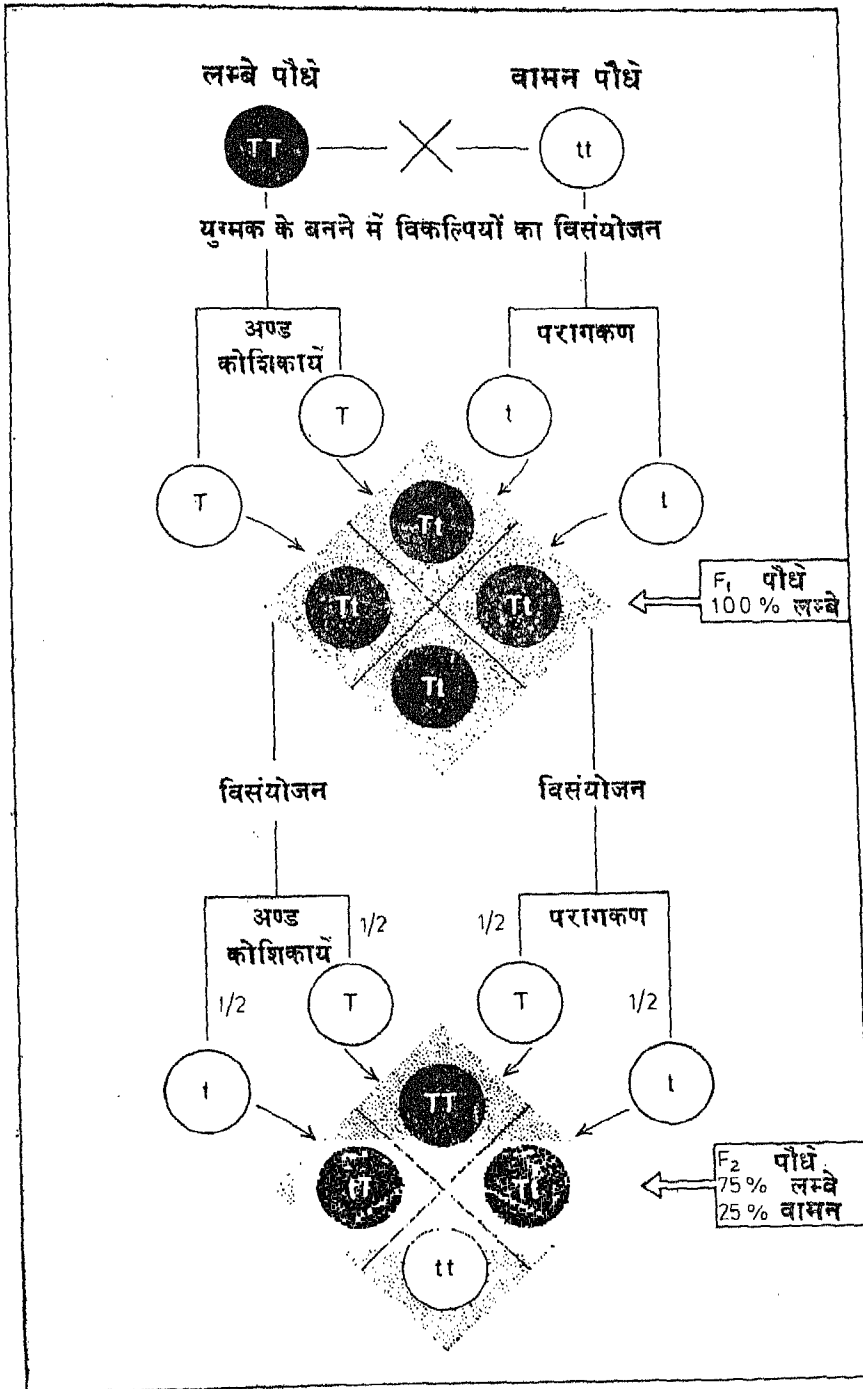
चित्र 18.4 : युग्मकों के बनने के समय विकल्पियों के विसंयोजन को दर्शाते हुए लम्बे तथा वामन पौधों के संकरण का आरेखी निरूपण।

तथा प्रत्येक पृथक हुए प्रतिनिधि को संतति तक पहुँचने के अवसर एक बराबर हैं। मैंडल ने अपने सांख्यिकी के अध्ययन का लाभ उठाते हुए, अपने परिणामों को प्रायिकता नियम से समझाने का प्रयास किया। अब हम प्रायिकता सिद्धांत के प्रकाश में एक लम्बे (TT) तथा एक वामन (tt) पौधे के बीच किए गए संकरण (चित्र 18.4) पर विचार करेंगे। प्रत्येक जनक पौधा अपनी संतति में केवल एक प्रकार का प्रतिनिधि दे सकता है। इसलिए F_1 संतति में सब का जीनप्ररूप (Tt) एक ही समान होगा। अब F_2 पीढ़ी के लिए प्रत्येक जनक Tt है इसलिए संतति में जनक से कोई एक प्रतिनिधि (T या t) आयेगा। किस जनक से कौन सा प्रतिनिधि प्राप्त हुआ के आधार पर निम्नलिखित चार सम्भव संयोग होंगे —

T नर जनक से,	T मादा जनक से—TT
T नर जनक से,	t मादा जनक से—Tt
t नर जनक से,	T मादा जनक से—Tt
t नर जनक से,	t मादा जनक से—tt

प्रत्येक संतति को किसी भी जनक से T या t प्राप्त करने का बराबर मौका है। इसलिए T को प्राप्त करने की प्रायिकता 1/2 तथा t को प्राप्त करने की प्रायिकता 1/2 है। प्रतिनिधियों के एक विशेष संयोग से प्राप्त करने की प्रायिकता, व्यष्टि प्रायिकता का ही परिणाम है। इसलिए F_2 संतति के चार प्रकारों की प्रायिकता निम्नलिखित होगी :

$$TT = \tfrac{1}{2}T \times \tfrac{1}{2}T = \tfrac{1}{4}$$
$$Tt = \tfrac{1}{2}T \times \tfrac{1}{2}t = \tfrac{1}{4}$$
$$Tt = \tfrac{1}{2}t \times \tfrac{1}{2}T = \tfrac{1}{4}$$
$$tt = \tfrac{1}{2}t \times \tfrac{1}{2}t = \tfrac{1}{4}$$

इनमें से पहले तीन वर्गों के पौधे लक्षणप्ररूपी रीति से एक समान होंगे जबकि केवल मध्य के दो वर्ग जीनप्ररूपी रीति से समान होंगे। अर्थात् F_2 लक्षणप्ररूपी अनुपात होगा—लम्बे:वामन = 3 : 1 तथा F_2 जीनप्ररूपी अनुपात होगा—समयुग्मजीप्रभावी(TT): विषमयुग्मजी (Tt): समयुग्मजी अप्रभावी(tt) = 1 : 2 : 1। इससे साफ जाहिर होता है कि युग्मविकल्पी का प्रत्येक सदस्य युग्मक बनने के दौरान एकदूसरे से विसंयोजित हो जाता है तथा संतति में यादृच्छिक रूप से स्थानान्तरित हो जाता है।

स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धांत

युग्मकों की शुद्धता के रूप विषयक बखान करने के अलावा, प्रभाविता तथा अप्रभाविता लक्षण और प्रतिनिधि तथा युग्मकों के बनने के दौरान विकल्पियों के विसंयोजन को ध्यान में रखते हुए मैंडल ने स्वतंत्र अपव्यूहन की धारणा व्यक्त की। उन्होंने विचार प्रकट किए कि एक प्रतिनिधि की वंशागति पर दूसरे प्रतिनिधि की वंशागति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में प्रत्येक जीन का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाते समय स्वतंत्र अपव्यूहन होता है। मैंडल, एक से अधिक लक्षणों में भिन्न पौधों के बीच संकरण के परिणामों की व्याख्या करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे। दो लक्षणों वाले संकरण को द्विसंकर संकरण कहते हैं जबकि एक लक्षण की भिन्नता वाले संकरण को एकसंकर संकरण कहते हैं।

मैंडल ने तद्रूप प्रजनन गोल तथा पीले बीजों (RRYY) वाले पौधों का संकरण तद्रूप प्रजनन झुर्रीदार तथा हरे बीजों (rryy) वाले पौधों से किया। सारे F_1 बीज गोल तथा पीले (RrYy) थे। युग्मकों की शुद्धता तथा प्रभाविता के आधार पर भी इसी परिणाम की आशा थी। F_2 बीज चार प्रकार के थे तथा प्रत्येक प्रकार की संख्या निम्नलिखित थी :

गोल तथा पीले	= 315
झुर्रीदार तथा पीले	= 101
गोल तथा हरे	= 108
झुर्रीदार तथा हरे	= 32

इन परिणामों की व्याख्या से निम्नलिखित अनुपात मिला :

गोल : झुर्रीदार = 423 : 133 = 3 : 1

पीले : हरे = 416 : 140 = 3 : 1

तीन चौथाई गोल बीज पीले हैं तथा एक चौथाई हरे। समान रूप से, तीन चौथाई झुर्रीदार बीज पीले हैं तथा एक चौथाई हरे। दूसरे शब्दों में, तीन चौथाई पीले बीज गोल हैं तथा एक चौथाई झुर्रीदार। यदि हम दोनों लक्षणों पर विचार करें तो प्रतिनिधियों के स्वतंत्र अपव्यूहन के आधार पर निम्नलिखित अपेक्षित एवं निरीक्षित आवृत्तियाँ होंगी :

गोल तथा पीले = 3/4 गोल × 3/4 पीले = 9/16
कुल योग — 315 में से
झुर्रीदार तथा पीले = 1/4 झुर्रीदार × 3/4पीले = 3/16
कुल योग—101 में से
गोल तथा हरे = 3/4 गोल × 1/4 हरे = 3/16
कुल योग—108 में से
झुर्रीदार तथा हरे = 1/4 झुर्रीदार × 1/4 हरे = 1/16
कुल योग—32 में से

इस प्रकार, द्विसंकर संकरण में लक्षणप्ररूपी अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 है। इसको हम दो एकसंकर संकरण के परिणामों के रूप में भी व्यक्त कर सकते हैं।

(3 गोल + 1 झुर्रीदार) × (3 पीले + 1 हरा) = 9 गोल तथा पीले + 3 गोल तथा हरे + 3 झुर्रीदार तथा पीले + 1 झुर्रीदार तथा हरा।

ये परिणाम तथा व्याख्या प्रायिकता नियम के साथ मेल खाते हैं। जिसके अनुसार दो या दो से अधिक वृत्तान्तों की संपाती आवृत्ति, स्वतंत्र वृत्तान्तों की आवृत्ति के परिणामों के बराबर है। मैंडल के एक द्विसंकर संकरण (जीन प्रतीकों के साथ) का चित्रण चित्र 18.5 में किया गया है। मैंडल ने एक त्रिसंकर संकरण भी किया (ऐसा संकरण जिसमें जनक तीन लक्षणों में भिन्न थे)। इसके परिणाम भी प्रतिनिधियों के स्वतंत्र अपव्यूहन के आधार पर ही मिले।

मैंडल की प्रतिनिधियों की वंशागति की परिकल्पना आज के गुणसूत्रों, सूत्री विभाजन और अर्धसूत्री विभाजन, डी० एन० ए० तथा जीन के ज्ञान से मेल खाती है। एक द्विगुणन जीव में गुणसूत्रों तथा मैंडल प्रतिनिधि (जीन) के दो पूर्ण समूह होते हैं। प्रत्येक विकल्पी, समयुग्मजी गुणसूत्रों के एक सदस्य में होता है। अर्धसूत्री विभाजन के दौरान युग्मक बनने के समय समयुग्मजी गुणसूत्रों के सदस्य अलग-अलग हो जाते हैं और साथ ही किसी भी लक्षण का संचालन करने वाले प्रतिनिधि युग्म भी अलग-अलग हो जाते हैं। प्रत्येक युग्म में से एक विकल्पी तथा एक गुणसूत्र युग्मक के द्वारा दिया जाता है। इसलिए गुणसूत्रों की द्विगुणन संख्या तथा प्रतिनिधियों के युग्म फिर से पूर्व अवस्था में आ जाते हैं। प्रतिनिधि गुणसूत्रों के ऊपर स्थित होते हैं जिसका परम्परागत पदार्थ, डी० एन० ए० है। प्रत्येक समयुग्मजी गुणसूत्रों तथा प्रतिनिधियों का स्वतंत्र अपव्यूहन होता है।

यद्यपि मैंडल के प्रयोग तथा प्रयोगों के सारांश आनुवंशिक विज्ञान की नींव है तथापि मैंडल के जीवन काल में इनके महत्व को अनुभव नहीं किया जा सका। प्रयोगों के परिणामों को 1866 में प्रकाशित किया गया था किन्तु किसी ने भी इस खोज पर ध्यान नहीं दिया। बाद में मैंडल की खोज से अनजान, स्वतंत्र रूप से शोध कार्य करते हुए तीन वैज्ञानिक ह्यूगो डि व्रीस, शेरमॉक तथा कोरिन 20 वीं सदी के प्रारम्भ में इन्हीं परिणामों पर पहुँचे। उन्होंने मैंडल के प्रकाशित वैज्ञानिक शोध निबन्धों को अध्ययन करते समय अचानक देखा तथा इसके महत्व को समझा। इन वैज्ञानिकों को मैंडलवाद की दुबारा खोज करने की प्रसिद्धि मिली।

F: गोल, पीले RRYY × झुर्रीदार, हरे rryy

युग्मक: RY, ry

F_1: गोल, पीले Rr Yy

नर युग्मक→ मादा युग्मक↓	RY	Ry	rY	ry
RY	गोल पीला RRYY	गोल पीला RRYy	गोल पीला RrYY	गोल पीला RrYy
Ry	गोल पीला RRYy	गोल हरा RRyy	गोल पीला RrYy	गोल हरा Rryy
F_2: rY	गोल पीला RrYY	गोल पीला RrYy	झुर्रीदार पीला rrYY	झुर्रीदार पीला rrYy
ry	गोल पीला RrYy	गोल हरा Rryy	झुर्रीदार पीला rrYy	झुर्रीदार हरा rryy

लक्षणप्ररूपी अनुपात:
9 गोल, पीले
3 गोल, हरे
3 झुर्रीदार, पीले
1 झुर्रीदार, हरा

चित्र 18.5 : गोल, पीले तथा झुर्रीदार हरे बीजों वाले शुद्ध प्रजनन पौधों में द्विसंकर संकरण के परिणाम तथा मैंडल द्वारा वंशागति के तरीके का विवरण।

प्रश्न

1. मैंडल को आनुवंशिकी विज्ञान का पिता क्यों कहा जाता है ?

2. मैंडल ने मटर के पौधे को पौधों के संकरण के प्रयोगों के लिए क्यों चुना ?

3. तुम्हें निम्नलिखित संकरणों से F_1 तथा F_2 पीढ़ियों में क्या मिलेगा ?

   (क) शुद्ध लम्बा X शुद्ध लम्बा
   (ख) शुद्ध लम्बा X शुद्ध वामन
   (ग) विषमयुग्मजी लम्बा X शुद्ध लम्बा

4. निम्नलिखित शब्दों को समझाओ :

   (क) विकल्पी (ख) जीनप्ररूपी (ग) लक्षणप्ररूपी (घ) विषमयुग्मनज तथा (ङ) समयुग्मनज

5. द्विसंकर संकरण की चित्र द्वारा व्याख्या करो।

6. मैंडल द्वारा खोजे हुए वंशागति के सिद्धान्तों को बताओ।

7. स्वतंत्र अपव्यूहन का अर्धसूत्री आधार क्या है ?

8. मैंडलवाद की दोबारा खोज करने वाले कौन थे ?

9. मैंडल को वंशागति के सिद्धान्तों का आधार जानने में सफलता क्यों मिली जबकि मैंडल से पूर्व काम करने वाले लोगों को असफलता मिली थी ?

अध्याय 19

सहलग्नता तथा विनिमय

मेंडल का युग्मों की शुद्धता, एक विकल्पी की दूसरे विकल्पी पर प्रभाविता तथा विकल्पियों का विसंयोजन संबंधी विचार अभी भी ठीक बैठता है किन्तु स्वतंत्र अपव्यूहन के नियमों को थोड़ा सा रूपांतरित किया गया है। इस नियम के अनुसार यदि हम एक ही समय में दो या दो से अधिक प्रतिनिधियों की वंशागति को लें तो युग्मकों में उनका बँटवारा तथा अगली पीढ़ी की संतति एक दूसरे से स्वतंत्र होती है। मेंडलवाद की पुनः खोज के तुरन्त बाद बेटसन तथा पुनेट नामक वैज्ञानिकों ने महसूस किया कि पिसम सेटिवम (मटर) में केवल सात ही ऐसे गुणसूत्र-युग्म हैं जो स्वतंत्र अपव्यूहन दिखा सकते थे लेकिन इस पौधे में काफी सारे प्रतिनिधि या जीन होने चाहिए जो इस पौधे के बिभिन्न लक्षणों को संचालित करते हैं। यदि जीन, गुणसूत्रों के ऊपर हैं तो प्रत्येक गुणसूत्र के ऊपर अनेक जीन होने चाहिए। उन जीनों को जो एक ही गुणसूत्र में स्थित हैं, स्वतंत्र अपव्यूहन नहीं दर्शाना चाहिए। इसके अलावा इन जीनों की वंशागति एक साथ होनी चाहिए। इस तथ्य को मॉर्गन ने 1910 में फलमक्खी (ड्रोसोफिला मेलेनोगास्टर) में प्रजनन प्रयोग करके प्रमाणित किया।
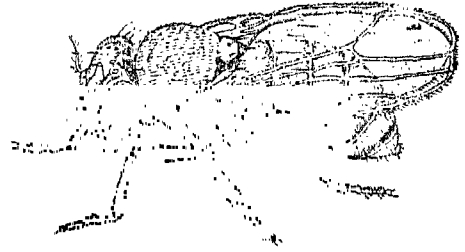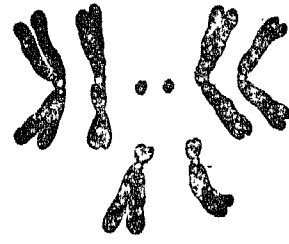
चित्र 19.1 : नर (बायें) तथा मादा (दायें) फलमक्खी अपने पूरक गुणसूत्र के साथ (नीचे)।

ड्रोसोफिला मेलेनोगास्टर, आनुवंशिक प्रयोगों के लिए बहुत ठीक तथा अच्छा जीव है क्योंकि इसे प्रयोगशाला में बड़ी संख्या में पैदा किया जा सकता है। इसमें नयी पीढ़ी आने में केवल 10-12 दिन लगते हैं (जबकि मटर में एक वर्ष लगता है) तथा प्रत्येक सहवास के बाद बड़ी संख्या में संतति पैदा होती है। गुणसूत्रों के ऊपर जीनों की स्थिति का स्पष्ट प्रमाण मॉर्गन (1910) तथा ब्रिजेज (1916) ने फलमक्खी पर प्रयोग करके दिया। इन वैज्ञानिकों को पहले के वैज्ञानिकों के शोध कार्य तथा खोज से सहायता मिली –जैसे फलमक्खी की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों के चार युग्म होते हैं तथा नर फलमक्खी में चार युग्मों में से एक युग्म के दो सदस्य आकृति में असमान होते हैं (चित्र 19.1)। गुणसूत्रों के वे तीन युग्म जो नर तथा मादा मक्खी में समान होते हैं— अलिंगसूत्र कहलाते हैं। चौथे युग्म के सदस्यों को लिंग गुणसूत्र कहते हैं। नर फलमक्खी में लिंग गुणसूत्र विषमरूपी होते हैं—X तथा Y। मादा में दो X-गुणसूत्र होते हैं। मानवजाति में 22 युग्म अलिंगसूत्र के होते हैं। तथा एक युग्म लिंग गुणसूत्रों का होता है— मादा में XX तथा नर में XY। इस प्रकार, फलमक्खी तथा मानवजाति में भी मादा द्वारा पैदा किए समस्त अण्डों में से हरएक अण्डे में एक X-गुणसूत्र होता है किन्तु नर द्वारा उत्पादित समस्त शुक्राणुओं में से 50 प्रतिशत X-गुणसूत्र होते हैं तथा 50 प्रतिशत Y-गुणसूत्र होते हैं। यदि निषेचन X-गुणसूत्र वाले शुक्राणु ने किया है तो XX युग्मजी बनता है जो बाद में मादा सन्तान बनाता है। यदि निषेचन Y-गुणसूत्र वाले शुक्राणु से हुआ है तो XY युग्मजी बनता है जो नर सन्तान बनाता है।

नर के X तथा Y गुणसूत्रों की भिन्न-भिन्न आकृति के कारण उनका रास्ता अगली पीढ़ी के नर तथा मादा तक सरलता से देखा जा सकता है। नर के X-गुणसूत्र वंशागति के दौरान F_1 पीढ़ी की मादाओं में पहुँचते हैं तथा बाद में F_2 पीढ़ी के नरों तक पहुँचते हैं। अगली पीढ़ियों में ये एक लिंग से दूसरे लिंग में पहुँचते रहते हैं। इस प्रकार की आड़ी-तिरछी वंशागति चित्र 19.2 में दिखाई गई हैं जिसमें नर X-गुणसूत्र का पथ द्वितीय पीढ़ी तक दिखाया गया है। मॉर्गन ने देखा कि कुछ लक्षण जैसे फलमक्खी की आँखों का रंग, आड़ी तिरछी वंशागति दर्शाता है। सामान्य फलमक्खी की आँखों का रंग लाल होता है। मॉर्गन ने एक ऐसी फलमक्खी देखी जिसकी आँखें सफेद थीं। लाल आँखों वाली मादाओं तथा सफेद आँखों वाले नर के बीच संकरण करने से केवल लाल आँखों वाली संतति मिली। किन्तु F_2 पीढ़ी में, कुल योग का 25% या नर संतति का 50% मक्खियाँ सफेद आँखों वाली थीं। इन परिणामों के आधार पर मॉर्गन ने विचार प्रकट किया कि फलमक्खी में सफेद आँखों का जीन X- गुणसूत्र पर स्थित है (क्योंकि दोनों आड़ी-तिरछी वंशागति दर्शाते हैं) तथा नर के Y-गुणसूत्र में इस जीन का विकल्पी नहीं होता, जबकि एक सामान्य मादा के X-गुणसूत्र में एक प्रभावी विकल्पी होता है जो कि लाल आँख के लक्षण तय करता है। F_1 मादायें विषमयुग्मजी होती हैं, इसलिए उनकी आँखें लाल होती हैं। मॉर्गन के द्वारा प्राप्त किए गए परिणामों को एक चित्र द्वारा समझाया जा सकता है। नर जनक के X-गुणसूत्र पर स्थित जीन, जो सफेद आँख के लक्षण का नियंत्रण करता है (w) तथा मादा जनक के X-गुणसूत्र पर स्थित जीन की लाल आँख के लक्षण का नियंत्रण करता है (W)। मॉर्गन के द्वारा किए गए प्रयोग में द्वितीय पीढ़ी की समस्त सफेद आँखों वाली मक्खियाँ नर थीं (यद्यपि समस्त नर सफेद आँखों वाले नहीं थे)। इसका अर्थ हुआ कि सफेद आँखों का लक्षण सदैव नर लिंग से सम्बन्धित था। आज तक लगभग 150 लिंग सहलग्न लक्षणों को फलमक्खी में खोजा जा चुका है। ये सब X-गुणसूत्र पर स्थित होने चाहिए। मानवजाति में हीमोफिलिआ, वर्णान्धता तथा लगभग 50 दूसरे लक्षण लिंग सहलग्न हैं। मॉर्गन के एक छात्र सी. बी ब्रिजेज ने जीन की गुणसूत्रों पर स्थिति के विषय में और भी प्रमाण दिए। यह जीव विज्ञान की एक बड़ी खोज थी। इस खोज से यह भी अनुभव हुआ कि दो विपरीत विषयों में हो रहे शोध कार्य भी मूल संकल्पना के बढ़ाने में सहयोग दे सकते हैं। गुणसूत्रों तथा लक्षणों की वंशागति के कोशिका विज्ञान सम्बंधी प्रेक्षणों को ब्रिजेज ने 1916 में सहसंबन्धित किया और इस प्रकार कोशिकानुवंशिकी विज्ञान के प्रारम्भ की घोषणा हुई। इससे पहले कोशिकाविज्ञान तथा आनुवंशिकी विज्ञान को स्वतंत्र विषय माना जाता था।
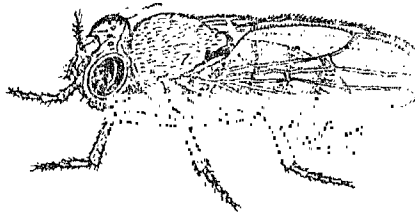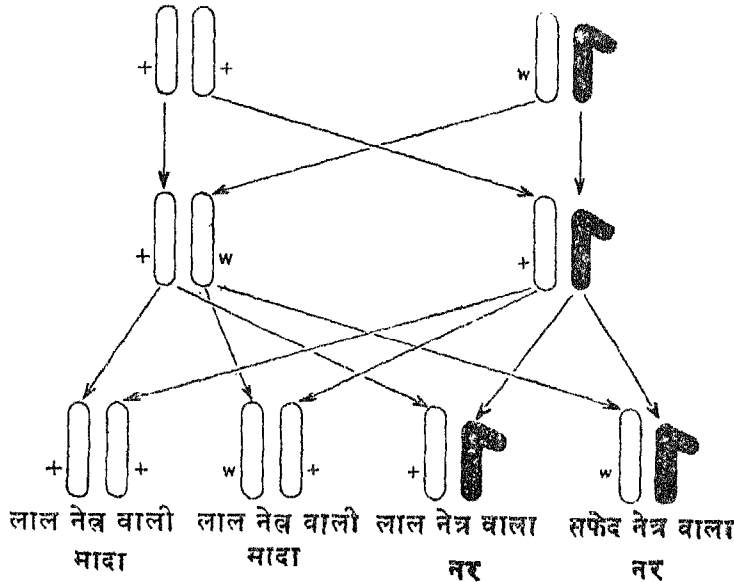
चित्र 19.2 : विषमयुग्मजी जनक से बिना विनिमय तथा विनिमय के उपरान्त आड़ी तिरछी वंशागति ।

लिंग गुणसूत्र केवल एक होता है किन्तु लिंग-सहलग्न लक्षण अनेकों होते हैं। इसलिए समस्त लिंग-सहलग्न जीन उस गुणसूत्र के ऊपर स्थित होने चाहिए जो लिंग निर्धारण करेगा। यही अलिंग सूत्रों के लिए भी सत्य है। किसी भी जीव में जीनों की संख्या गुणसूत्रों की संख्या से बहुत अधिक होती है। इसका अर्थ हुआ कि एक गुणसूत्र के ऊपर अनेक जीन स्थित होने चाहिए। वे समस्त जीन जो एक गुणसूत्र के ऊपर स्थित हैं, एक दूसरे से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित रहते हैं क्योंकि इन सब जीनों की वंशागति साथ-साथ होगी। जीनों का यह वर्ग सहलग्नता वर्ग बनाता है। सहलग्नता वर्ग की संख्या प्रजनन प्रयोगों द्वारा निर्धारित की जा सकती है। गुणसूत्रों की संख्या कोशिका अध्ययन के द्वारा ज्ञात की जा सकती है। सहलग्नता तथा गुणसूत्रों की संख्या तदनुरूपी होती है।

मटर तथा फलमक्खी पर किए गए प्रजनन प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि सहलग्न जीन भी अगली पीढ़ियों में सदैव साथ-साथ नहीं रह पाते। कोशिकाविज्ञान सम्बंधी प्रमाणों के आधार पर, अर्धसूत्रीविभाजन I की पूर्वावस्था में समजाती गुणसूत्रों के बीच में, अर्धगुणसूत्रों के भागों की अदला बदली होती है। इस विनिमय के परिणामस्वरूप माता तथा पिता के गुणसूत्रों के बीच में जीनों की अदला बदली हो जाती है। बाद में जनकों के प्रकार के अलावा, नये प्रकार के युग्मक बन जाते हैं। इन युग्मकों के पास, उसी सहलग्नता वर्ग के ऊपर जीनों के नये संयोजन होते हैं जिनमें से कुछ जीन नर तथा कुछ मादा जनक से होते हैं। विनिमय के परिणामों को आकृति द्वारा चित्र 19.3 में दिखाया गया है। प्रभावी जीन A तथा B एक जनक से मिलते हैं तथा अप्रभावी जीन a तथा
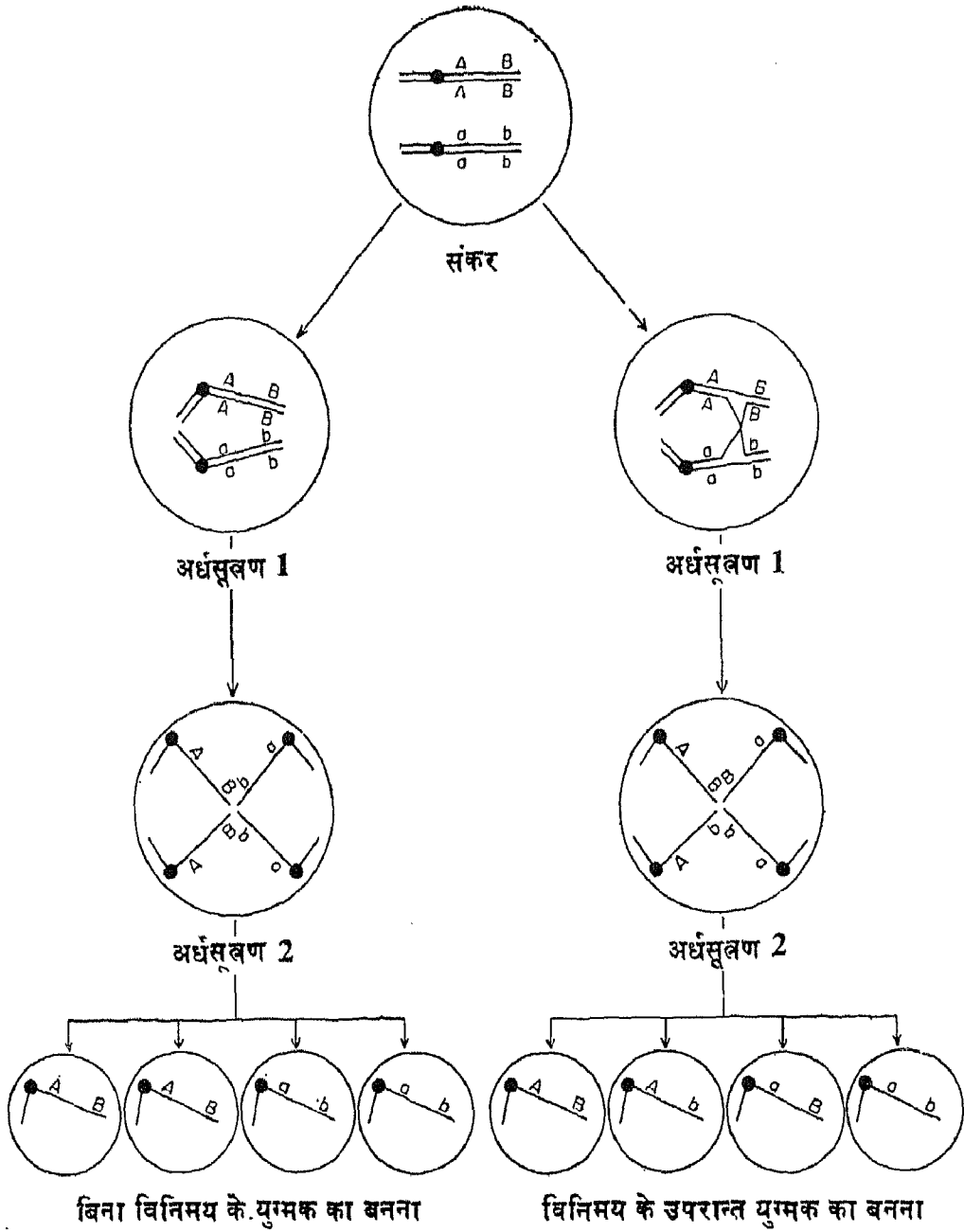
चित्र 19.3 : विषमयुग्मजी जनक से बिना विनिमय तथा विनिमय के उपरांत उत्पन्न युग्मक के प्रकार।

b दूसरे जनक से मिलते हैं। संकर विषमयुग्मजी होता है तथा दो जीनों के बीच में विनिमय की अनुपस्थिति में, केवल दो प्रकार के युग्मक (AB तथा ab) बना सकता है। इसके विपरीत, यदि इन दोनों जीनों के बीच में विनिमय होता है तो चार प्रकार के युग्मक (AB, ab, Ab तथा aB) बनते हैं। बिना विनिमय के जीन A तथा B (या जीन a तथा b) सहलग्न रहते हैं तथा अगली पीढ़ी में साथ-साथ चले जाते हैं। विनिमय के परिणामस्वरूप वे अलग-अलग हो जाते हैं तथा भिन्न संतति में चले जाते हैं। इस प्रकार, सहलग्नता तथा विनिमय एक दूसरे के वैकल्पिक हैं। यदि सहलग्नता को विनिमय के समान ही अवसर मिले, अर्थात यदि विनिमय केवल 50% में हो तो चार प्रकार के युग्मक बराबर आवृत्ति (AB=25%, ab=25%, Ab=25% तथा aB=25%) में एक विषमयुग्मजी जीव से मिलेंगे। ऐसी दशा में जीन स्वतंत्र अपव्यूहन दर्शाते हैं चाहे वे एक ही गुणसूत्र के ऊपर स्थित हों। इस प्रकार, जीनों का स्वतंत्र अपव्यूहन निम्नलिखित दो दशाओं में होता है :

1. यदि जीन भिन्न भिन्न गुणसूत्रों पर स्थित हों, तथा

2. यदि जीन एक ही गुणसूत्र पर हों किन्तु एक दूसरे से दूर हों जिससे 50% युग्मकों में वे विनिमय के परिणामस्वरूप अलग-अलग हो जाते है।

मैंडल अपने प्रयोगों के लिए लक्षणों का चुनाव करने में भाग्यशाली थे क्योंकि उनके द्वारा अध्ययन किए हुए सात लक्षण चार भिन्न भिन्न गुणसूत्रों पर स्थित हैं। वे लक्षण जो एक ही गुणसूत्र में स्थित हैं, एक दूसरे से पर्याप्त दूर हो जाते हैं। यद्यपि मैंडल को इन तथ्यों का पता नहीं था, तथापि ये तथ्य उन परिणामों के जिम्मेदार थे जिनके कारण स्वतंत्र अपव्यूहन के नियम बने।

एक ही गुणसूत्र पर स्थित जीन यदि पास-पास हों तो उनके पृथक होने की आवृत्ति 50% से कम ही होगी। इसलिए संतति जनक के बहुत समान होगी। कभी कभी दो जीन इतने पास-पास होते हैं कि विनिमय सम्भव ही नहीं होता। इस दशा में केवल जनक की भाँति संतानें होंगी। यदि जीन गुणसूत्र के ऊपर एक दूसरे से कुछ दूरी पर स्थित हैं तो विनिमय की बहुत सम्भावना होती है। दूसरे शब्दों में विनिमय की आवृत्ति गुणसूत्र के ऊपर जीनों की दूरी या जीनों के बीच में सहलग्नता की शक्ति की सूचक है। विनिमय तथा सहलग्नता इस विचार पर आधारित है कि गुणसूत्र के ऊपर जीन एक लाइन में व्यवस्थित हैं। लक्षणों के नये संयोजन वाली संतति (अर्थात जनक से भिन्न) को पुनर्योगज कहते हैं। ये या तो विनिमय के परिणामस्वरूप, या जनकों में युग्मक बनने के दौरान पुनः संयोजन से पैदा हो जाते हैं। विनिमय की आवृत्ति को कोशिका वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा अर्धसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था I के दौरान बने हुए काइएज्मेटा की संख्या को पता लगाकर तय किया जा सकता है। पुनः संयोजन के प्रतिशत को संतति में जनकों के प्रकार तथा पुनर्योगजों के प्रकार की आवृत्ति का निर्धारण करके परिकलन किया जा सकता है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक विनिमय (या काइएज्मा) दो जनकों की तरह के तथा दो पुनर्योगजों की तरह के युग्मक बनाता है (चित्र 19.4)। इसका कारण यह है कि एक विशेष विनिमय बिन्दु पर केवल दो अर्धगुणसूत्र के बीच में भागों की अदला बदला होती है, बाकी दो में नहीं। इस प्रकार 50% पुनर्योगज युग्मक को बनाने के लिए सभी माता कोशिकाओं (जिनमें अर्धसूत्री विभाजन हो रहा है) में विनिमय होना चाहिए। मॉर्गन तथा स्टर्टवेन्ट को इस सदी के दूसरे दशक में महसूस हुआ कि गुणसूत्र के ऊपर जीन की सम्बन्धित दूरी को पुनर्योगजों की आवृत्ति को निर्धारित

चित्र 19.4 : चित्र यह दिखाने के लिए कि विनिमय के परिणामस्वरूप 50% युग्मक जनक प्रकार के तथा 50% पुनर्योगज प्रकार के बनते हैं।
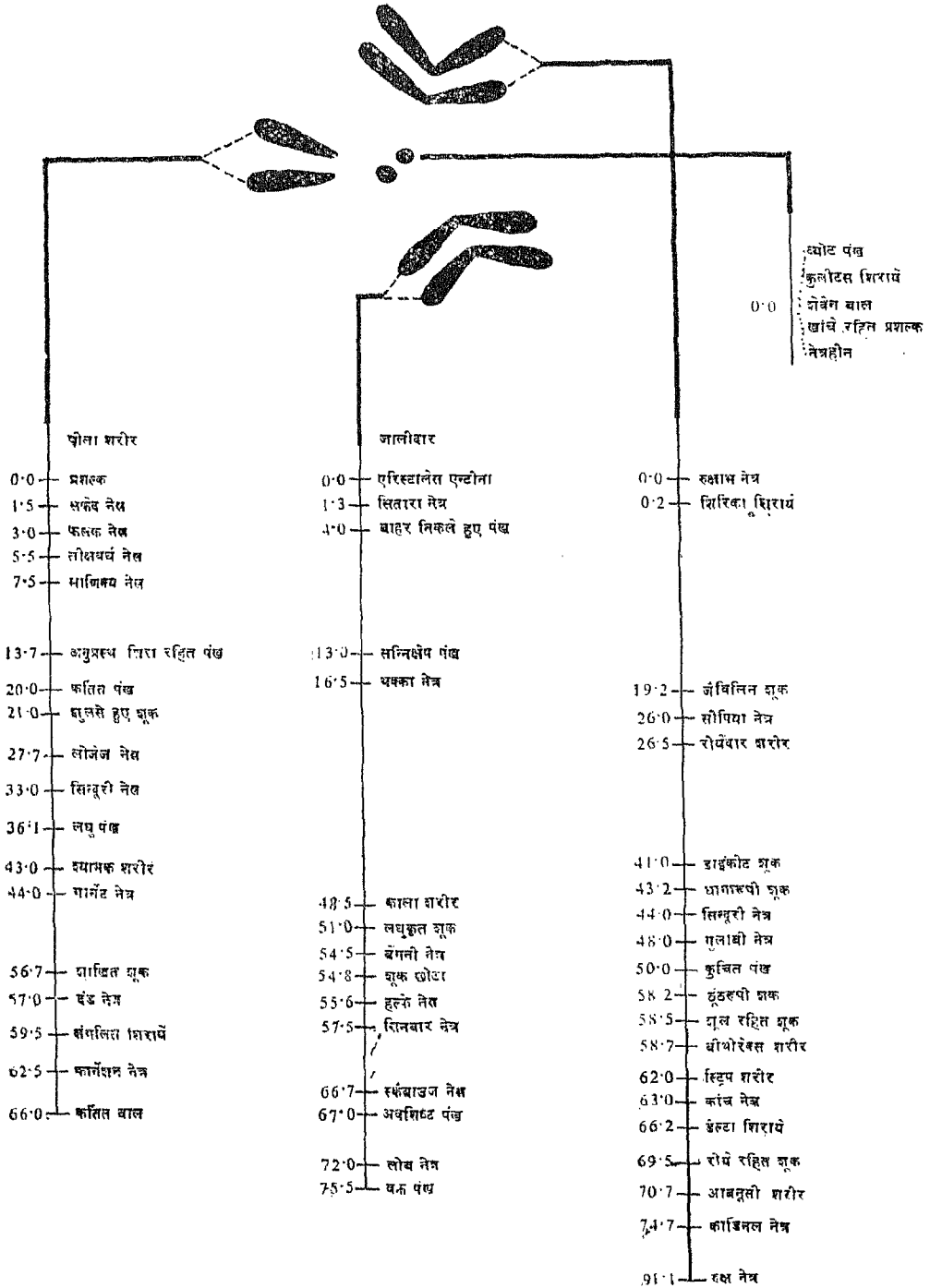
चित्र 19.5 : फलमक्खी के गुणसूत्र तथा उनके संगत सहलग्नता चित्र।

करके आँका जा सकता है। इसके आधार पर गुणसूत्रों के सहलग्नता चित्र बनाये जा सकते हैं, जो विभिन्न जीनों के बीच की सम्बन्धित दूरी तथा क्रम को चित्रित कर सकते हैं। सहलग्नता चित्र, रोड चित्र की ही भाँति हैं जो भिन्न भिन्न स्थानों के बीच की सम्बन्धित दूरी का संकेत करते हैं। यह एक मनोरंजक बात है कि सहलग्नता चित्रों को, जीनों या गुणसूत्रों को देखे बिना ही बना सकते हैं। यह उचित संकरणों को बनाकर तथा संतति की विशेषताओं की सावधानी से व्याख्या करके सम्भव है। सहलग्नता चित्र सबसे पहले फलमक्खी (चित्र 19.5) तथा मक्के के लिए
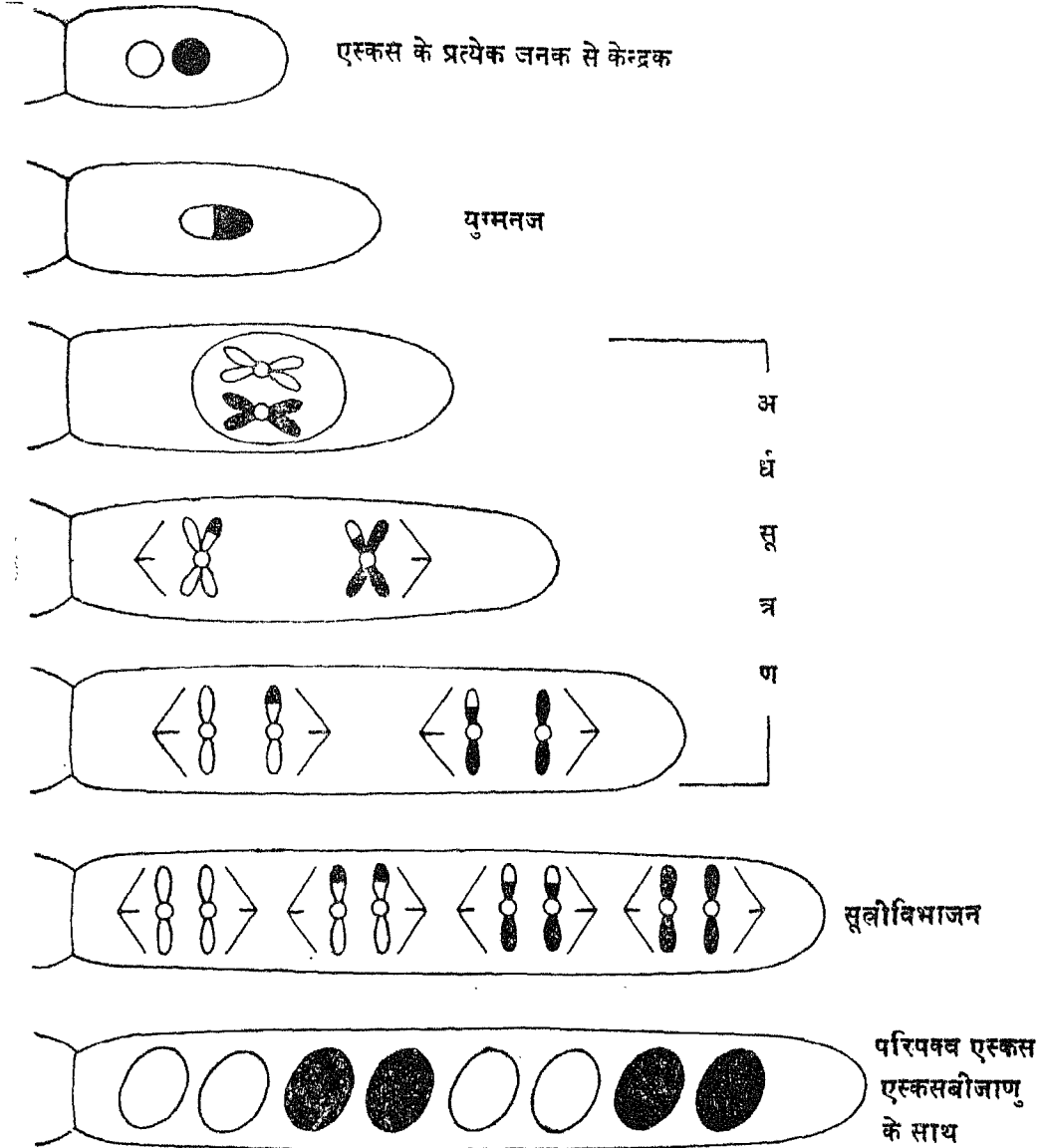
चित्र 19.6 : एक एस्कस में केन्द्रकीय तथा अर्धसूत्री तथा सूत्री विभाजनों के संगलन के परिणामस्वरूप एस्कस बीजाणुओं की 2:2:2:2: व्यवस्था।

बनाये गये थे। अब तो विभिन्न पेड़ों तथा जानवरों के लिए सहलग्नता चित्र प्राप्त हैं। मानवजाति में एक दिए हुए समय के अन्दर नियन्त्रित प्रजनन प्रयोग सम्भव नहीं है। फिर भी इसके सहलग्नता चित्र प्राप्य हैं। यह अभिजात व्याख्या तथा गणना और जैव रसायन की नई तकनीकों के प्रयोग से सम्भव हुआ। इन सहलग्नता चित्रों का विस्तार गतिपूर्वक हो रहा है।

विनिमय एक ऐसी क्रिया है जिसमें समजाती गुणसूत्रों के बीच में, अर्ध गुणसूत्रों के भागों की अदला बदली के कारण माता तथा पिता के जीन तथा गुणसूत्र पुनः अप-व्यूहित हो जाते हैं। यह अर्धसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था I में होता है जब समजात गुणसूत्र युग्म बनते हैं। युग्मता युग्मपट्ट अवस्था में प्रारम्भ होकर स्थूलपट्ट अवस्था के आरम्भ तक पूर्ण हो जाती है। स्थूलपट्ट अवस्था के दौरान इसमें दो अर्ध गुणसूत्र नज़र आते हैं। इस प्रकार, विनिमय, चार लड़ों वाली अवस्था में होता है। किन्तु किसी भी एक दिए हुए बिन्दु पर चार लड़ों में से केवल दो लड़ें विनिमय क्रिया में भाग लेती हैं। अर्धसूत्री विभाजन के परिणामस्वरूप, चार केन्द्रक बन जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में चार अर्ध गुणसूत्रों में से एक होता है। न्यूरोस्पोरा नामक फफूंदी में अर्धसूत्री विभाजन के चार उत्पादन एक दूसरे के ऊपर एक लाइन में व्यवस्थित रहते हैं। सूत्री विभाजन के कारण उनमें से प्रत्येक दो केन्द्रक बनाते हैं। आठों केन्द्रक एस्कस बीजाणु में विभेदित हो जाते हैं जो एक नलिकाकार एस्कस में एक लाइन में उसी क्रम में व्यवस्थित रहते हैं जिस क्रम में वे पैदा हुए थे। एस्कस बीजाणु 2:2:2:2 क्रम में रहते हैं (चित्र 19.6) क्योंकि प्रत्येक युग्म अर्धसूत्री विभाजन के पश्चात् सूत्री विभाजन से बना है। एस्कस बीजाणु की व्याख्या करके, प्रत्येक अधसूत्री विभाजन के उत्पादन तथा अर्धसूत्री विभाजन के दौरान अर्ध
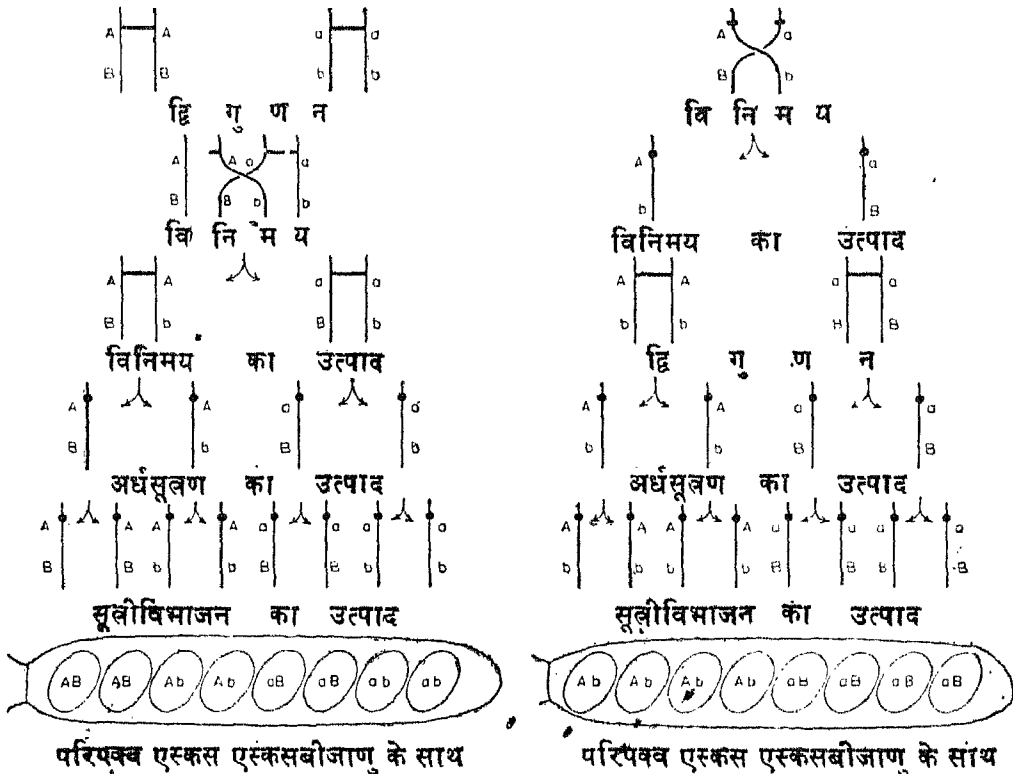
चित्र 19.7 : न्यूरोस्पोरा में 4-लड़ (बायें) तथा 2-लड़ (दायें) अवस्था में विनिमय के उपरान्त एस्कस बीजाणुओं की व्यवस्था।

गुणसूत्रों के अभिविन्यास का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रयोजन के लिए न्यूरोस्पोरा बहुत ही उचित है क्योंकि बहुत से जीवों में से एक यही ऐसा जीव है जिसमें अर्धसूत्री विभाजन से उत्पादित समस्त कोशिकायें जीवित रहती हैं, उन्हें पुन: प्राप्त कर सकते हैं तथा उनकी व्याख्या कर सकते हैं। इस विशेषता को चित्र 19.7 में अच्छी प्रकार से चित्रित किया गया है। यह तथ्य कि न्यूरोस्पोरा में एस्कस बीजाणु 2:2 में व्यवस्थित रहते हैं, यह दर्शाता है कि विनिमय चार लड़ों वाली अवस्था में होता है तथा एक दिये हुए स्थान पर चार अर्ध गुणसूत्र में से केवल दो अर्धगुणसूत्र भाग लेते हैं। यदि ऐसा ना होता तो एस्कस बीजाणुओं की व्यवस्था 4:4 होती। न्यूरोस्पोरा आनुवंशिक प्रयोगों के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसकी उत्पत्ति प्रयोगशाला में एक निश्चित माध्यम में की जा सकती है। इसका जीवन चक्र बहुत ही छोटा होता है तथा कायिक पक्ष अगुणित होता है।

प्रश्न

1. सहलग्नता क्या है ? इसका स्वतंत्र अपव्यूहन तथा विनिमय से क्या सम्बन्ध है ?
2. आनुवंशिक विज्ञान के आरम्भ के प्रयोगों के लिए फलमक्खी को क्यों चुना गया ?
3. यह कैसे सिद्ध किया गया कि जीन गुणसूत्रों पर स्थित हैं ?
4. नर तथा मादा फलमक्खी के गुणसूत्र प्ररूपों का चित्रण करो तथा इन दोनों में भिन्नता बताओ।
5. आड़ी-तिरछी वंशागति क्या है ? इसका महत्व क्या है ?
6. सहलग्नता वर्ग क्या है ?
7. एक ऐसे जीव के जिसका जीन प्ररूपी Ab/aB हो, दो जीनों के बीच में विनिमय से तथा बिना विनिमय के कितने प्रकार के युग्मक बनेंगे ?
8. निम्नलिखित में क्या सम्बन्ध है (क) दो जीनों के बीच की स्थूल दूरी, (ख) उनके बीच में सहलग्नता, तथा (ग) उनके बीच में विनिमय ?
9. सहलग्नता चित्र क्या है ? इसका आधार क्या है ? इसको कैसे बनाया जा सकता है ?
10. पूर्वावस्था I की अवस्थाओं का चित्रण यह प्रदर्शित करते हुए करो कि किस अवस्था में विनिमय होता है तथा इसके परिणाम क्या हैं।
11. वह कौन सा प्रमाण है जिससे तुम सिद्ध कर सकते हो कि विनिमय दो लड़ों वाली अवस्था में नहीं अपितु चार लड़ों वाली अवस्था में होता है ?

अध्याय 20

जीन अभिव्यक्ति तथा वंशागति

जीन, गुणसूत्रों के ऊपर एक लाइन में व्यवस्थित रहते हैं। गुणसूत्रों का परम्परागत पदार्थ डी० एन० ए० या बेसों का क्रम है। इसलिए जीन और कुछ नहीं वरन बेसों का एक क्रम है। भिन्न भिन्न जीनों में बेस का क्रम भी भिन्न भिन्न होता है। अधिकतर जीन पूरक आर० एन० ए० के संश्लेषण के लिए ब्लू प्रिंट हैं। इसमें से कुछ आर० एन० ए० कोशिकांगों के संरचनात्मक घटक हैं जैसे राइबोसोम, कुछ tRNA अणु की भाँति कार्य करते हैं (एमिनो अम्लों को कुण्ड से प्रोटीन संश्लेषण के स्थान तक पहुँचाना) तथा कुछ प्रोटीन के संश्लेषण के लिए संदेशवाहक की भाँति प्रयुक्त होते हैं। जीन के अन्तिम कार्य को सबसे पहले देख तथा पहचान लिया गया था। बीडिल तथा टेटम (1948) ने डबलरोटी की फफूंदी—न्यूरोस्पोरा क्रासा पर प्रयोग करते हुए देखा कि इनजाइम की सक्रियता की अनुपस्थिति में भी जीन की संरचना में वंशागत परिवर्तन नहीं हो सकते हैं। इस फँफूंद से मिले परिणामों के आधार पर उन्होंने प्रसिद्ध परिकल्पना एक जीन: एक एनजाइम की स्थापना की जिसके अनुसार प्रत्येक जीन, किसी विशेष प्रोटीन अथवा विशेष एनजाइम के संश्लेषण के लिए उत्तरदायी है। इस काम के लिए बीडिल तथा टेटम को 1958 का मेडिसन के नोबल प्राइज का भाग मिला। उनके योगदान ने जैव रासायनिक आनुवंशिकी विज्ञान की नींव डाली। प्रोटीन संरचना के नवीनतम अध्ययन के अनुसार कई प्रकार के प्रोटीन में एक से अधिक बहुपेप्टाइड शृंखला होती है। विस्तारपूर्वक किए गए आनुवंशिक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि एक से अधिक जीन प्रोटीन संश्लेषण के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं। इसलिए सामान्य रूप से यह विश्वास कर लिया गया है कि एक जीन एक बहुपेप्टाइड शृंखला के संश्लेषण के लिए उत्तरदायी है या फिर 'एक जीन—एक बहुपेप्टाइड' कथन सत्य के अधिक पास है। कुछ वैज्ञानिकों ने उस बेस क्रम को जो एक बहुपेप्टाइड शृंखला या एक tRNA या एक राइबोसोमल आर० एन० ए० (rRNA) अणु के लिए कोड करता है, को सिस-ट्रोन या समपार नाम दिया। इसलिए समपार को गुणसूत्र का फलनीय एकक कहते हैं।

जीन अथवा समपार, जिनके पास tRNA, rRNA तथा प्रोटीन (कुछ प्रोटीन जो अभिक्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं, एनजाइम के नाम से जाने जाते हैं जबकि दूसरे प्रोटीन कोशिकांगों के संरचनात्मक घटक बनाते हैं) के लिए आनुवंशिक सूचनायें होती हैं संरचनात्मक जीन के नाम से जाने जाते हैं। कई संरचनात्मक जीनों की गतिविधियाँ नियंत्रक जीनों द्वारा नियन्त्रित होती हैं। नियंत्रक जीन, संचालक जीनों के द्वारा कार्य करते हैं (एनजाइम का अध्याय देखें)।

यद्यपि जीन अभिव्यक्ति का विस्तारपूर्वक अध्ययन हाल ही में किया गया है तथापि यह तथ्य कि जीन तथा एनजाइम के बीच में गहरा सम्बन्ध है, इस शताब्दी के आरम्भ में ही ज्ञात हो चुका था। एक ब्रिटिश डाक्टर आरचीबाल्ड गेरोड ने 1909 में खोज की कि मनुष्य में

ऐल्कैप्टनमेह की वंशागति मैंडलीय प्रतिनिधियों की वंशागति के समान है। ऐल्कैप्टनमेही के मूत्र का रंग ऐल्कैप्टोन की उपस्थिति के कारण गहरे रंग का होता है। एक सामान्य मनुष्य में एक ऐसा एनजाइम होता है जो ऐल्कैप्टोन के आक्सीकरण को उत्प्रेरित करके कार्बनडाइआक्साइड में बदल देता है। ऐल्कैप्टोनमेही में, इसलिए, अप्रभावी अथवा सदोष जीनों का एक युग्म होता है। मैंडलीय वंशागति तथा बड़ी संख्या में उपापचय की अंतर्जात त्रुटि के एनजाइम संबंधी दोष इस शताब्दी के आरम्भ में ही भली भाँति ज्ञात थे। किन्तु जीन तथा एनजाइम के बीच में सीधा संबंध, फलमक्खी पर किए गए प्रयोगों के परिणाम स्वरूप ही स्थापित किया जा सका। अनेकों वैज्ञानिकों ने इस शताब्दी के चौथे दशक में बताया कि फलमक्खी में सामान्य लाल आँख के वर्णक का संश्लेषण कई एनजाइम द्वारा उत्प्रेरित क्रियाओं के द्वारा होता है। प्रत्येक ऐसे एनजाइम के लिए एक जीन होता है। बीडिल तथा टेटम ने भी न्यूरोस्पोरा में इस प्रकार के प्रयोग किए तथा अंत में 'एक जीन: एक एनजाइम' परिकल्पना की पुष्टि की। इस प्रकार जीन, कोशिकाओं के कार्यों का नियंत्रण कुछ एनजाइमों का संश्लेषण करके करते हैं। ये एनजाइम कोशिका की रासायनिक क्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं। यही क्रियायें जीन की लक्षणप्रारूपी विशेषताओं को निर्धारित करती हैं।

मैंडल के सिद्धांतों को जीन के एनजाइमरूपी कार्यों के आधार पर समझाया जा सकता है। प्रभावी जीन, सक्रिय बहुपेप्टाइड के संश्लेषण का नियंत्रण करते हैं। जबकि अप्रभावी जीन अपूर्ण, दोषयुक्त या निष्क्रिय बहुपेप्टाइड के लिए कोड करते हैं। यही कारण है कि प्रभावी विकल्पी, अपने अप्रभावी विकल्पी की उपस्थिति में भी एक विशेष लक्षणप्ररूपी को व्यक्त कर सकता है (उदाहरण के लिए—विषमयुग्मजी अवस्था में)। सामान्य समयुग्मजी जीव में सक्रिय ऐल्कैप्टोन आक्सीडेस के लिए दो जीन होते हैं—प्रत्येक समजात गुणसूत्र पर एक जीन। विषमयुग्मजी जीवों में एक प्रभावी जीन होता है जो सक्रिय ऐल्कैप्टोन ऑक्सीडेस बनाता है, जबकि अप्रभावी रोगियों में दो दोषपूर्ण जीन होते हैं और दोनों ही निष्क्रिय एनजाइम के बनने का नियंत्रण करते हैं।

अधिकतर जीन या तो पूर्णरूप से प्रभावी होते हैं या पूर्ण रूप से अप्रभावी। एक अकेला जीन उतना ही प्रभाव डाल सकता है जितना दो जीन मिल कर डालेंगे। इसके अतिरिक्त विषमयुग्मजी तथा समयुग्मजी जीवों का लक्षणप्ररूपी एक समान ही होता है। इस क्रिया के कुछ अपवाद भी हैं। कभी कभी जीनों का प्रभाव मात्रात्मक होता है। उदाहरण के लिए मिराबिलिस जालपा में फूल का रंग। समयुग्मजी अप्रभावी पौधों में फूलों का रंग सफेद होता है क्योंकि फूल का वर्णक नहीं बनता। विषमयुग्मजी पौधे, समयुग्मजी प्रभावी पौधों के मुकाबले में केवल आधा वर्णक संश्लेषणित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनके फूलों का रंग गुलाबी होता है—यानी लाल और सफेद के बीच का रंग। आनुवंशिक आधार पर मिराबिलिस में लाल फूलों वाला जीन अपने अप्रभावी विकल्पी के ऊपर पूर्ण रूप से प्रभावी रहता है। वैज्ञानिकों को इस रचना से बहुत लाभ है। केवल एक बार देखने से समयुग्मजी प्रभावी तथा विषमयुग्मजी जीवों को पहचाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसे में जीन प्ररूपी तथा लक्षण प्ररूपी अनुपात F_2 तथा बाद की पीढ़ियों में एक ही रहता है (चित्र 20.1)

अनेकों जीन जैसे मिराबिलिस में लाल फूल के रंग के जीन ऐसे भी हैं जो जीव के जीवन के लिए आवश्यक नहीं हैं। ये जीन, जीव की जीव संबंधी क्रियाओं को नियंत्रित नहीं करते हैं। इसी कारण समयुग्मजी अप्रभावी जीव भी जीवित रहने योग्य रहते हैं। किसी किसी स्थिति में इस प्रकार के जीव जीवित नहीं रह सकते। इसलिए अपेक्षित मैंडलीय अनुपात नहीं मिल पाता। मानवजाति में दात्र कोशिका की अरक्तता की वंशागति इस तथ्य को अच्छी प्रकार से स्पष्ट करती है। यह रोग ऐसे जीन के कारण होता है जिसका प्रभाव समयुग्मजी अवस्था में घातक होता है तथा विषमयुग्मजी अवस्था में बहुत कम या केवल अभिज्ञय होता है। इस रोग के वाहक की लाल रक्त कोशिकायें दरांती या दात्र के आकार की हो जाती हैं। ऐसा आक्सीजन की कमी की अवस्था में होता है। इस कारण से ही कभी कभी हल्की अरक्तता के संकेत भी मिलते हैं। समयुग्मजियों की मृत्यु लैंगिक परिपक्वता के पूर्व ही घातक अरक्तता से हो जाती है। ऐसे दो
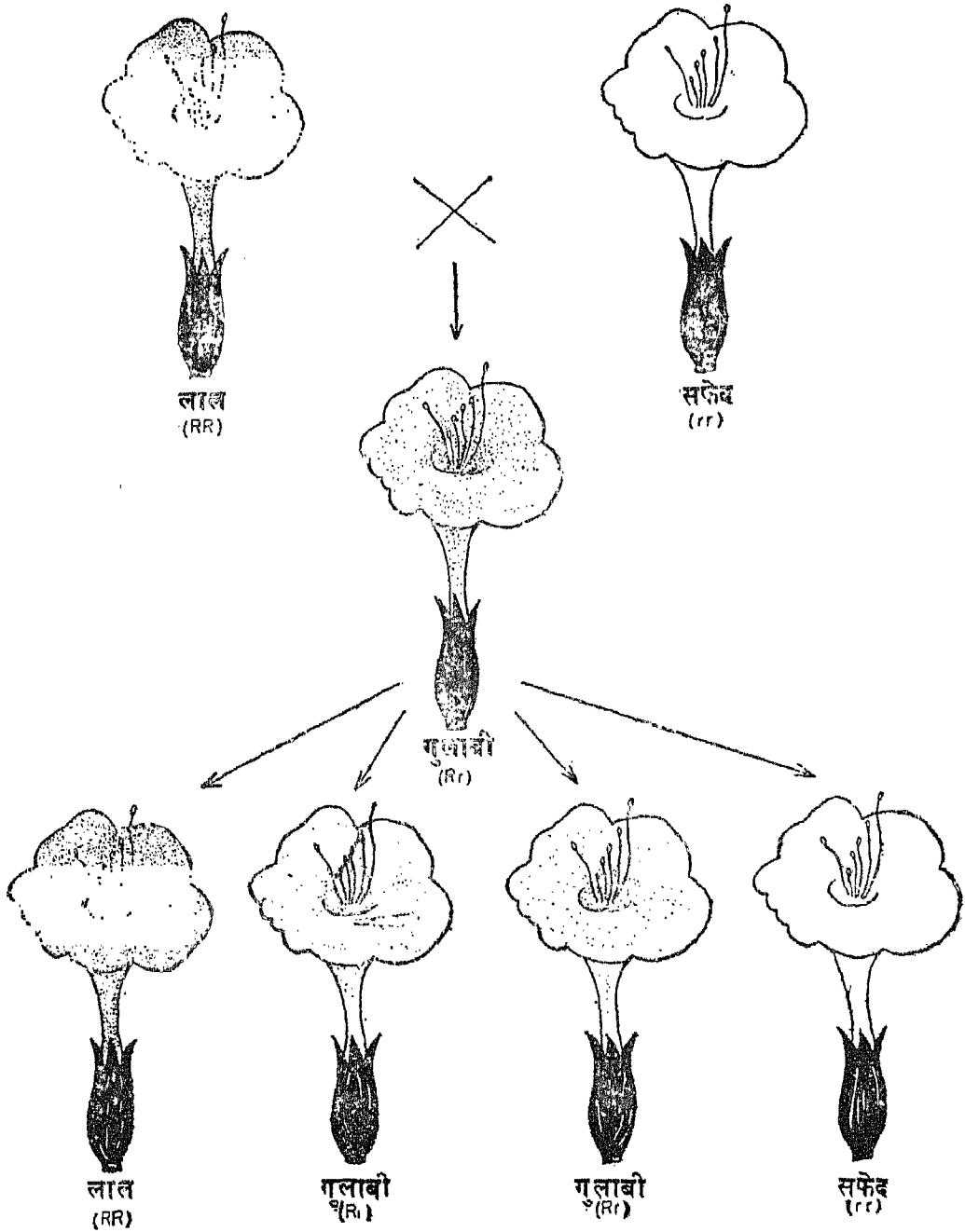
चित्र 20.1 : मिराबिलिस में अपूर्ण प्रभाविता के परिणामस्वरूप F_2 पीढ़ी में समान जीनप्ररूपी तथा लक्षणप्ररूपी अनुपात।
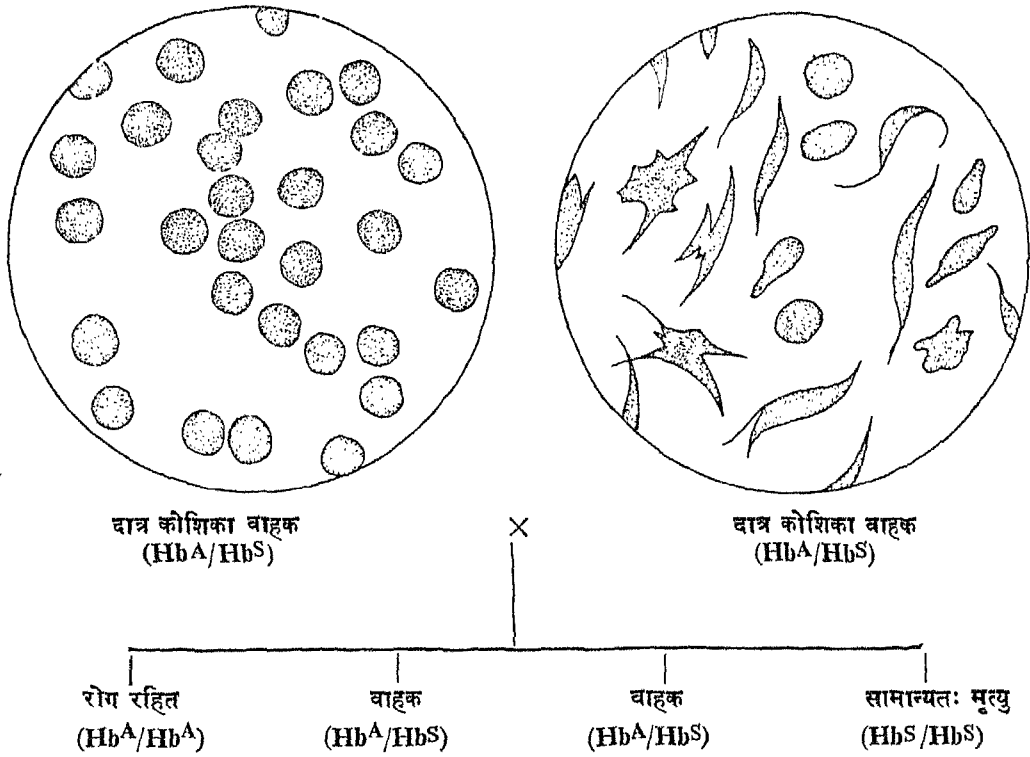
चित्र 20.2 : सामान्य (बांयें) तथा दात्र (बांयें) लाल रक्त कोशिकाओं का चित्र तथा मानव में दात्र कोशिका अरक्तता की वंशागति (नीचे)।
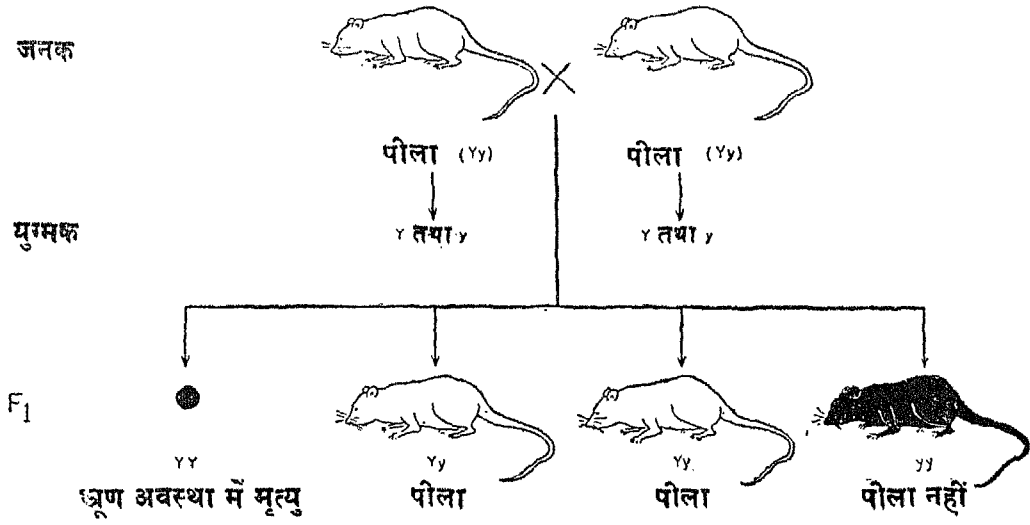
चित्र 20.3 : चूहों में त्वचा वर्ण की वंशागति।

वाहकों की संतानों में वाहक तथा रोगमुक्त संतानों का अनुपात 2 : 1 होगा (चित्र 20.2)।

कुछ स्थितियों में समयुग्मजी अप्रभावी जीन तो सामान्य होते हैं तथा समयुग्मजी प्रभावी जीन लैंगिक परिपक्वता के पूर्व या जन्म के तुरंत बाद मर जाते हैं। उदाहरण के लिए पीले फर वाली चुहियों के सहवास के परिणामस्वरूप पीले तथा बिना पीले फर वाली संतति का अनुपात 2 : 1 होता है। पीले रंग के लिए समयुग्मजी युग्मजक जीवनदान नहीं है (चित्र 20.3)। पीले शरीर का रंग, काले (जो पीला नहीं) शरीर के रंग के ऊपर प्रभावी है।

अभी तक हमने वही उदाहरण देखे जिनमें एक जीन एक लक्षण को नियंत्रित करता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें एक से अधिक जीन, एक लक्षण के विकास तथा अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं। लेथिरस ओडोरेटस (मीठी मटर) में फूलों का रंग दो प्रभावी जीनों C तथा P की उपस्थिति में बैंगनी होता है। दो में से किसी एक प्रभावी जीन (ccPP, ccPp, Ccpp या CCpp) की अनुपस्थिति में या फिर दोनों ही प्रभावी जीनों (ccpp) की अनुपस्थिति में फूल सफेद हो जाते हैं। विषमयुग्मजी बैंगनी (CcPp) की संतति का विसंयोजन मैंडल के द्विगुणित F_2 अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 के स्थान पर 9 बैंगनी : 7 सफेद होता है (चित्र 20.4)। इसलिए मीठी मटर के बैंगनी फूल दो भिन्न विस्थलों पर प्रभावी विकल्पियों के पूरक प्रभावों के परिणाम हैं। ये दोनों स्वतंत्र रूप से वियोजित होते हैं। सफेद फूलों का निचोड़ रंगरहित लगता है किन्तु यदि भिन्न भिन्न प्रभावी जीनों वाले पौधों के निचोड़ को मिला दिया जाये तो बैंगनी रंग बन जाता है। इससे संकेत मिलता है कि जीन C तथा P के उत्पादन, फलमक्खी में भी पूरकता के साथ पारस्परिक क्रिया कर सकते हैं। यथोक्रम, एन्थोसाइनिन (रंगीन वर्णक) दो जैव रासायनिक क्रियाओं का उत्पादन है, एक का अंतिम उत्पादन दूसरे का क्रियाधार बनाता है।

जीन1 जीन2
A———— ———B — ——— —एन्थोसाइएनिन

फलमक्खी, न्यूरोस्पोरा, इ० कोलाइ तथा दूसरे बहुत से जीवों से मिले प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि किसी भी लक्षण की अभिव्यक्ति एनजाइमों के माध्यम से

जनक — सफेद CCpp × सफेद ccPP

युग्मक — Cp, cP

F_1 — बैंगनी CcPp

F_1 युग्मक	CP	Cp	cP	cp
CP	CCPP बैंगनी	CCPp बैंगनी	CcPP बैंगनी	CcPp बैंगनी
Cp	CCPp बैंगनी	CCpp सफेद	CcPp बैंगनी	Ccpp सफेद
F_2 cP	Ccpp बैंगनी	CcPp बैंगनी	ccPP सफेद	ccPp सफेद
Cp	CcPp बैंगनी	Ccpp सफेद	ccPp सफेद	ccpp सफेद

F_2 लक्षणप्ररूपी अनुपात = 9 बैंगनी : 7 सफेद

चित्र 20.4 : लेथिरस ओडोरेटस में फूलों के रंगों की वशांगति। पूरक जीनों के कारण F_2 पीढ़ी में 9:7 का लक्षण प्ररूपी अनुपात मिला।

चित्र 20.5 : इ० कोलाइ में कोरिस्मिक अम्ल से ट्रिप्टोफेन का संश्लेषण। इस क्रिया का (तीरों से दिखाए गए) चार एनजाइम उत्प्रेरण करते हैं जो जीन 1,2,3 तथा 4 द्वारा नियंत्रित होते हैं।

बड़ी संख्या में हो रही जैवरासायनिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। ये जैवरासायनिक क्रियायें जीनों द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। उदाहरण के लिए इ० कोलाइ में ट्रिप्टोफेन नामक एमिनो अम्ल का संश्लेषण, कोरिस्मिक अम्ल से चार क्रमों में होने वाली एनजाइम उत्प्रेरित क्रिया द्वारा होता है। इस क्रिया को चित्र 20.5 में तीरों द्वारा दर्शाया गया है। संख्याएँ उन जीनों का प्रतिनिधित्व कर रही हैं जो भिन्न भिन्न एनजाइमों के लिए कोड करती हैं। यदि किसी भी जीन विशेष में कुछ दोष हो तो यह दोष क्रियाओं के क्रम में बाधा डालता है। कोई भी प्रभेद जिसमें क्रियाक्रम की चार बाधाओं में से एक या एक से अधिक बाधायें हैं तो यह ट्रिप्टोफेन का संश्लेषण नहीं कर सकता किन्तु वृद्धि के लिए इसकी आवश्यकता अनुभव करता है। इसलिए, इस उदाहरण में जीनों की संख्या की लक्षणप्ररूपी अभिव्यक्ति एक समान है।

कई स्थितियों में एक अकेले जीन का दोष विभिन्न लक्षणों में अभिव्यक्त हो जाता है यद्यपि पहला प्रभाव केवल एक ही होता है। उदाहरण के लिए मीठी मटर के फूलों के रंग का जीन बीज के आवरण का रंग तथा पत्तियों के अक्ष में लाल धब्बों को भी नियंत्रित करता है। अनेकों लक्षणप्ररूपी प्रभावों वाले जीन, बहुप्रभावी जीन के नाम से जाने जाते हैं।

प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है तथा कौन सा असत्य?
   (क) जीन नाइट्रोजनी बेस के रेखाक्रम से बने हैं।
   (ख) बीडिल तथा टेटम को डी० एन० ए० की संरचना बताने के लिये नोबल पुरस्कार दिया गया था।
   (ग) समस्त जीन संरचनात्मक जीन हैं।
   (घ) दात्र कोशिका अरक्तता का समयुग्मजी अवस्था में घातक प्रभाव होता है।
2. समपार क्या है?
3. फलमक्खी तथा न्यूरोस्पोरा आनुवंशिकी का एक-जीन-एक-बहुपेप्टाइड शृंखला परिकल्पना में क्या योगदान है?
4. प्रभावी जीन, अपने अप्रभावी विकल्पी की उपस्थिति में अपनी अभिव्यक्ति कैसे देते हैं?
5. क्या कुछ जीनों का मात्रात्मक प्रभाव होता है? अपने कथन की उचित उदाहरणों से पुष्टि करो।
6. 'एक घातक जीन अपेक्षित लक्षणप्ररूपी अनुपात में बाधा डाल देता है' इस कथन की उचित उदाहरणों से पुष्टि करो।
7. पूरक जीन क्या हैं? उनकी वंशागति कैसे होती है?

अध्याय 21

उत्परिवर्तन

चार्ल्स डारविन ने अपने विकास संबंधी सिद्धांतों में अभिगृहीत किया था कि किसी भी वर्ग के जीवों के गुणन के साथ साथ विविधता का उद्भव होता है। विविधता प्राकृतिक वरण तथा जीवन संघर्ष के लिए आवश्यक है। यदि समष्टि के एक वर्ग के समस्त जीव एक समान हों तो जीवन संघर्ष तथा प्राकृतिक वरण नहीं होगा। समष्टि में विविधता दो क्रियाविधियों के परिणामस्वरूप होती है: (1) पुनर्योजन तथा (2) उत्परिवर्तन। जैसा अध्याय 19 में प्रस्तुत किया जा चुका है विनिमय के परिणामस्वरूप जीनों के नये संयोग बनते हैं। इसके परिणामस्वरूप समष्टि बनती है जिसके भिन्न भिन्न सदस्यों के पास भिन्न भिन्न लक्षणों के समूह होते हैं। समष्टि में लक्षणों का कुल योग स्थिर रहता है, किन्तु उनके उत्परिवर्तन तथा संयोग के परिणामस्वरूप विभिन्न जीनप्ररूपी तथा लक्षणप्ररूपी बनते हैं। उत्परिवर्तन, विविधता का एक और उद्गम है जो पुनर्योजन से भिन्न है। उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक पूर्ण रूप से भिन्न नये लक्षण की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार से उत्परिवर्तन विकास का स्रोत है।

उत्परिवर्तन के सिद्धांत को एक डच वैज्ञानिक ह्यूगो डि व्रीस ने प्रस्तावित किया था। वे मैंडलवाद की दोबारा खोज करने वाले तीन वैज्ञानिकों में से एक थे।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में उन्होंने ओइनोथेरा लैमार-किआना नामक पौधे में अनेकों वंशागत विविधतायें देखीं तथा सन् 1901 में एक तथ्य प्रस्तावित किया जिसके अनुसार विविधताएँ जीव के जननद्रव्य में अचानक तथा अनिरन्तर परिवर्तनों के कारण होती हैं। उन्होंने यह भी कहा कि ये आकस्मिक विविधताएँ विकास के लिए महत्व-पूर्ण हैं। विभिन्न जीवों पर किए गए शोध कार्यों से मालूम हुआ कि वंशागत भिन्नताएँ जीन की संरचना में परिवर्तन के कारण अथवा गुणसूत्र की संरचना या संख्या में परिवर्तन के कारण पैदा की जा सकती हैं। जीन की संरचना में आकस्मिक तथा निश्चित परिवर्तन को जीन उत्परिवर्तन या केवल परिवर्तन कहते हैं। जीन उत्परिवर्तनों का आसानी से पता लगाया जा सकता है क्योंकि वे जीव के लक्षणप्ररूपी में प्रत्यक्ष परिवर्तन लाते हैं। वे उत्परिवर्तन जो लक्षणप्ररूपी में विविधता लाने में असफल रहते हैं बिना अभिव्यक्ति के ही लुप्त हो जाते हैं। उत्परिवर्तन होने के बाद ही हमें यह पता चल पाता है कि कौन सा विशेष लक्षण किस जीन के द्वारा नियंत्रित हो रहा है। कभी-कभी उत्परिवर्तन का असर बहुत तीव्र नहीं होता तथा लक्षण में भी कोई प्रत्यक्ष परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ता। फिर भी ये परिवर्तन संचित होते जाते हैं तथा किसी भी वर्ग के विकास के लिए महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

साधारणत: उत्परिवर्तनों का परिणाम होता है कार्यों की हानि। जीन के बेसों के क्रम में परिवर्तन होने से प्रोटीन के एमिनो अम्लों के क्रम में अदला बदली हो जाती है। इस प्रकार के परिवर्तित प्रोटीन में उत्प्रेरण क्षमता या कार्यक्षमता कम हो जाती है या पूरी तरह समाप्त हो जाती है। यदि एक एमिनो अम्ल प्रकूट का उत्परिवर्तन हो कर nonsense प्रकूट बने तो एक अपूर्ण

बहुपेप्टाइड का संश्लेषण होता है। इन दोनों स्थितियों में जीन का सामान्य कार्य सम्पादन नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए एक सामान्य मटर के पौधे के फूल रंगीन होते हैं क्योंकि यह पौधा विभिन्न एनजाइमों के द्वारा उत्प्रेरित जैवरासायनिक क्रियाओं के क्रम के परिणामस्वरूप एक वर्णक का संश्लेषण करने में समर्थ है। इन एनजाइमों को कोड करने वाले किसी भी जीन में उत्परिवर्तन होने का परिणाम होगा फूल वर्णक की अनुपस्थिति। जिसके कारण अब रंगरहित या सफेद फूल पैदा होंगे। विषमयुग्मजी अवस्था में जहाँ सामान्य अथवा असम प्रकार का विकल्पी एक वर्णक उत्पन्न करता है तथा उत्परिवर्तक विकल्पी वर्णक का संश्लेषण करने में समर्थ नहीं है इस अवस्था में प्रत्येक कोशिका में वर्णक होगा। इसलिए ऐसे पौधों में रंगीन फूल होंगे। दूसरे शब्दों में उत्परिवर्तक विकल्पी असम विकल्पी के लिए प्रभावी होगा। अधिकतर उत्परिवर्तक अप्रभावी होते हैं। इस उदाहरण में फूलों में उत्परिवर्तन को उग्र उत्परिवर्तन कहते है। परिभाषा के अनुसार उग्र उत्परिवर्तन एक ऐसा उत्परिवर्तन है जो असम प्रकार (मूल प्रकार) को एक नये प्रकार में उत्परिवर्तित कर देता है। उत्परिवर्तन विपरीत दिशा में भी हो सकता है। अर्थात उत्परिवर्तन प्रकार से मूल प्रकार की ओर। ऐसे उत्परिवर्तन को विपरीत उत्परिवर्तन कहते हैं। यहाँ दिए हुए उदाहरण में विपरीत उत्परिवर्तन सफेद फूलों वाले पेड़ों में होकर रंगीन फूलों वाले पौधों को पैदा करेगा।

उग्र उत्परिवर्तन
मूल प्रकार ←——————————→ उत्परिवर्तक
विपरीत उत्परिवर्तन

उत्परिवर्तन किसी भी कोशिका में हो सकता है— कायिका अथवा प्रजनन कोशिका। प्रजनन कोशिका में हुए उत्परिवर्तन अगली पीढ़ी तक पहुँच जाते हैं। यदि उत्परिवर्तन अप्रभावी है तो इसकी अभिव्यक्ति तब तक नहीं होगी जब तक यह समयुग्मजी ना हो जाये। कायिका कोशिकाओं में होने वाले उत्परिवर्तन जीव की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाते हैं यदि ऐसी कोशिकाएँ कायिक जनन के द्वारा रख न ली गई हों। अगुणित जीन उत्परिवर्तन के कार्य के लिए अच्छा है क्योंकि प्रत्येक जीन का केवल एक विकल्पी एक कोशिका में होता है। अनेकों उत्परिवर्तन घातक होते हैं क्योंकि उनका परिणाम होता है जीवन की क्रियाओं में कमी। इस प्रकार के उत्परिवर्तनों को उचित अवस्था में रखकर अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए इ. कोलाइ जीवाणु कार्बन तथा नाइट्रोजन के उद्गम से तथा माध्यम में उपस्थित लवण से प्रत्येक प्रकार के एमिनो अम्ल, विटामिन, प्रोटीन, शर्करा तथा चर्बी का संश्लेषण कर सकता है। यह विभिन्न जीनों के कार्यों के कारण सम्भव होता है, जो एनजाइमों, प्रोटीन तथा आर० एन० ए० को कोड करता है जिनकी आवश्यकता विभिन्न उपापचयी क्रियाओं के लिए होती है। उन उत्परिवर्तनों को वियुक्त किया जा सकता है जो किसी एक विशेष प्रकार के एमिनो अम्ल अथवा विटामिन अथवा किसी भी दूसरे जैव यौगिक का संश्लेषण करने की शक्ति को खो बैठते हैं। यह उस जीन में वंशागत परिवर्तन के कारण होता है जो जैव यौगिकों के संश्लेषण के लिए कई क्रियाओं को उत्प्रेरित करने वाले एनजाइम को कोड करता है। ऐसे उत्परिवर्तन साधारण माध्यम में नहीं बढ़ सकते किन्तु यदि माध्यम में वह यौगिक जिसका संश्लेषण नहीं हो रहा है, मिला दिया जाय, तो वे वृद्धि करेंगे। इस प्रकार एक घातक उत्परिवर्तन को भी उचित परिस्थितियों में बचाया जा सकता है।

सूक्ष्मजीवों तथा उच्चवर्ग के पौधों तथा जानवरों के उत्परिवर्तक जो एक या एक से अधिक आवश्यक यौगिकों का संश्लेषण करने में असफल हैं, उन्हें पोषक उत्परिवर्तक या असर्वसंश्लेपी कहते हैं जबकि मूल प्रकार को प्रापोषित या सर्वसंश्लेपी कहते हैं। असर्वसंश्लेपी तथा सर्वसंश्लेपी के आनुवंशिक तथा जैवरासायनिक अध्ययन से हमें विभिन्न जीवों में उपापचयी क्रियायें तथा उनके नियंत्रण के तरीके समझने में सुविधा हुई। पोषक उत्परिवर्तनों को सबसे पहले बीडिल तथा टैटम ने सन् 1944 में डबलरोटी की फफूंद न्यूरोस्पोरा क्रासा में वियुक्त किया था। ये पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने जीन तथा एनजाइम के परस्पर संबंध को विस्तार में बताया था।

उत्परिवर्तन एक आकस्मिक क्रिया है और इसकी तीव्रता जीवविशेष या लक्षण विशेष पर आधारित रहती है। वातावरण का भी इस पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शरीर का एक भाग या लक्षण विभिन्न जीनों में हुए उत्परिवर्तनों से प्रभावित हो सकता है। उदाहरण के लिए

फलमक्खी की आँख का लाल रंग w, v, rb, br, car, lz या pr जीनों में से किसी भी एक जीन में उत्परिवर्तन विभिन्न लक्षणों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए पिसम सेटिवम में एक अकेले उत्परिवर्तन से बीज के आवरण का रंग स्लेटी से सफेद तथा फूलों का रंग लाल से सफेद हो जाता है। इन परिवर्तनों को जो एक से अधिक लक्षणप्ररूपी को प्रभावित करते हैं, बहुप्रभावी उत्परिवर्तन कहते हैं।

स्वाभाविक उत्परिवर्तन की तीव्रता बहुत कम होती है। अब हम ऐसी कई विधियों को जानते हैं जिनके द्वारा
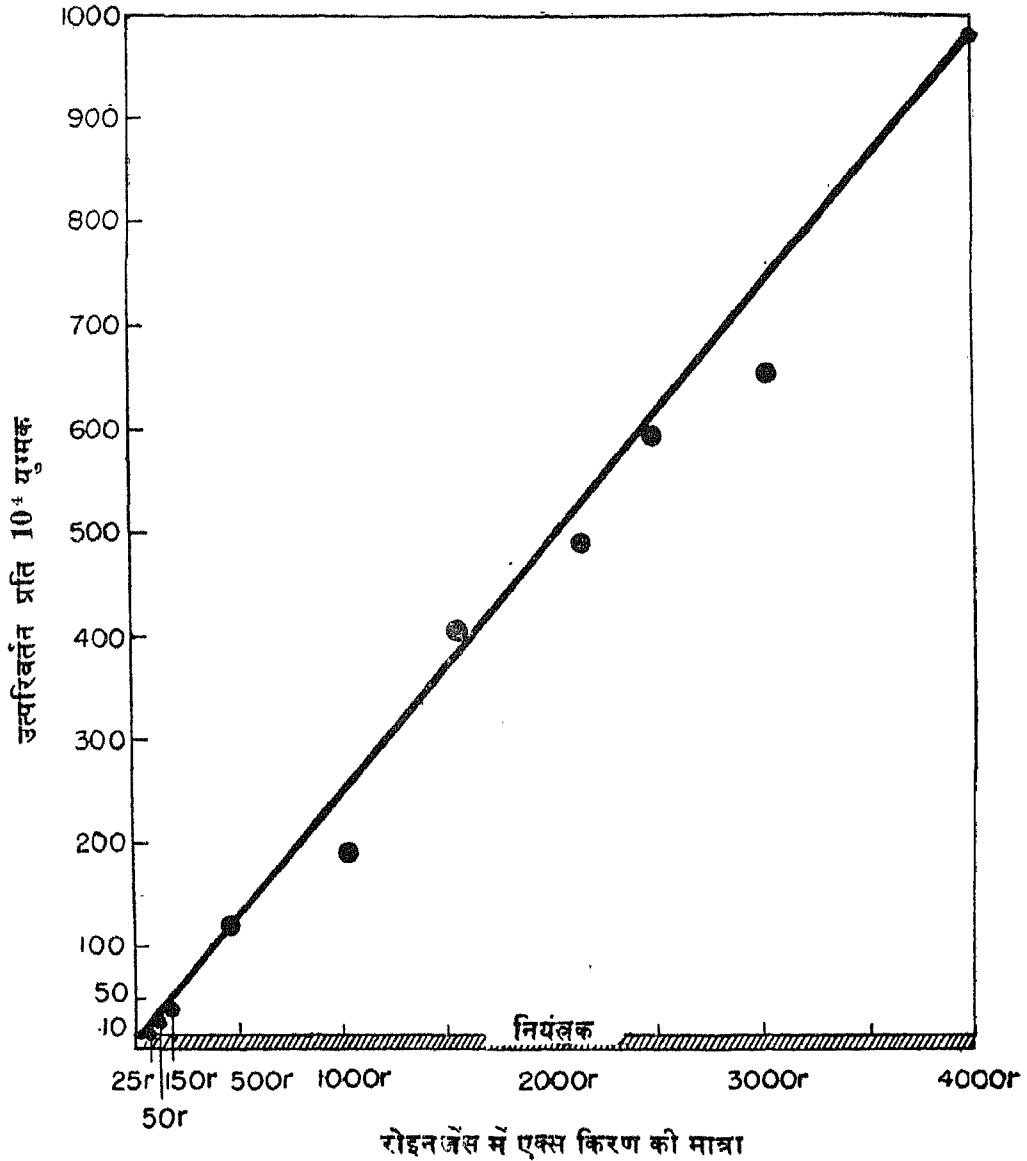
चित्र 21.1 : ड्रोसोफिला मैलेनोगास्टर में X-किरण की मात्रा में वृद्धि करने से X-गुणसूत्र में घातक उत्परिवर्तन की आवृत्ति में वृद्धि का लेखाचित्र।

कृत्रिम रूप से उत्परिवर्तन की गति को बढ़ा सकते हैं। ऐसे कर्मक जो उत्परिवर्तन की गति में वृद्धि करते हैं उन्हें उत्परिवर्तजन कहते हैं। आरम्भ में उत्परिवर्तन की गति को कृत्रिम रूप से बढ़ाने की चेष्टा में उत्परिवर्तन को नापने तथा पहचानने की तकनीकों की अनुपस्थिति के कारण बहुत बाधायें आयीं। जैसे ही यह तकनीकें प्राप्त हो गईं एक बड़ी संख्या में उत्परिवर्तनों की खोज हो गई। सबसे पहली सफलता मिली म्यूलर को 1927 में। म्यूलर ने दिखाया कि यदि फलमक्खी का एक्स-किरणों में प्रकाशकरण करें तो कुछ लक्षणों की उत्परिवर्तन दर लगभग 150 गुनी बढ़ जाती है। उन्होंने यह भी देखा कि सीमा के अन्दर X किरणों की मात्रा में वृद्धि करने से फलमक्खी के उत्परिवर्तन दर में भी वृद्धि हो जाती है (चित्र 21.1)। यही जौ के ऊपर किए गए अध्ययन में भी सत्य पाया गया (स्टैडलर, 1928)। तद्पश्चात और भी दूसरे जीवों में यही देखा गया। वे समस्त प्रकार की ऊर्जायें जो गुणसूत्रों की रासायनिक संरचना को विकृत करती हैं जैसे पराबैंगनी प्रकाश X-किरणें, गामा किरणें बीटा किरणें, अंतरिक्ष किरणें इत्यादि। दूसरे सभी जीवों में भी उत्परिवर्तन पाए गए हैं। यही कारण है कि मनुष्य द्वारा किए गए परिस्थितिक विकिरण पर अलग से ध्यान दिया जा रहा है। आनुवंशिक शल्यशास्त्र द्वारा उत्परिवर्तित कोशिकाओं का निर्माण किया जा सकता है। इस क्रिया में कोशिकाओं को उत्पत्ति के माध्यम से अन्तिम पूर्वावस्था अथवा मध्यावस्था तक रखा जाता है। इस अवस्था के पहुँचने तक गुणसूत्र भली भाँति नजर आने लगते हैं। फिर सूक्ष्म लेसर किरण के द्वारा गुणसूत्रों के चुने हुए भागों को तितर बितर तथा विलोपित किया जाता है।

विभिन्न प्रकार के रसायन भी उत्परिवर्तनों की भाँति काम करते हैं। उनमें से कुछ डी० एन० ए० के बेसों के साथ प्रतिक्रिया करके उन्हें असामान्य अथवा असाधारण बेसों (नाइट्रस अम्ल साइटोसीन को यूरासिल में बदलता है) में बदल देते हैं। इससे कोड शब्द ही परिवर्तित हो जाता है। कुछ ऐसे भी रसायन हैं जो सामान्य डी० एन० ए० की बेसों की संरचना के अनुसार समान हैं (उदाहरण 5 ब्रोमोयूरासील)। ये रसायन डी० एन० ए० संश्लेषण के दौरान गलती से डी० एन० ए० शृंखला में सामान्य बेस के स्थान पर संयुक्त हो जाता है। इस प्रवेशन के कारण पुनरावृत्ति के दौरान भी गलतियाँ हो जाती हैं तथा परिणामस्वरूप जीन में एक वंशागत उत्परिवर्तन हो जाता

मूल प्रकूट क्रम CAT CAT CAT CAT CAT···

एक बेस की वृद्धि के पश्चात्

प्रकूट क्रम CAA* TCA TCA TCA TCA T···

चित्र 21.2 : केवल एक बेस (A*) की वृद्धि से कोड फ्रेमों में पार्श्व परिवर्तन। कोई भी प्रकूट समान मूल प्रकूटों की भाँति न रहा।

है। तीसरे वर्ग के यौगिक (एक्रीडीन्स) डी० एन० ए० शृंखला के बीच में प्रवेशित हो जाते हैं और परिणामस्वरूप या तो बेसों की संख्या बढ़ जाती है या छँट जाती है। इससे कोड रचना का पार्श्विक स्थानान्तर हो जाता है, जिससे समस्त प्रकूट ही परिवर्तित हो जाते हैं (चित्र 21.2)। इस प्रकार के उत्परिवर्तनों को **जिबरिश या फ्रेमस्थानान्तर** कहते हैं क्योंकि वे प्रकूटों का एक क्रम बनाते हैं जो एक अनावश्यक बहुपेप्टाइड शृंखला को कोड करता है।

न्यूक्लिओटाइड शृंखला के कुछ बेसों में उत्परिवर्तन दूसरे बेसों की तुलना में अधिक होता है। इसके साथ ही कुछ विशेष भागों में किसी विशेष उत्परिवर्तजन के कारण सरलता से उत्परिवर्तन हो जाता है जबकि दूसरे उत्परिवर्तजन से नहीं होता। उत्परिवर्तजनों की यह असामान्यता जीवों में भी देखी गई है।

उत्परिवर्तन वर्गों (स्पिसीज) के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। उत्परिवर्तनों के द्वारा वंशागति का आधार तथा कोशिका उपापचय को भी समझा जा सकता है। वे मानव के लिए उपयोगी भी हैं। गेंहू की उत्परिवर्तित किस्में वामन, शीघ्र परिपक्व होने वाली, विभिन्न रोगों केलिए प्रतिरोधी तथा अधिक व अच्छे प्रोटीन वाली हैं। चावल की उत्परिवर्तित किस्में (चित्र 21.3) जो वामन हैं या जिनकी संतति अधिक है या जिनके लम्बे दाने हैं, किसानों में बहुत लोकप्रिय है। ऐसे उत्परिवर्ती जिनके घूमे हुए दाने हैं या जिनकी घातक दशायें हैं, शोध कार्य के लिए उपयोगी हैं। आज फसल की
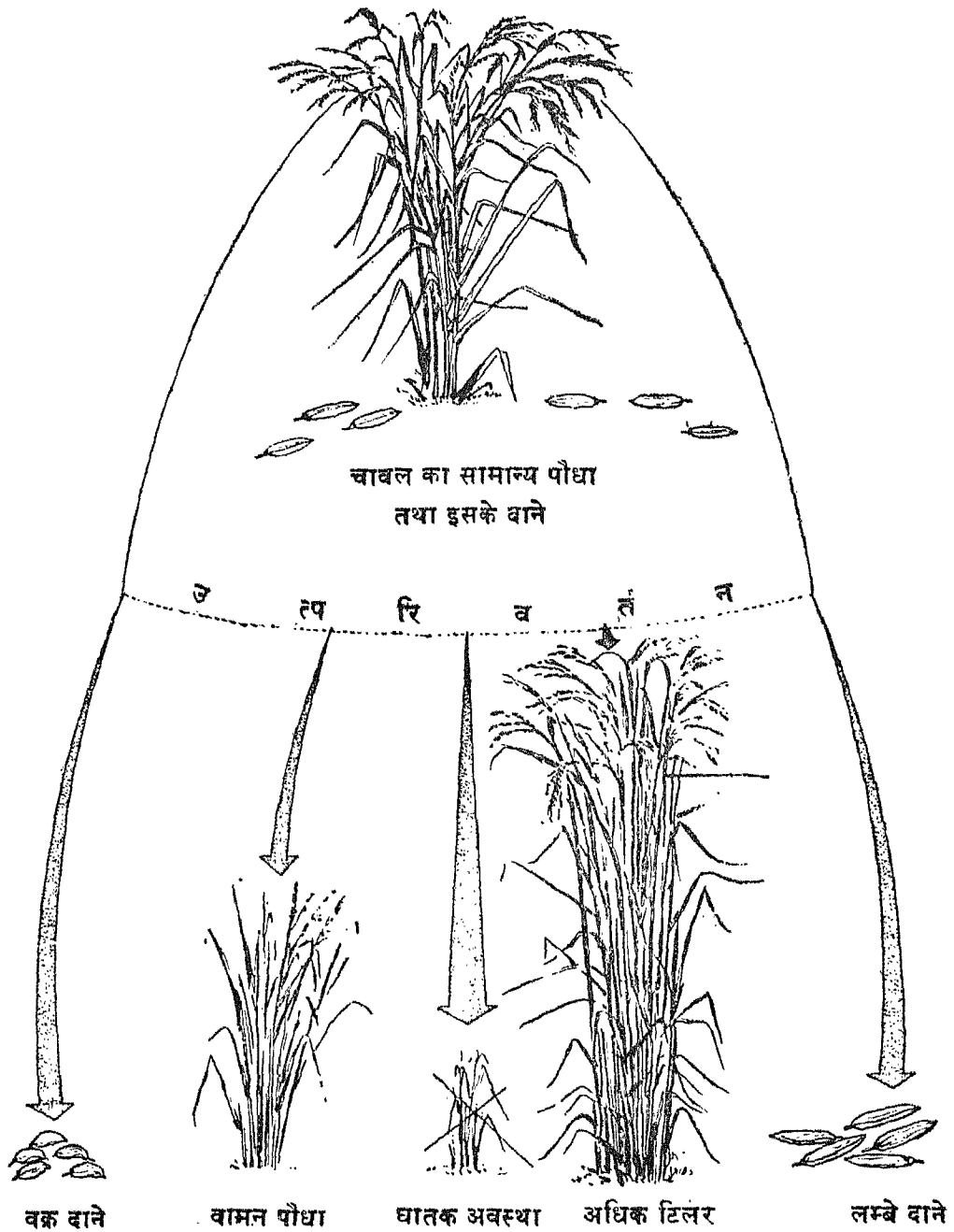
चित्र 21.3 : चावल की कुछ उत्परिवर्तित किस्में तथा वे मूल किस्में जिनसे ये किस्में उत्पन्न की गईं ।

सब किस्में स्वतः उत्परिवर्ती या प्रेरित उत्परिवर्ती हैं। इनका उत्पादन अधिक है तथा इन्हें भूतपूर्व किस्मों से ही बनाया गया है। सूक्ष्म कीटाणुओं के विभिन्न उत्परिवर्ती जिनकी किण्वन की सामर्थ्य अधिक है या जिनका प्रति-जैविक या दूसरे यौगिकों का उत्पादन बेहतर है को वियुक्त किया जा चुका है तथा विभिन्न उद्योगों में वे प्रयोग किए जा रहे हैं। यही गोपशुओं तथा पालतू जानवरों के लिए भी सत्य है। भेड़ की एनकोन किस्म जिसमें पैर बहुत छोटे होते हैं, सामान्य किस्म में केवल एक प्रजनन उत्परिवर्तन के कारण बन गई। चूंकि कोई कोई उत्परिवर्तन बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं इसलिए अनेकों शोध केन्द्रों में पेड़ों तथा जानवरों के उत्परिवर्ती बनाये जा रहे हैं और फिर उनमें से अच्छी किस्में छाँटी जा रही हैं। नई दिल्ली के कृषि शोध संस्थान में, बड़े-बड़े खेतों में पौधे उगाये जाते हैं। इन खेतों को ऊँची दीवारों से घेर दिया गया है। खेतों के केन्द्र में गामा-विकिरण की व्यवस्था है (चित्र 21.4)। पौधों का गामा किरणों की निश्चित तथा आवश्यक मात्रा में निश्चित तथा आवश्यक समय के लिए प्रकाशकरण किया जाता है। इसके पश्चात् पौधों को बाहर निकाल कर उनकी संतति की व्याख्या कृत्रिम तथा आवश्यक उत्परिवर्तनों के लिए की जाती है।

एक बार उचित तथा इच्छित उत्परिवर्तन किसी जीव में हो जाये और उसे यदि पहचान भी लिया जाये तो नियंत्रित प्रजनन प्रयोगों द्वारा इसका गुणन किया जा सकता है तथा इच्छित जीव में इसका स्थानान्तरण भी किया जा सकता है। नर तथा मादा के बीच संकरण करके किसी भी लक्षण को आसानी से एक जीव से दूसरे जीव में पहुँचाया जा सकता है। हाल ही में इसको प्राप्त करने के कुछ नवीनतम तरीके भी निकल आये हैं। आनुवंशिक इन्जीनियरिंग की तकनीकों के पूर्वेक्षण तथा परिमितता (सीमा) का विवरण इस परिच्छेद के अन्तिम अध्याय में किया गया है। एक बार उत्परिवर्ती कृत्रिम रूप से बना कर छाँट लिया गया तो इसका अच्छा उपयोग सुगमता से इन सब तकनीकों द्वारा किया जाता है।

हाल के कुछ वर्षों में इस बात की बहुत चर्चा रही कि हम कितने उत्परिवर्ती बना सकते हैं तथा कितने जीवों के जीनप्ररूपी की कुशलता पूर्वक कल्पना कर सकते हैं। कुछ देशों में तो आनुवांशिक विकास के कई कृत्रिम रूपों पर कानूनी रोक भी लगा दी गई है।

प्रश्न

1. समष्टि में विविधता के उद्गम क्या क्या हैं ?
2. सामान्यरूप से उत्परिवर्तन का परिणाम होता है कार्यों में कमी। क्यों ?
3. उत्परिवर्तन कार्यों के लिए अगुणन जीव, द्विगुणन जीव से अधिक उचित है। क्यों ?
4. निम्नलिखित का विवरण दो:
   - (क) असर्वसंश्लेषी
   - (ख) सर्वसंलेषी
   - (ग) उत्परिवर्तजन
   - (घ) विपरीत उत्परिवर्तन
   - (ङ) बहुप्रभावी उत्परिवर्तन

5. उत्परिवर्तनों की तीव्रता को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ?

6. कम से कम दो उत्परिवर्तजनों के कार्य करने की विधि पर प्रकाश डालो।

7. क्या कुछ उत्परिवर्तन उपयोगी हैं ? विशेष उदाहरण दो।

8. क्रोमस्थानान्तर उत्परिवर्तन क्या है ? ऐसे उत्परिवर्तन का प्रभाव क्या है ?

9. क्या घातक उत्परिवर्तन को रखा जा सकता है ?

10. क्या वे समस्त उत्परिवर्तन जो प्रकृति में होते हैं, जीवित रख लिए जाते हैं या उनमें से कुछ नष्ट भी हो जाते हैं ?

मात्रात्मक वंशागति

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि उत्परिवर्तनों से लक्षणप्ररूपी में आकस्मिक या अविरल विविधतायें उत्पन्न होती हैं। निरन्तर विविधतायें, वातावरण की विविधताओं के कारण होती हैं। सामान्य रूप से यह सत्य है लेकिन इस नियम के कुछ अपवाद हैं। एफ० गैल्टन ने सन् 1883 में बताया कि निरन्तर विविधताएँ वंशागति के कारण होती हैं, वातावरण के कारण नहीं। उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया था कि सामान्य रूप से लम्बे माता-पिता लम्बे बच्चों को जन्म देते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि मानव में कुछ लक्षण जैसे ऊँचाई तथा बुद्धि वंशागत हैं, यद्यपि समष्टि में ये निरन्तर विविधतायें दिखाते हैं। गैल्टन के विचार को प्रायोगिक मदद मिली जब यह मालूम हुआ कि कुछ अवसरों पर एक से अधिक जीन एक लक्षण नियंत्रित करते हैं, प्रत्येक का समान किन्तु संचयी लक्षणप्ररूपी प्रभाव होता है। अनेकों मात्रात्मक लक्षण जैसे पेड़ की ऊँचाई, फसल का उत्पादन (आकार, आकृति तथा प्रति पेड़ बीजों तथा फलों की संख्या), मानव में बुद्धिमत्ता पशुओं में दुग्ध-उत्पाद इत्यादि जीनों के द्वारा नियन्त्रित होते हैं तथा उनके प्रभाव संचयी होते हैं। प्रत्येक जीन का कुछ मात्रा में प्रभाव होता है। प्रभावी जीनों की संख्या जितनी अधिक होगी लक्षण भी उतना ही विशिष्ट होगा। मात्रात्मक वंशागति को अनेक जीनी वंशागति या बहुविकल्पी वंशागति भी कहते हैं।

F_1 युग्मक	AB	Ab	aB	ab
AB	AABB लाल	AABb गहरा	AaBB गहरा	AaBb मध्यम
Ab	AABb गहरा	AAbb मध्यम	AaBd मध्यम	Aabb हल्का
F_2 aB	AaBB गहरा	AaBb मध्यम	aaBB मध्यम	aaBb हल्का
ab	AaBb मध्यम	Aabb हल्का	aaBb हल्का	aabb सफेद

F_2 संक्षेप में :

1/16 लाल : 4/16 गहरा : 6/16 मध्यम : 4/16 हल्का : 1/16 सफेद

चित्र 22.1 : गेंहू के लाल दानों (दो प्रभावी जीनों के लिए समयुग्मजी) तथा सफेद दानों की किस्मों में संकरण के परिणाम। विभिन्न जीन प्ररूपी लाल रंग के विभिन्न स्तर दर्शाते हैं।

अनेक जीनी वंशागति के प्रायोगिक प्रमाण सबसे पहले स्वीडिश आनुवंशिक विज्ञानी एच० नीलसन-एले ने सन् 1908 में प्राप्त किए। उन्होंने देखा कि गेंहू के दाने का रंग तीन जीनयुग्मों Aa, Bb, Cc द्वारा नियंत्रित होता है। जीन A, B तथा C गेंहू के दाने के लाल रंग को नियंत्रित करता है तथा अपने अप्रभावी विकल्पी a, b तथा c जो गेंहू के सफेद रंग को नियंत्रित करता है, के ऊपर प्रभावी रहता है। प्रत्येक जीनयुग्म मैंडलीय विसंयोजन को दर्शाता है। इस प्रकार, एक जीनयुग्म (Aa, bb, cc, aa, Bb, Cc) का विषमयुग्मजी विसंयोजित होकर तीन लाल तथा एक सफेद दानों वाला पौधा बनाता है। दो जीनों का विषमयुग्मजी (Aa Bb cc, Aa BB Cc या aa Bb Cc) विसंयोजित होकर 15 लाल और एक सफ़ेद दानों वाला पौधा बनाता है, जबकि तीन जीनों (Aa Bb Cc) वाला विषमयुग्मजी विसंयोजित हो कर 63 लाल तथा एक सफेद दानों वाला पौधा बनाता है। किन्तु सारे लाल दानें एक ही प्रकार के लाल रंग के नहीं होते अपितु लाल रंग का उतार चढ़ाव दर्शाते हैं। विभिन्न जीन प्ररूपी लाल रंग के विभिन्न स्तर दर्शाते हैं। जितने अधिक प्रभावी जीन उपस्थित होंगे, लाल रंग की गहराई उतनी ही अधिक होगी (चित्र 22.1)

मात्रात्मक वंशागति का दूसरा अच्छा उदाहरण है मानव में त्वचावर्ण। मिलेनिन नामक वर्णक त्वचावर्ण को निर्धारित करता है। यदि वर्णक अधिक होगा तो त्वचा भी अधिक काली होगी। विभिन्न प्रजातियों के जीवों में उनके संकरों में तथा अगली पीढ़ी की संतति में वर्णक की तीव्रता की व्याख्या से ज्ञात हुआ कि त्वचावर्ण की वंशागति अनेक जीनी वंशागति है। एक गोरे तथा नीग्रो के बीच में संकरण करने से F_1 संतति में मध्यवर्ती होता है। द्वितीय पीढ़ी में त्वचावर्ण की विविधता अधिक होती है। गोरे तथा नीग्रो मूल की 32 द्वितीय पीढ़ियों में मिलेनिन वर्णक के प्रतिशत की व्याख्या करने से ये परिणाम प्राप्त हुए थे (तालिका 22 1)। इन परिणामों के आधार पर, डेविन पोर्ट (1913) ने बताया कि त्वचावर्ण कम से कम दो विकल्पीयुग्मों द्वारा नियंत्रित होता है तथा प्रत्येक प्रभावी जीन मिलेनिन की निश्चित मात्रा का संश्लेषण करने के लिए उत्तरदायी होता है। जीनों का प्रभाव जीनों की सख्या पर निर्भर करता है। इसीलिए मिलेनिन की मात्रा प्रभावी जीनों की संख्या के आनुपातिक होती है। बाद के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि कम से कम दो जीन मानव में त्वचावर्ण का नियंत्रण करते हैं। मानव में त्वचावर्ण की वंशागति के तरीके की व्याख्या करना सरल नहीं है क्योंकि मानव में त्वचावर्ण उम्र, प्रसाधन तथा वातावरण के साथ-साथ बदलता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विवाह की संतति परिमित होती है।

तालिका 22.1

गोरे (aa bb) तथा नीग्रो (AA BB) मूल की द्वितीय पीढ़ी के जीनप्ररूपी तथा लक्षणप्ररूपी।

जीनप्ररूपी	आवृति	लक्षणप्ररूपी	लक्षणप्ररूपी अनुपात	मिलेनिन का प्रतिशत
AA BB	1	काला	1	56-78
Aa BB	2	गहरा	4	41-55
AA Bb	2			
Aa Bb	4	मध्यवर्ती	6	26-40
aa BB	1			
AA bb	1			
Aa bb	2	हल्का	4	12-25
aa Bb	2			
aa bb	1	सफेद	1	0-11

पेड़ों में अनेक जीनी वंशागति के तरीके की व्याख्या करना सरल है क्योंकि पेड़ों में नियंत्रित संगम सम्भव है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक संकरण के उपरान्त बड़ी संख्या में संतति मिलती है जिसकी क्रमबद्ध व्याख्या आसानी से हो जाती है। मात्रात्मक वंशागति का लगभग प्रथम तथा भली भाँति अध्ययन किया हुआ उदाहरण है मक्के के भुट्टे की लम्बाई की वंशागति। इमर्सन तथा ईस्ट (1913) ने टॉम थम्ब किस्म का काली मैक्सिकन किस्म के साथ संकरण किया। टॉमथम्ब के भुट्टों की लम्बाई 5 से 8 सेंटीमीटर (औसत = 6.6 सेंटीमीटर) थी जबकि काले मैक्सिकन के भुट्टों की लम्बाई 13से21 सेंटीमीटर (औसत = 16.8 सेंटीमीटर) थी। इमर्सन तथा ईस्ट ने देखा कि F_1 संतति में भुट्टों की लम्बाई मध्यवर्ती 9 से 15 सेंटीमीटर (औसत = 12.1 सेंटीमीटर) थी। किन्तु F_2 पीढ़ी में विविधता परिसर अधिक था, 7 से 19 सेंटीमीटर यानी औसत F_1 पीढ़ी के लगभग समान था। चरम लक्षणप्ररूपी अपने
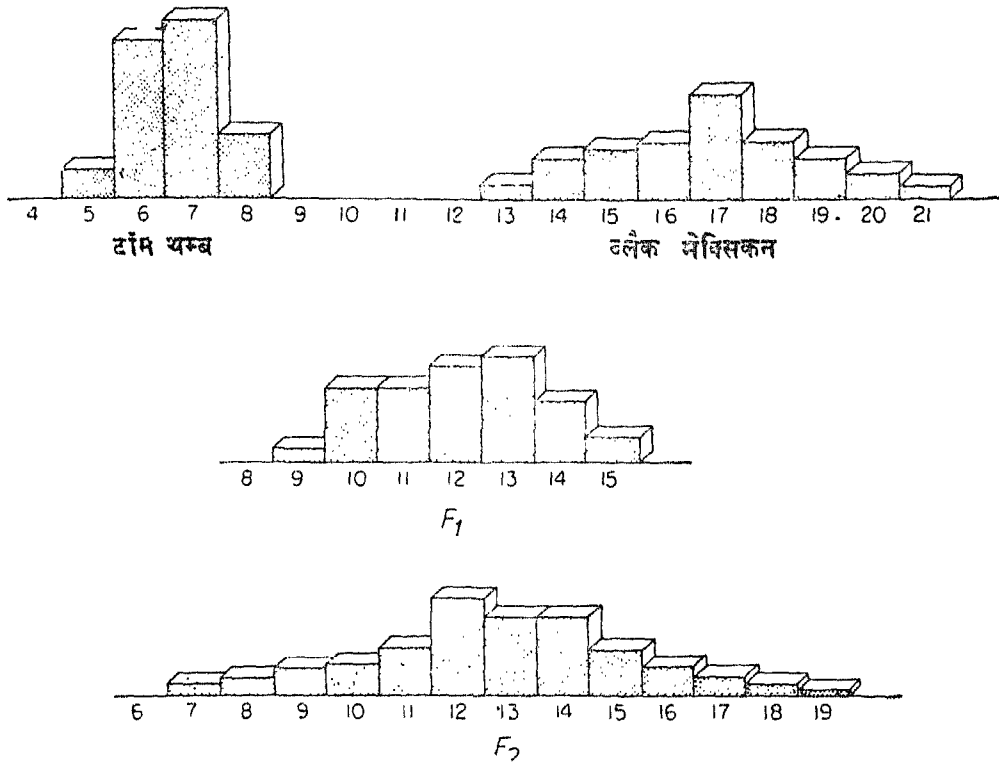
चित्र 22.2 : काली मैक्सिकन व टॉम थम्ब में भुट्टों की लम्बाई में विभिन्नता के विभिन्न स्तरों को दर्शाने वाला आयत चित्र तथा उनकी F_1 तथा F_2 पीढ़ी।

मूल के परिसर तक पहुँचे (चित्र 22.2)। इन परिणामों के आधार पर यह विचार प्रकट किया जा चुका है कि दो जीनयुग्म मक्के के पौधे में भुट्टे की लम्बाई को तय करते हैं। प्रभावी जीन की अनुपस्थिति में भुट्टे की लम्बाई 6.6 सेंटीमीटर होती है जैसा टॉमथम्ब किस्म में देखने को मिलता है। प्रत्येक प्रभावी जीन भुट्टे की लम्बाई पर एक समान प्रभाव डालता है तथा भुट्टे की मूल लम्बाई (6.6 सेंटीमीटर) को बढ़ाता है जैसा कि

$$\frac{16.8 \text{ (काले मैक्सिकन की औसत)} - 6.6 \text{ (टॉमथम्ब की औसत)}}{4 \text{ (भुट्टे की लम्बाई के लिए जीन की संख्या)}} = 2.55 \text{ सें॰ मी॰ (प्रत्येक जीन का योगदान)}$$

तालिका 22.2 से प्रमाणित हो रहा है। यह तालिका टॉमथम्ब (aa bb) तथा काले मैक्सिकन (AA BB) किस्मों के संकरण से उत्पन्न F_2 संतति के विभिन्न जीन प्ररूपियों के भुट्टों की लम्बाई को दर्शाती है। अनेक जीनी वंशागति के समस्त उदाहरणों में चरम लक्षणप्ररूपी दुर्लभ है तथा मध्यवर्ती प्रकार अधिक होते हैं। जैसे-जैसे विसंयोजित विकल्पियों की संख्या बढ़ती जाती है, F_2 संतति में मूल की भाँति होने की सीमा घटती जाती है तथा मध्यवर्ती वर्ग की संख्या बढ़ती जाती है।

यदि अनेक जीनी वंशागति के परिणामों को आयत चित्र में आगे आने वाली पीढ़ी के विभिन्न वर्गों के वितरण प्रकार को दर्शाने के लिए चित्रित किया जाये तो यह साफ जाहिर हो जायेगा कि यह मैंडलीय विसंयोजन के तरीके से अत्यधिक भिन्न है। एक सामान्य मैंडलीय एकसंकर विसंयोजन में, दो अभिभावक, दो भिन्न-भिन्न लक्षणप्ररूपी

वर्ग के होते हैं : समयुग्मजी प्रभावी तथा समयुग्मजी अप्रभावी। F_1 में एक विकल्पी के दूसरे विकल्पी पर प्रभावित होने के कारण समस्त संतति एक मूल की भाँति लक्षण दर्शाता है। द्वितीय पीढ़ी में प्रभावी तथा अप्रभावी लक्षणप्ररूपी का विसंयोजन 3:1 के अनुपात में होता है। इसके अतिरिक्त अनेक जीन वंशागति में दो वर्गों के होते हैं किन्तु F_1 संतति मध्यवर्ती लक्षण की होती है क्योंकि प्रभावी जीनों का तनुकरण हो जाता है। F_2 संतति और भी बिखरी हुई होती है। मैंडलीय एक संकर विसंयोजन (एकजीनी) तथा अनेक जीनी वंशागति का तुलनात्मक चित्रण चित्र 22.3 में किया गया है।

दो या तीन जीन विसंयोजन के उपरान्त $_2F$ संतति के लक्षणप्ररूपी वितरण को दर्शाने वाले आयतचित्रों की तुलना (चित्र 22.4) से ज्ञात होता है कि विसंयोजित जीनों की संख्या जितनी अधिक होगी, बिखराव अथवा फैलाव भी उतना ही अधिक होगा। इस प्रकार वितरण आवृत्ति के आधार पर इस तथ्य का अनुमान लगाया जा सकता है कि कितने जीन, अनेक जीन की वंशागति में संयुक्त हैं।

पेड़ों तथा जीवों में अनेक जीन वंशागति के अनेकों उदाहरण उपलब्ध हैं। इनमें से अधिकतर उदाहरण आसानी से पहचान लिये जाने वाले मात्रात्मक लक्षणों से सम्बन्धित हैं। साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि विकास के दौरान गुणसूत्रों अथवा गुणसूत्रों के भागों का द्विगुणन हुआ जिसके कारण एक ही जीन की अनेकों प्रतिलिपियाँ बन गईं।

कुछ मात्रात्मक लक्षण एक जीन से भी नियंत्रित हो जाते हैं तथा एक से अधिक जीनों से भी योज्य अथवा
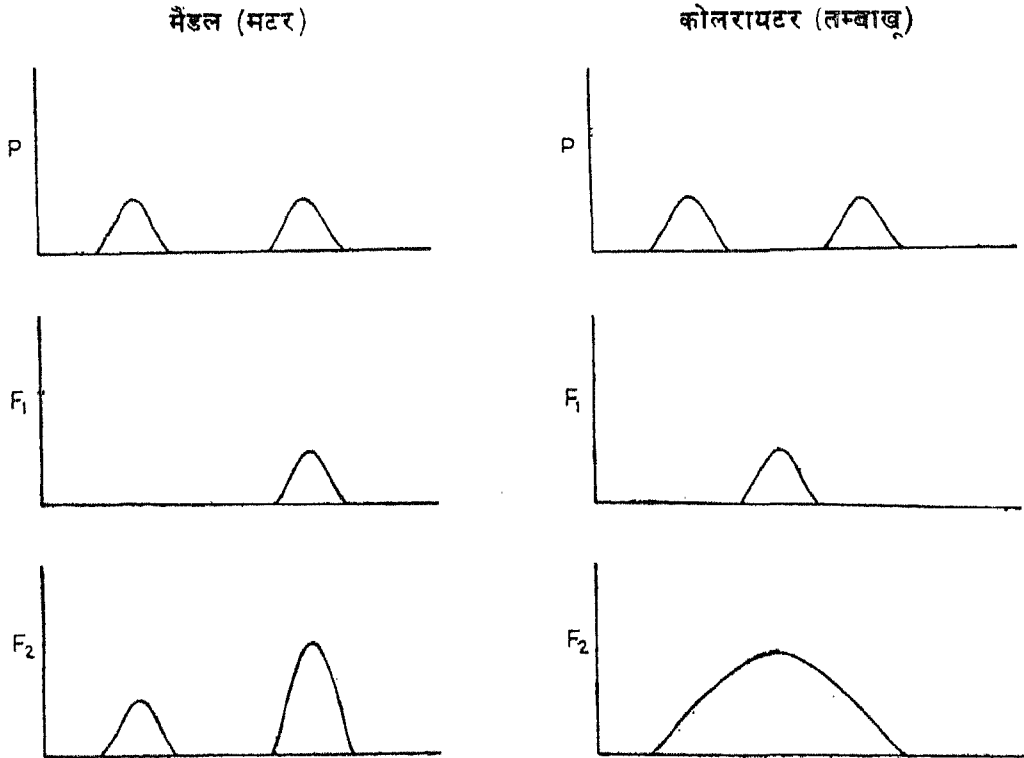
चित्र 22.3 : एक जीनी (बायें) तथा बहुजीनी (दायें) वंशागति के परिणामों के तुलनात्मक लेखाचित्र। सबसे ऊपर की लाइन में मूल के लक्षणप्ररूपी वितरण को दिखाया गया है जबकि बीच की तथा नीचे की लाइन में क्रमशः F_1 तथा F_2 संतति के लक्षणप्ररूपी वितरण को दिखाया गया है।
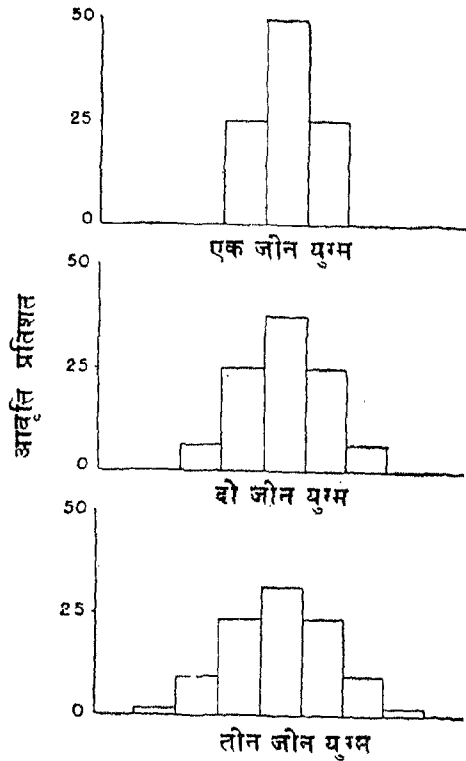
चित्र 22.4 : एक, दो तथा तीन विसंयोजित जीन युग्मों के साथ F_2 के लक्षणप्ररूपी वितरण का आयतचित्र ।

संचयी तरीकों से नियंत्रित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए मीठी मटर में लम्बाई का लक्षण अनेकों जीनों से भी नियंत्रित होता है तथा एक जीनयुग्म से भी। लम्बे तथा वामन पौधों में विभिन्न लक्षणप्ररूपियों में प्रभावी जीनों की विभिन्न संख्याओं के कारण विविधता परिसर है। किन्तु लम्बे पौधे में एक उत्परिवर्तन से वामन पौधा पैदा हो सकता है।

तालिका 22.2

मक्के के टॉमथम्ब तथा काली मैक्सिकन किस्मों के संकरण के F_2 संतति के विभिन्न जीन प्ररूपियों के भुट्टों की औसत लम्बाई।

जीनप्ररूपी	आवृत्ति	भुट्टे की लम्बाई सें० मी० में	लक्षणप्ररूपी अनुपात
AA BB	-1-	16.8	1
Aa BB	-2-	14.2	4
AA Bb	-2-	14.2	
Aa Bb	-4-	11.7	
aa BB	-1-	11.7	6
AA bb	-1-	11.7	
aa Bb	-2-	9.1	4
Aa bb	-2-	9.1	
aa bb	-1-	6.6	1

प्रश्न

1. यह विचार गैल्टन को कैसे आया कि कुछ वंशागत विविधतायें असंतत के स्थान पर संतत हैं ?

2. अनेकजीनी वंशागति के एक उदाहरण का वर्णन करो।

3. चुहिया में त्वचावर्ण की वंशागति के तरीके का वर्णन करो।

4. जीवों की तुलना में पेड़ों में वंशागति के प्रकार की व्याख्या करना अधिक सरल क्यों है ?

5. एकजीनी तथा अनेकजीनी वंशागति में भिन्नता बताओ।

6. अनेकजीनी वंशागति में सक्रिय जीनों की संख्या का अनुमान आवृत्ति से कैसे लगाया जा सकता है ?

अध्याय 23

मानव आनुवंशिकी

मैंडल के वंशागति के सिद्धांत समस्त जीवित जीवों पर लागू होते हैं। मनुष्य भी अपवाद नहीं है। आनुवंशिक विज्ञान के दूसरे आधारभूत सिद्धांत भी जिनकी जीवाणु, फफूंद, फलमक्खी, मक्का इत्यादि पर प्रयोग करके खोज की गई है, मानवजाति पर लागू होते हैं। आनुवंशिक विज्ञान के प्रारम्भिक वर्षों में मनुष्य वंशागति के अध्ययन के लिए उचित जीव नहीं था। क्योंकि मनुष्य में नियंत्रित प्रजनन प्रयोग नहीं किए जा सकते तथा प्रत्येक विवाह के बाद संतति बहुत कम होती है और जीवन चक्र बहुत लम्बा होता है इसलिए अधिकांश प्रारम्भिक आनुवंशिक अन्वेषण वंशावली की व्याख्या पर आधारित हैं। लेकिन हाल के वर्षों में नई तकनीकी उन्नति के कारण हम मानव जाति में बड़ी संख्या में लक्षणों की वंशागति का तरीका समझने में सफल हुए। मानव आनुवंशिकी के पाँच मुख्य उपगमन निम्नलिखित हैं :

1. आजकल वंशावली के अभिलेख को अच्छी प्रकार दर्ज करके प्रतिपादित किया जाता है। इससे यह जानने में मदद मिलती है कि एक विशेष लक्षण की वंशागति हुई है या नहीं। एक विशेषक का कई पीढ़ियों में पारगमन सरलता से अनुरेखित किया जा सकता है।

2. संतति के छोटी संख्या में उत्पन्न होने के कारण जो बाधायें आ सकती थीं उन्हें उन तरीकों से दूर कर दिया गया है जिन का उपयोग समष्टि में लक्षणों के प्रारब्ध की व्याख्या करने में होता है। समष्टि आनुवंशिकी, हाल के वर्षों में प्राणिविज्ञान की एक अतिआवश्यक तथा उत्पादक शाखा के रूप में विकसित हुई है तथा इसका उपयोग मानव आनुवंशिकी के अध्ययन के लिए हुआ है।

3. जैव रासायनिक आनुवंशिकी तथा मानव कोशिकाओं को फ्लास्क, परखनली अथवा पेट्रीडिश में उत्पत्ति माध्यम से उत्पन्न करने की तकनीक का आगमन तथा कायिक कोशिका आनुवंशिकी की तकनीकों से हमें विभिन्न विशेषकों की वंशागति का जैव रासायनिक आधार समझने में मदद मिली है। इनसे हमें मानवजाति की वृद्धि तथा विस्तार संबंधी शरीर क्रिया विज्ञान को समझने में भी मदद मिली है।

4. मानव कोशिका विज्ञान बहुत सरल बना दिया गया है। सन् 1956 तक मानव में कायिक गुणसूत्रों की सही संख्या नहीं मालूम थी। किन्तु अब मनुष्य तथा चूहे के गुणसूत्रों को एक ही कोशिका में रखना तथा इस कायिक संकर में से कुछ गुणसूत्रों का निराकरण करना भी सम्भव हो गया है।

5. अनेक लक्षणों का आनुवंशिक आधार समरूप तथा द्विअण्डज यमज के लक्षणप्ररूपियों की तुलना करके स्थापित किया गया है। समरूप **यमज** एक ही **युग्मज** से बनते हैं। इस दशा में दो कोशिका वाला भ्रूण दो स्वतंत्र कोशिकाओं में बदल जाता है—इसमें से प्रत्येक कोशिका एक जीव को बनाती है। इसलिए समरूप **यमजों** की आनुवंशिक रचना एक समान होती है, यदि कोई दुर्लभ उत्परिवर्तन ना हो गया हो तो। द्विअण्डज यमज एक ही समय में दो अण्डों का अलग-अलग निषेचन होने से

बनते हैं। दूसरे शब्दों में द्विअण्डज यमज दोहरे अण्डोत्सर्ग से बनते हैं इसलिए इस प्रकार के यमज एक दूसरे के इतना ही समान होते हैं जितना कोई भी भाई-बहन। ये **यमज** सामान्य रूप से अधिक से अधिक 50 प्रतिशत लक्षणों में समानता दिखाते हैं। इस प्रकार समरूप **यमजों** में जो भी लक्षण असमान होते हैं, उसका कारण वातावरण होता है, वंशागति नहीं। समरूप तथा द्विअण्डज **यमजों** में वंशागतित्व की माला का क्रमबद्ध अध्ययन करके व्याख्या की जा सकती है।

मानव आनुवंशिकी इतने आगे बढ़ चुकी है कि अब लोग मानवजाति को एकपूर्वजक करने तथा आनुवंशिक इंजिनियरिंग द्वारा लक्षणप्ररूपी को सिलने तथा बनाने की चर्चा करते हैं। मानव आनुवंशिकी का जन्म 1901 में हुआ था जब एक ब्रिटिश चिकित्सक, सर आरचीबाल्ड गैरोड ने बताया कि उपापचय संबंधी आन्तरिक दोष जीनों द्वारा नियंत्रित होते हैं तथा इनकी वंशागति मैंडलीय नियमों के अनुसार ही होती है। तब से लेकर आज तक बड़ी संख्या में विरूपतायें, बुरी बनावटें तथा अनेक रोगों की वंशागति होती हुई दिखायी गई है। इनमें से कुछ जीन द्वारा नियंत्रित होती हैं जबकि शेष गुणसूत्रों की कुल अपसामान्यतया से सम्बन्धित होती हैं।
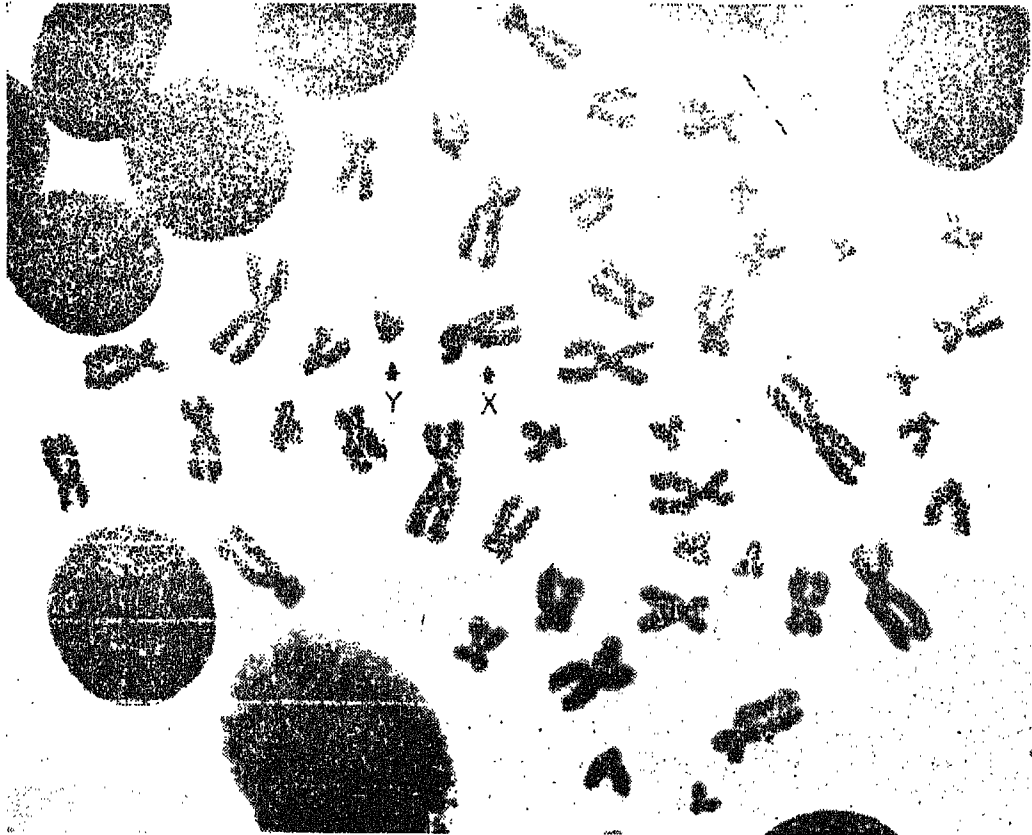
चित्र 23.1 : एक सामान्य नर के पूरक गुणसूत्र । X तथा Y गुणसूत्रों को तीर के निशान से दिखाया गया है।

मानव गुणसूत्र

टिजओ तथा लेवन (1956) ने मानव में कायिक गुणसूत्रों की संख्या 2n=46 मालूम की थी। इस प्रकार हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं (चित्र 23.1)। इन 23 युग्मों में से 22 युग्म नर तथा मादा में एक समान हैं। इनको अलिंगसूत्र कहते हैं। 23वें युग्म के दोनों गुणसूत्र मादाओं में एक समान ही होते हैं (चित्र 23.2)। किन्तु नरों में असमान होते हैं (चित्र 23.3)। नरों में इस युग्म का एक गुणसूत्र लम्बा होता है और मादा के 23वें गुणसूत्र युग्म के समान होता है, किन्तु इसका दूसरा साथी बहुत छोटा होता है। दोनों लिंगों में 23वें युग्म को लिंगगुणसूत्र युग्म कहते हैं। मादा लिंग गुणसूत्रों को XX तथा नर लिंगगुणसूत्रों को XY कहते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र युग्म की दो भुजाओं की लम्बाई तथा गुणसूत्र बिन्दु की स्थिति के अनुसार एक विशेष रचना होती है। गुणसूत्रों को कृत्रिम रूप से क्रम में रखा जा सकता है। इसके लिए समजात गुणसूत्रों को फोटो में से काट लिया जाता है फिर उन्हें पास-पास क्रम रूप से रखा जाता है। लिंग गुणसूत्रों के अतिरिक्त विभिन्न युग्मों को उनकी लम्बाई के अनुसार क्रमबद्ध करते हैं। लिंगगुणसूत्रों को अंत में रखते हैं। यह प्रबंध गुणसूत्र प्रारूप या गुणसूत्रों की सापेक्ष रचना को भली भांति दर्शाता है। इस तकनीक से मानव के समस्त 23 गुणसूत्र युग्मों को ठीक से पहचान लिया गया है। तथा प्रत्येक गुणसूत्र युग्म को एक संख्या भी दे दी गई है। किसी भी गुणसूत्र में कोई भी रचनात्मक परिवर्तन शीघ्र ही पता लग सकता है। हाल के वर्षों में 1969 से ऐसी तकनीकी खोजें की जा चुकी हैं जिनके द्वारा मानव गुणसूत्रों को विभिन्न प्रतिदीप्त शील रंगों द्वारा रँगा जा सकता है। विभिन्न अभिक्रियाओं के परिणाम स्वरूप गुणसूत्र की लम्बाई के साथ-साथ विभिन्न पट्टरचनाएँ (अभिरंजित तथा ना रंगे हुए हिस्से की एकान्तर पट्ट-रचनाएँ) बनती हैं। एक अभिक्रिया के लिए एक विशेष गुणसूत्र की पट्टरचनाएँ स्थिर होती हैं। प्रत्येक गुणसूत्र
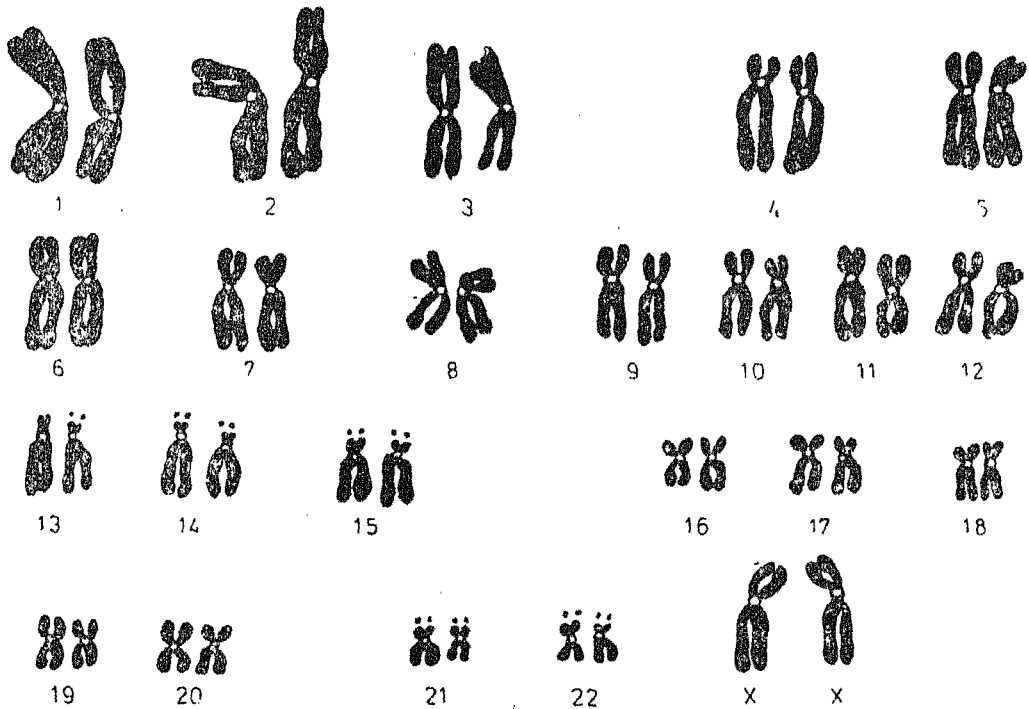
चित्र 23.2 : एक सामान्य मादा के युग्मों में व्यवस्थित गुणसूत्र।
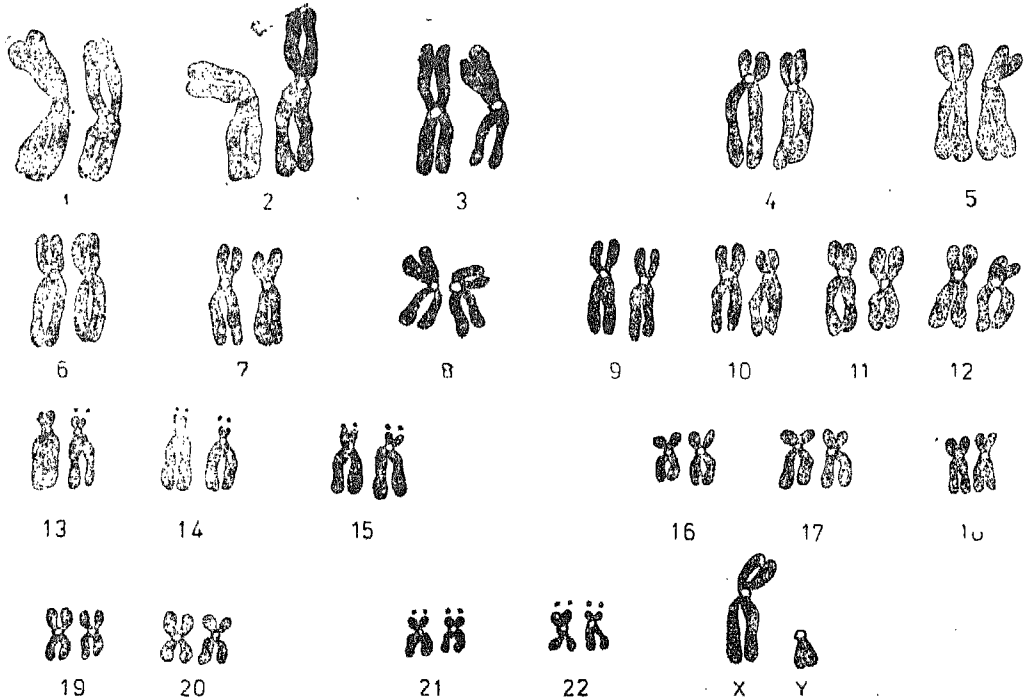
चित्र 23.3 : एक सामान्य नर के युग्मों में व्यवस्थित गुणसूत्र ।

एक विशेष अभिक्रिया के साथ एक विशेष रचना दिखाता है। यह तकनीक किसी भी गुणसूत्र के विभिन्न हिस्सों को जानने में मदद देती है। अभी चार विभिन्न प्रकार की पट्टरचनाएँ ज्ञात हैं तथा उन्हें Q,G,R तथा C के नाम से जाना जाता है। इनके यह नाम गुणसूत्रों को दी गई अभिक्रियाओं के अनुसार हैं (चित्र 23.4)। मानव गुणसूत्रों के कोशिका विज्ञान संबंधी अध्ययन से हमें बहुत मदद मिली है। इस की मदद से हम अनेक जन्मजात बुरी बनावटों को गुणसूत्र संख्या तथा गुणसूत्र संरचना की असामान्यता के साथ परस्पर संबंधित कर सकते हैं। यह देखा जा चुका है कि एक हजार जीवित जन्मों में से चार या पाँच में तथा 5 स्वाभाविक गर्भपातों में से एक में गुणसूत्र संबंधी असामान्यताएँ होती हैं। गुणसूत्र असामान्यताएँ अलिंगगुणसूत्रों तथा लिंग गुणसूत्रों दोनों में ही हो सकती हैं।

अलिंग गुणसूत्री विरूपताएँ

मोंगोलिज़्म या डाउन्स सिन्ड्रोम (चित्र 23.5) का सन् 1866 में उल्लेख किया गया था। रोगी बच्चों में चौड़ा माथा, छोटी गर्दन, चपटे हाथ, मोटी (स्थूल) उँगलियाँ, स्थाई रूप से खुला हुआ मुँह, नीचे का होंठ निकला हुआ तथा काफी लम्बी जीभ होती है। पीड़ित व्यक्ति में दिमाग की बुरी बनावट होती है जिसके कारण बुद्धि भी कम होती है। हृदय तथा दूसरे अंगों में विरूपताएँ भी देखी गई हैं। यद्यपि इस रोग का पता काफी पहले से था, तथापि रोग का मुख्य कारण 1959 में ही खोजा जा सका। यह देखा गया कि ऐसे रोगियों में 46 के स्थान पर 47 गुणसूत्र होते हैं। गुणसूत्र नं० 21 तीन होते हैं। इस छोटे से अतिरिक्त गुणसूत्र के लक्षणप्ररूपी की सामान्य वृद्धि को तितर बितर करने के लिए पर्याप्त अतिरिक्त आनुवंशिक पदार्थ होता है। डॉन्स सिन्ड्रोम एक बहुत ही सामान्य जन्मजात अपसामान्यता है जो 600 जन्मों में से एक में अवश्य होती है। अब यह भी जाना जा चुका है कि यह अतिरिक्त गुणसूत्र अण्डकोशिका के बनने के दौरान एक त्रुटि से बन जाता है। गुणसूत्र संबंधी अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस त्रुटि का कारण है अर्ध-

चित्र 23.4 : क्विनेक्रिन(Q), जिम्सी(G), जिम्सी का विपरीत (R) तथा अहेतुक विषमवर्णक (C)। मानव के तीन बड़े गुणसूत्रों के पट्ट।
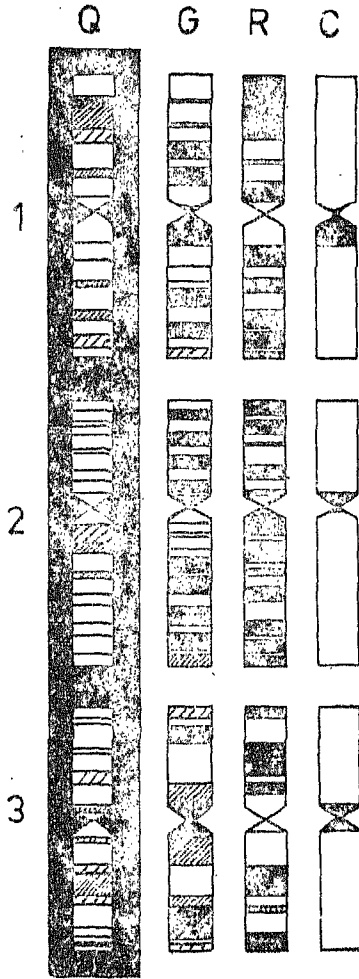
सूत्री विभाजन के दौरान 21वें गुणसूत्रयुग्म के गुणसूत्रों का अलग अलग ना होना। इसलिए एक ऐसा अण्ड बन जाता है जिसमें 23 के स्थान पर 24 गुणसूत्र होते हैं। इस प्रकार के दोष अधिकतर ज्यादा उम्र वाली महिलाओं के अण्डाशय में होते हैं। इसी कारण से इस प्रकार के बच्चे उन माताओं से पैदा होते हैं जिनकी उम्र 40 वर्ष से अधिक है।
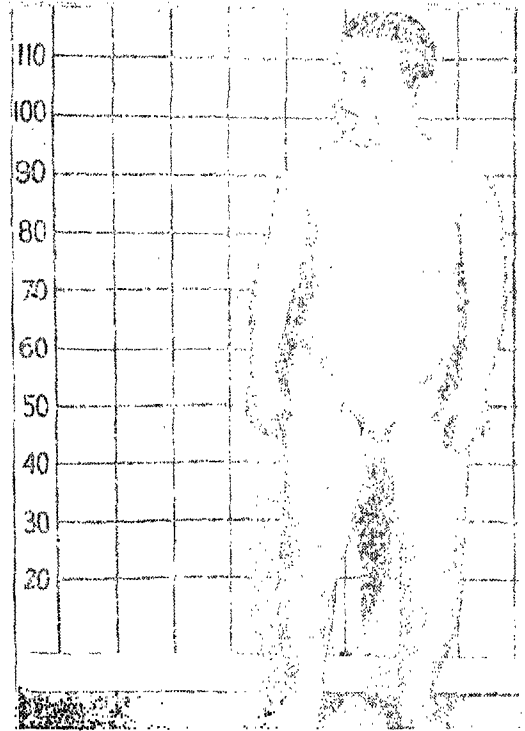
चित्र 23.5 : डाउन्स सिन्ड्रोम

मोंगोलिज्म की भाँति अनेकों दूसरे प्रकार के अक्रम विकारों को भी बताया गया है जो पूरक गुणसूत्र के एकान्तरण के कारण होता है। इनमें से सबसे अधिक प्रचलित विकारों के कारण हैं—एक अतिरिक्त 18वाँ (एडवर्ड सिन्ड्रोम), पहला (पेटन सिन्ड्रोम), 8वां, 9वां या 13वां गुणसूत्र का होना। 20वें गुणसूत्रयुग्म में से एक की अनुपस्थिति में प्रत्येक कोशिका में इस प्रकार का एक ही गुणसूत्र होगा। इस कारण से भी जन्मजात बुरी बनावटें हो जाती हैं। कभी कभी गुणसूत्रों के कुछ भाग खो जाते हैं या बढ़ जाते हैं—ऐसा मानसिक रूप से मंदित या अपसामान्य लक्षणप्ररूपी में देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए 13वें या 15वें गुणसूत्रों में कुछ भाग का अधिक होना, विभिन्न प्रकार के लक्षणप्ररूपी अपेरण से सम्बन्धित है। दो गुणसूत्रों के कुछ भागों के प्रतिलोपन या विलोपन के परिणामस्वरूप भी विभिन्न प्रकार की बुरी बनावटें तथा घटती हुई प्रजनन शक्ति हो सकती है।

लिंगगुणसूत्रों में अपसामान्यतायें

लिंगगुणसूत्रों में अलिंगगुणसूत्रों की अपेक्षा अधिक अपेरण होते हैं। गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन के कारण अनेकों प्रकार के सिन्ड्रोमों का पता लगाया जा चुका है जिनको निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं :

(क) टरनर सिन्ड्रोम

मादा में केवल एक X-गुणसूत्र का होना (XO)। ऐसी मादाओं की काठी छोटी होती है, लैंगिक विकास मंद, बंध्यता, गर्दन की त्वचा ढीली तथा अनेकों अन्य अपसामान्यतायें होती हैं। इसकी आवृत्ति 3000 जन्मों में एक होती है।

(ख) क्लाइनेफेल्टर सिन्ड्रोम

नरों में अतिरिक्त X-गुणसूत्र का होना (XXY, XXXY, XXXXY, XXYY, XXXYY; आदि)। ऐसे नरों में गौण लैंगिक लक्षण मादा के समान होते हैं जिससे इन्हें पहचाना जा सकता है। इनके लक्षण हैं—लम्बी भुजायें, बंध्यता, शुक्रजनक नलिकाओं का अपह्रासन, सीमित बुद्धि तथा मानसिक मंदता। X-गुणसूत्रों की संख्या में जितनी वृद्धि होती जायेगी, मानसिक दोष भी उतना ही बढ़ता जायेगा।

(ग) मादाओं में अतिरिक्त X-गुणसूत्र का होना (XXX, XXXX, XXXXX)। इसके कारण प्रत्येक कोशिका में 47, 48, 49 गुणसूत्र हो जाते हैं। ऐसी मादाओं में लैंगिक विकास अपसामान्य होता है तथा साथ ही इस प्रकार की मादाएँ मानसिक रूप से मंद होती हैं। जैसे जैसे X-गुणसूत्रों की संख्या बढ़ती जाती है वैसे वैसे लक्षण भी भयंकर रूप धारण करते जाते हैं।

(घ) नरों में एक अतिरिक्त Y-गुणसूत्र का होना (XYY)। इन नरों की लम्बाई असामान्य होती है, मानसिक मंदता तथा अपराधी प्रवृत्ति होती है। इनकी जननेन्द्रियों में विकास संबंधी अपसामान्यताएँ होती हैं।

सिन्ड्रोम के प्रकार को सरलता से पता लगाया जा सकता है। इसका पता बालों की जड़ों की एपीथीलियल कोशिकाओं तथा मुख श्लेष्मिका के लिंग क्रोमेटिन या Y-पिंड की व्याख्या करने से लगता है। एक सामान्य मादा में दो X-गुणसूत्रों में से एक X-गुणसूत्र विषमवर्णी हो जाता
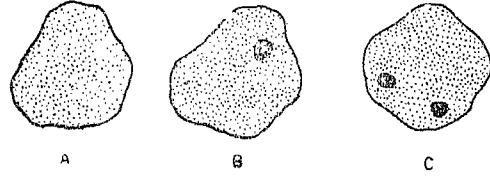
चित्र 23.6 : मानव की द्विगुणित कोशिकाओं में बार पिंड। (A) सामान्य नर की कोशिका जिसमें कोई बार पिंड नहीं है। (B) सामान्य मादा की एक कोशिका जिसमें एक बार पिंड है। (C) तीन X-गुणसूत्रों वाले एक मानव की कोशिका जिसमें दो बार पिंड हैं।

है तथा अन्तरावस्था में क्रोमेटिन की भाँति नजर आता है और ओर्सिन के द्वारा अभिरंजित किया जा सकता है (चित्र 23.6)। इस पिंड को बार पिंड कहते हैं। नरों के अन्तरावस्था केन्द्रक में यह पिंड नहीं पाया जाता क्योंकि प्रत्येक कोशिका में केवल एक गुणसूत्र होता है। यदि कोशिकाओं में X-गुणसूत्रों की संख्या अधिक है तो बार पिंड की संख्यायें भी अधिक होंगी। जिन कोशिकाओं में तीन X-गुणसूत्र होंगे, उनमें तीन बार पिंड होंगे इत्यादि। इसी प्रकार अन्तरावस्था की कोशिकाओं में Y-गुणसूत्रों की संख्या भी पता लगायी जा सकती है क्योंकि Y-गुणसूत्र की लम्बी भुजा में एक चमकीला प्रतिदीप्तिशील पट्ट होता है जो क्विनेक्रिन वर्णक से अभिरंजित, अन्तरावस्था केन्द्रक में पराबैंगनी प्रकाश की उपस्थिति में प्रतिदीप्तिशील बिन्दु की भाँति दिखाई पड़ता है। इस प्रकार अन्तरावस्था केन्द्रक में Y-बिन्दु तथा बार पिंडों की संख्या ज्ञात करके Y तथा X-गुणसूत्रों की संख्या ज्ञात की जा सकती है जिसके कम या अधिक होने से अपसामान्यतायें पैदा हो जाती हैं (तालिका 23.1)।

संग्रथित जीनोम समूहों के कारण अपसामान्यतायें

एक सामान्य मनुष्य जीनोम के दो समूह के साथ द्विगुणित (2n=46) होता है। कभी कभी दो से अधिक समूह भी होते हैं। वे व्यक्ति जिनमें 3 (3n=69), 4 (4n=92) तथा 8 (8n=184) गुणसूत्रों के समूह होते हैं, वे भाँति भाँति की अपसामान्यतायें दिखाते हैं।

जीन उत्परिवर्तनों के कारण अपसामान्यतायें

मानवजाति में कई एक बीमारियाँ या रोग उत्परिवर्तनों के कारण होते हैं जिसके कारण जीवित जीनों में

या तो कार्यों में कमी आ जाती है या वे अपसामान्य कार्य करने लगते हैं। उत्परिवर्तन लिंगगुणसूत्र या अलिंगगुणसूत्र किसी में भी उत्पन्न हो सकते हैं। यदि उत्परिवर्तन लिंगगुणसूत्र में है तो यह लिंग सहलग्नी वंशागति दर्शाता है या फिर किसी एक लिंग में ही प्रगट होता है। हीमोफीलिआ तथा लाल हरे रंग का अंधापन लिंग सहलग्नी त्रुटि के अच्छे उदाहरण हैं। हीमोफीलिआ के पारगमन के अध्ययन से लिंग सहलग्नी वंशागति के विशेष लक्षण को समझा जा सकता है।

पुरुषों तथा स्त्रियों के X-गुणसूत्रों में एक जीन होता है जो एक जैव प्रतिनिधि के उत्पादन को नियंत्रित करता है। यह प्रतिनिधि रक्त स्रवण के समय रक्त का शीघ्र स्कन्दन करता है। पुरुषों में प्रत्येक कोशिका में केवल एक X-गुणसूत्र होता है। इसलिए पुरुषों में स्कंदन उत्पन्न करने वाला केवल एक ही जीन होता है। कभी कभी इस जीन का उत्परिवर्तन हो जाता है जिससे इस जैव प्रतिनिधि का उत्पादन रुक जाता है। महिलाओं में दो X-गुणसूत्र होते हैं इसलिये एक गुणसूत्र में यदि इस प्रकार

चित्र 23.7 : मानव में हीमोफीलिआ की लिंग सहलग्न वंशागति की वंशावली।

की जीन त्रुटि हो भी तो इस त्रुटिपूर्ण जीन का सामान्य विकल्पी दूसरे X-गुणसूत्र पर स्थित होता है तथा इस प्रकार की महिला पर त्रुटिपूर्ण जीन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु इस प्रकार की महिलायें इस रोग की वाहक अवश्य होती हैं (XX^h)। यदि एक वाहक महिला का विवाह एक सामान्य पुरुष (XY) से हो जाये तो वे निम्नलिखित प्रकारों की सन्तान पैदा कर सकते हैं : XX, XY, X^hX तथा X^hY (चित्र 23.7)—XX तथा XY सन्तानें क्रमशः सामान्य पुत्री तथा पुत्र होंगे। X^hX एक वाहक पुत्री होगी तथा X^hY एक हीमोफिलिक पुत्र होगा क्योंकि नर के Y-गुणसूत्र में कोई भी ऐसा विकल्पी नहीं होता जो X-गुणसूत्र पर स्थित इस त्रुटिपूर्ण जीन को निष्फल कर सके। अनेकों X-गुणसूत्र पर स्थित जीनों के विकल्पी Y-गुणसूत्र पर नहीं होते। महिलायें हीमोफिलिक तब ही हो सकती हैं जब दोनों X-गुणसूत्रों पर हीमोफीलिआ का जीन हो (X^hX^h)। यह तभी सम्भव है जब वाहक (X^hX) या हीमोफिलिक स्त्री (X^hX^h) का विवाह किसी हीमोफिलिक नर (X^hY) से हुआ हो। पहली स्थिति में केवल 50% महिला संतति हीमोफिलिक होगी जबकि बाद की स्थिति में समस्त महिला संतति हीमोफिलिक होगी।

हीमोफीलिआ को सामान्य रूप से ब्लीडर रोग कहते हैं। अब यह ज्ञात हो चुका है कि हीमोफीलिआ दो प्रकार का होता है : (1) हीमोफीलिआ A प्रतिहीमोफीलिआ ग्लोबुलिन के अभाव के कारण तथा (2) हीमोफीलिआ B प्लाज्माथ्रोम्बो प्लासटिन के अभाव के कारण। आज तक हीमोफीलिआ का कोई स्थायी उपचार नहीं मालूम है। हीमोफीलिआ एक लिंग सम्बन्धी लक्षण है क्योंकि इसकी वंशागति लिंग गुणसूत्रों द्वारा होती है। यह वाहक माँ से पुत्र तक पहुँचता है। हीमोफीलिआ एक सामान्य जीन में अप्रभावी उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद यह पीढ़ी दर पीढ़ी अनगिनत पीढ़ियों में पहुँचता रहता है जब तक कि यह विपरीत उत्परिवर्तन अथवा वाहक या रोगी की मृत्यु के साथ समाप्त ना हो जाये।

जीनों की असंगतता के कारण अक्रम विकार

अभी तक हमने केवल वंशागत अक्रम विकारों की चर्चा की जो गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन या वृद्धि, गुणसूत्रों के खण्डों या जीनों के समूह की व्यवस्था में कमी या परिवर्तन, या जीनों में उत्परिवर्तन के कारण होते हैं। सामान्य मूल के सामान्य युग्मकों के मेल के बाद भी अक्रम विकार उत्पन्न हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में सामान्य जनक अपसामान्य अथवा घातक संतानों को जन्म दे सकते हैं। यह दो जनकों के जीनों के

बीच में असंगतता के कारण हो सकता है।

कोई भी दो मनुष्य एक समान नहीं होते क्योंकि भिन्न भिन्न मनुष्यों में भिन्न भिन्न जीनों के समूह होते हैं। जीन, रासायनिक पदार्थों के संश्लेषण का नियंत्रण करते हैं। इसलिए दो मानवों के रासायनिक पदार्थ भी यथावत् समान नहीं होते। परेशानी तब होती है जब दो ऐसे लोगों का विवाह हो जाता है जिनके पास भिन्न भिन्न असंगत रसायन पदार्थ हैं। अनेकों रासायनिक पदार्थों में से दो पदार्थ इस प्रकार के दोषों के लिए जाने जाते हैं : एक तो है Rh प्रतिनिधि तथा दूसरा है ABO रक्त वर्ग। Rh प्रतिनिधि तथा रक्त वर्ग दोनों ही आनुवंशिकतः नियंत्रित होते हैं तथा रक्त के लक्षणों को विशेषता देते हैं। रक्त के साधारण रासायनिक परीक्षणों के द्वारा इसकी दूसरे रक्त के साथ संगतता का अनुमान लगाया जा सकता है।

Rh प्रतिनिधि - सन् 1940 में यह खोज की गई थी कि कुछ लोगों की लाल रक्त कोशिकाओं की सतह पर एक प्रकार की प्रोटीन होती है जो रीसस बन्दर के रक्त में भी उपस्थित होती है (इसलिए इसे Rh प्रतिनिधि कहते हैं)। अमरीका में लगभग 85% लोगों में यह प्रतिनिधि होता है। अर्थात् वे Rh-पॉजिटिव (Rh^+) होते हैं तथा लगभग 15% लोगों में यह प्रतिनिधि नहीं होता यानी वे Rh-निगेटिव (Rh^-) होते हैं। आनुवंशिक अध्ययन से मालूम हुआ है कि Rh प्रोटीन का संश्लेषण एक प्रभावी जीन के द्वारा नियंत्रित होता है, जिसको R कहते हैं। इसलिए RR (समयुग्मजी प्रभावी) तथा Rr (विषम-युग्मजी) जीव Rh- पॉजिटिव हैं और rr (समयुग्मजी अप्रभावी) जीव Rh- निगेटिव हैं। Rh पॉजिटिव तथा Rh निगेटिव **जीव**, दोनों का ही लक्षणप्ररूपी सामान्य होता है। परेशानी तब आती है जब Rh-निगेटिव **जीव** का रक्त Rh-पॉजिटिव **जीव** के सम्पर्क में आता है — ऐसा रक्ताधान अथवा गर्भ के दौरान हो सकता है।

यदि Rh निगेटिव **जीव** का रक्त पहले कभी Rh-पॉजिटिव जीव के रक्त से नहीं मिला हो तो Rh पॉजिटिव रक्त का प्रथम रक्ताधान हानिरहित होगा। Rh-निगेटिव जीव अपने शरीर के अन्दर प्रति-Rh-प्रतिनिधि बना लेंगे। किन्तु यदि पॉजिटिव रक्त का द्वितीय रक्ताधान दिया जाए तो तुरन्त प्रति -Rh- प्रतिनिधि दिए हुए रक्त पर आक्रमण कर देता है। दशा और भी खराब हो जाती है यदि Rh-

चित्र 23.8 : Rh असंगतता की क्रियाविधि। A माता का प्रथम गर्भ जिसमें माँ Rh (—) तथा भ्रूण Rh (+) है। भ्रूण का प्रोटीन (गोल छल्ले) माता में अ-प्रतिनिधि (काला) को उत्पन्न करता है। B प्रथम सन्तान में असर नहीं पड़ता किन्तु Rh(—) माता का रक्त अ-प्रतिनिधि को अपने में रख लेता है। C द्वितीय गर्भ के दौरान यदि भ्रूण फिर से Rh(+) है तो माता के अ-प्रतिनिधि भ्रूण की लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं।
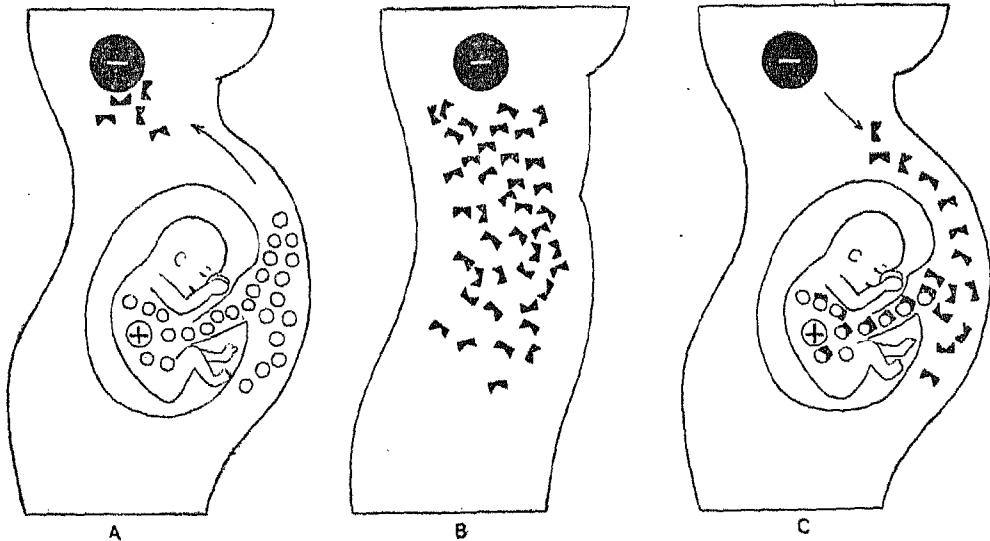
निगेटिव गर्भवती महिला के गर्भाशय में Rh-पॉजिटिव बच्चा हो (चित्र 23.8)। यदि उसका पहले कभी Rh-पॉजिटिव रक्त से, रक्ताधान या गर्भ द्वारा कोई संबंध ना रहा हो तो उसकी पहली सन्तान सुरक्षित होगी। भ्रूण का Rh-पॉजिटिव रक्त माता के रक्त में केवल प्रति-Rh-प्रतिनिधि के उत्पादन को उद्दीपित करेगा। गर्भ के दौरान पर्याप्त प्रति-Rh-प्रतिनिधि उत्पन्न नहीं हो पायेगा और इसीलिए पहली संतान खतरे से बच जाएगी। द्वितीय गर्भ के दौरान यदि बच्चा पुनः Rh-पॉजिटिव है तो माता के रक्त के 'प्रति-Rh-प्रतिनिधि' भ्रूण की रक्त कोशिकाओं पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर देते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे में रक्त की कमी हो जायेगी और बच्चा विकास संबंधी विभिन्न अपसामान्यतायें दर्शायेगा। सरलता को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर प्रतिनिधि की केवल दो विभिन्नताओं का वर्णन किया गया है। वास्तव में और भी अनेकों विविधतायें हैं। प्रत्येक परिवर्तन भिन्न विकल्पी द्वारा नियंत्रित होता है तथा उसकी वंशागति सम्भव है।

ABO रक्त वर्ग: Rh प्रतिनिधि के अतिरिक्त मनुष्यों की लाल रक्त कोशिकाओं की सतह पर दूसरे प्रकार का प्रोटीन हो सकता है जिसे A तथा B कहते हैं। इस प्रोटीन की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति के आधार पर मनुष्य निम्नलिखित रक्त वर्गों के हो सकते हैं :

(1) वर्ग A—जिनके पास केवल प्रोटीन A तथा B के लिए प्रति-प्रतिनिधि हो।

(2) वर्ग B—जिनके पास केवल प्रोटीन B तथा A के लिए प्रति-प्रतिनिधि हो।

(3) वर्ग AB—जिनके पास दोनों प्रोटीन A तथा B तथा किसी के लिए भी 'प्रति-प्रतिनिधि' ना हो।

(4) वर्ग O—जिनके पास कोई भी प्रोटीन A या B ना हो किन्तु दोनों के लिए प्रति-प्रतिनिधि हो।

ये रक्त वर्ग जीन $\llcorner$ की विभिन्न रचनाओं द्वारा नियंत्रित होते हैं जो तीन प्रकार की हो सकती हैं : $\llcorner$A, $\llcorner$B या $\llcorner$O। किसी भी जीव में इन तीन में से दो विकल्पी होते हैं। इसलिए ऊपर बताये गए चार रक्त वर्गों के लिए जीन प्ररूपी निम्नलिखित होंगे :

रक्त वर्ग A—$\llcorner$A $\llcorner$A या $\llcorner$A $\llcorner$O
रक्त वर्ग B—$\llcorner$B $\llcorner$B या $\llcorner$B $\llcorner$O
रक्त वर्ग AB $\llcorner$A $\llcorner$B
रक्त वर्ग O—$\llcorner$O $\llcorner$O

जैसे भिन्न-भिन्न Rh-प्रतिनिधि वाले जीव सामान्य होते हैं वैसे ही भिन्न-भिन्न रक्त वर्गों वाले जीव भी पूर्णरूप से सामान्य होते हैं। किन्तु कुछ रक्तवर्गों की असंगतता रक्ताधान या गर्भ के दौरान मालूम होती है। तालिका 23.2

तालिका 23.1

लिंग गुणसूत्रों की विभिन्न रचनाओं के साथ बार पिंडों व Y-बिन्दुओं की संख्या तथा मानव का लक्षणप्ररूपी।

लिंग गुणसूत्र	बार पिंडों की संख्या	Y-बिन्दुओं की संख्या	लक्षणप्ररूपी
मादा			
XO	0	0	टरनर सिन्ड्रोम
XX	1	1	सामान्य
XXX	2	0	अधिजाया मादा तथा मानसिक अपसामान्यता
XXXX	3	0	अधिजाया मादा तथा मानसिक अपसामान्यता
XXXXX	4	0	अधिजाया मादा तथा मानसिक अपसामान्यता
नर			
XY	0	1	सामान्य
XYY	0	2	सामान्य
XXY	1	1	क्लाइनेफेलटर सिन्ड्रोम
XXYY	1	2	क्लाइनेफेलटर सिन्ड्रोम
XXXY	2	1	अतिक्लाइनेफेलटर सिन्ड्रोम
XXXXY	3	1	अतिक्लाइनेफेलटर सिन्ड्रोम

में रक्त वर्गों के वे संयोग दिखाये गए हैं जो एक दूसरे को सहन कर सकते हैं।

साथ में दी गई तालिका से यह अच्छी तरह समझ में आता है कि A B रक्त वर्ग किसी भी वर्ग के रक्त को स्वीकार कर सकता है किन्तु दान केवल अपने ही वर्ग को कर सकता है। इसी प्रकार 'O' रक्त वर्ग के जीव सार्विक दाता हैं। सार्विक आदाता तथा सार्विक दाता तब ही तक ठीक हैं जबकि Rh प्रतिनिधि संगत होता है। असंगत रक्त द्वारा रक्ताधान करने से गम्भीर प्रतिक्रियाएँ होती हैं। रक्तवर्गों की असंगतता, गर्भ के दौरान और भी अधिक गम्भीर हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि A वर्ग की माता के गर्भाशय में B वर्ग का भ्रूण हो तो भ्रूण पर माता का प्रति-प्रतिनिधि 'B' आक्रमण कर देगा। इसके कारण अरक्तता तथा पीलिया जैसे दोष हो सकते हैं।

मानव के विभिन्न अक्रम विकारों की वंशागति के तरीके तथा आनुवंशिक नियंत्रण के ज्ञान से हम इनसे बच सकते हैं तथा इनको दूर भी कर सकते हैं। इनमें से कुछ अंशों की अगले अध्याय में चर्चा की गई है।

तालिका 23.2

विभिन्न रक्त वर्गों के लक्षण तथा सह्य संयोग

रक्त वर्ग	प्रति-प्रतिनिधि उपस्थित	को रक्त दान कर सकता है	से रक्त स्वीकार कर सकता है
A	प्रति-B	A, A B	A, O
B	प्रति-A	B, A B	B, O
AB	कोई नहीं	A B	A, B, AB, O
O	प्रति-A तथा प्रति-B	A, B, A B, O	O

प्रश्न

1. मानव आनुवंशिकी के नवीनतम उपगमन बताओ।
2. पुरुष तथा स्त्री के गुणसूत्र प्ररूप में क्या भिन्नता है? किस प्रकार यह भिन्नता बच्चे के लिंग को निश्चित करती है?
3. गुणसूत्रों की पट्टरचना से क्या समझते हो? यह किस प्रकार से मानव आनुवंशिकी में सहायक है?
4. मनुष्य में कुछ अलिंगगुणसूत्री तथा लिंगगुणसूत्री अपसामान्यताओं के नाम बताओ। उनके गुण-सूत्री आधार तथा लक्षणों का संकेत करो।
5. संक्षिप्त व्याख्या करो :

   (क) बार पिंड (ख) टरनर सिन्ड्रोम (ग) डोन सिन्ड्रोम (घ) क्लाइनेफेलटर सिन्ड्रोम (ङ) सार्विक दाता।

6. उचित वंशावलि चार्ट की मदद से, वर्णान्ध पुरुष तथा सामान्य महिला के विवाह के पश्चात संतानों के सम्भव जीनप्ररूपी तथा लक्षणप्ररूपी बताओ।

7. अप्रभावी उत्परिवर्तन महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में अधिक सरलता से व्यक्त होते हैं। क्यों?

8. Rh-प्रतिनिधि क्या है? कब एक जीव Rh-पॉजिटिव होता है?

9. क्या होगा यदि Rh-निगेटिव माता के गर्भाशय में Rh-पॉजिटिव बच्चा है?

10. निम्नलिखित जीन प्ररूपियों के रक्त वर्ग क्या होंगे?

    (क) ⌊A ⌊B (ख) ⌊B ⌊B (ग) ⌊O ⌊O (घ) ⌊A ⌊O तथा
    (ङ) ⌊B ⌊O

11. निम्नलिखित सहवासों से उत्पन्न बच्चों के रक्त वर्ग क्या होंगे?

    (क) ⌊A ⌊B × ⌊B ⌊B (ख) ⌊A ⌊O × ⌊A ⌊B
    (ग) ⌊A ⌊B × ⌊A ⌊B तथा (घ) ⌊O ⌊O × ⌊A ⌊B

अध्याय 24

आनुवंशिकी तथा समाज

आनुवंशिकी तथा विविधता के विज्ञान के ज्ञान का उपयोग वनस्पति तथा पशुओं की किस्में सुधारने में किया गया है जो मनुष्य के लिए लाभप्रद है। मानव की आवश्यकता के अनुसार इसका उपयोग जीवों के जीन प्ररूपी तथा लक्षणप्ररूपी को सिलने तथा बनाने में भी किया गया है, कई मानव रोगों को दूर किया गया है तथा इस प्रकार जीवन के तरीके को सुधारा गया है। इन कार्यों तथा भविष्य की आशाओं की इस अध्याय में चर्चा की गई है।

वनस्पतियों में उन्नति

मनुष्य वनस्पतियों पर निर्भर करता है क्योंकि केवल वनस्पति ही सौर ऊर्जा का उपयोग विभिन्न जैव यौगिकों के संश्लेषण में करती है और फिर मनुष्य तथा जानवरों के लिए ये वनस्पतियाँ ही शक्ति का उद्गम होती हैं। मनुष्य का जीवन वनस्पति उद्गमों की मात्रा तथा विशिष्ट लक्षणों पर निर्धारित है इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बहुत समय पहले से ही मनुष्य आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण वनस्पतियों की वैज्ञानिक उन्नति करने का प्रयास कर रहा है। इस वैज्ञानिक उन्नति को वनस्पति प्रजनन कहते हैं। जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ी, मनुष्य ने उपयोगी वनस्पतियों को उन्नत करना सीखा तथा उसने बीजों का चुनाव मजबूत तथा स्वस्थ वनस्पतियों से किया तथा इन बीजों को अगले वर्ष बोया। इस प्रकार बीजों का चुनाव, वनस्पतियों की उन्नति का सबसे पुराना तथा पहला तरीका है। आज भी इस विधि का उपयोग किया जाता है किन्तु केवल वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ। वर्षों से विभिन्न स्थानों के किसानों ने विभिन्न फसलों का चुनाव किया जो कि स्थानिक परिस्थितियों के अनुरूप था। इस विधि की एक परेशानी यह है कि यह चुनाव समष्टि में उपस्थित आनुवंशिक विविधताओं की सीमाओं में से ही करना पड़ता है।

चुनाव के समय यह जानना तथा निश्चित करना मुश्किल हो जाता है कि क्या उन्नत लक्षणप्ररूपी वातावरण या जीनप्ररूपी से नियंत्रित होता है। यह निश्चय कुछ पीढ़ियों के बाद ही किया जा सकता है।

वनस्पति उन्नति की दूसरी विधि है पुरःस्थापन। यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि प्रत्येक फसल संसार के एक या कुछ स्थानों पर आरम्भ हुई थी। रूस के प्रोफेसर एन० आइ० वैवीलोव ने विचार प्रगट किया कि उन्नत वनस्पतियों की उत्पत्ति के आठ बड़े केन्द्र हैं। चाइनीज केन्द्र, हिन्दुस्तान केन्द्र, सेन्ट्रल एशिआटिक केन्द्र, नियर ईस्टर्न केन्द्र, मेडिटेरेनिअन केन्द्र, एबीसीनिअन केन्द्र, साउथ मैक्सिकन केन्द्र तथा अमरीकन केन्द्र। गेंहू का उत्पत्ति स्थान सेन्ट्रल ऐशिआटिक केन्द्र, चावल का उत्पत्ति स्थान हिन्दुस्तान केन्द्र, आलू का उत्पत्ति स्थान साउथ अमरीकन केन्द्र है। आज अधिकतर फसलें सारी दुनिया में विभिन्न परिस्थितियों में उगाई जाती हैं। इसका कारण फसलों का अभ्यागतों तथा व्यापारियों द्वारा पुरःस्थापन है उदाहरण के लिए आलू, मक्का तथा तम्बाकू

का एशिया में पुरःस्थापन अमरीका के व्यापारियों द्वारा हुआ था। भारत के कुछ नवीनतम पुरःस्थापन हैं चावल की वामन किस्म (टिचुँग नेटिव) फोरमोसा (अब तेवान) से, अन्तर्राष्ट्रीय चावल-8 (IR-8) फिलिपाइन्स से, तथा गेंहू की तीन वामन जीनों वाली किस्म (सोनोरा, लैर्मा, राजो इत्यादि) मैक्सिको से। नोरिन, वामनता का जीन जापान में उगा जहाँ से इसे यू० एस० ए० में पुरःस्थापित किया गया फिर मैक्सिको तथा बाद में भारत में।

वनस्पतियों की लिंगता तथा निषेचन के ज्ञान के साथ, संकरण का भी प्रारम्भ हो गया। सबसे पहला सफल वनस्पति संकर थॉमस फेयरचाइल्ड ने स्वीट विलियम तथा कारनेशन का संकरण करके 1717 ई० में बनाया। इस सदी के प्रारम्भ में मेंडलवाद की पुनः खोज से, फसलों की उन्नति के लिए किए गए संकरण की वैज्ञानिक नींव पड़ी। आज राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भोजन की मात्रा तथा प्रकार को बढ़ाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। यह प्रयास संसार की बढ़ती हुई आबादी तथा कम होते हुए उद्गम स्थानों को ध्यान में रखते हुए किए जा रहे हैं।

पुरः स्थापन, चुनाव तथा संकरण के संयोग के परिणामस्वरूप आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लगभग सभी वनस्पतियों की किस्मों को उन्नत बनाया गया है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि आज संसार के समस्त खेतों में फसलों की वैज्ञानिक रूप से उन्नत किस्में ही उगाई जाती हैं।

संकरण के परिणामस्वरूप दो या दो से अधिक वर्गों या किस्मों से इच्छित लक्षणों को मिलाया गया है या फिर लक्षणों को एक से दूसरे तक पहुँचाया जाता है। इसमें मादा जनक के परागकोषों को स्फुटन से पूर्व निकाल दिया जाता है, इसको अनइच्छित निषेचन से बचाया जाता है, तथा पराग को नर जनक से एकत्रित करके विपुंसित फूल के वर्तिकाग्र तक पहुँचाया जाता है। एकलिंगी फूल, जैसे मक्के के फूलों को विपुंसित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार, उस मादा में भी विपुंसन की आवश्यकता नहीं पड़ती जो स्ववंध्य अथवा स्व-अनिषेच्य हों। संकरण के विभिन्न तरीके, पुष्पभागों की संरचना तथा शरीर क्रिया विज्ञान पर आधारित हैं। मक्के में, क्योंकि संकर प्रबल होते हैं, इसलिए उन्हें फसल की भाँति उगाया जाता है। दूसरी वनस्पतियों में, आगे आने वाली पीढ़ियाँ संकर से ही बनती हैं, उचित पुनर्योगज को चुना जाता है, उनका परीक्षण करके गुणन किया जाता है और फिर किसानों में बाँट दिया जाता है। संकरण के साथ प्रेरित उत्परिवर्तन, बहुगुणिता तथा गुणसूत्र अपेरण से समष्टि में अधिक विविधतायें उत्पन्न होती हैं जिससे हमें चुनाव करने में अधिक सफलता होती है। गेहूँ तथा राई (rye) के संकरण से एक नये अनाज का संश्लेषण हुआ है जिसका नाम है ट्रिटीकेल (चित्र 24.1)।
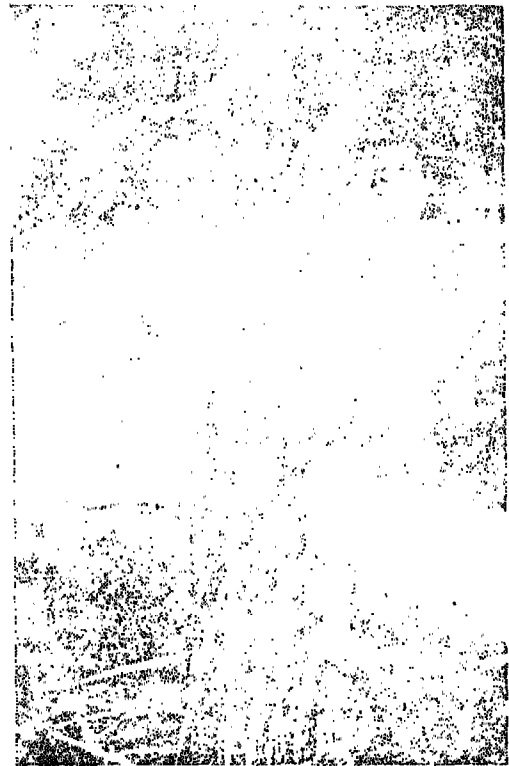
चित्र 24.1 : मानव द्वारा बनाया गया अनाज ट्रिटीकेल।

हाल के वर्षों में, इस प्रकार की कई एक तकनीकों का विकास किया गया है जिसके द्वारा इच्छित लक्षण को एक जीव से दूसरे जीव तक पहुँचाया जाता है या फिर किसी दिए हुए वर्ग के जीनप्ररूपी को काटा छाँटा जा

सकता है। इसकी चर्चा इसी अध्याय में आनुवंशिक अनुष्ठान में की गई है।

जीवों की उन्नति

भारत में पशुधन बहुत है। फिर भी दुग्ध, मांस, अंडे तथा दूसरे पशु उत्पादनों की कमी बनी रहती है क्योंकि हमारे पास पशुओं की उन्नत किस्में पर्याप्त संख्या में नहीं हैं। दो किस्मों के बीच में संकरण करने तथा न्यायसंगत चुनाव करने के पश्चात उन्नत किस्में पैदा होती हैं। हमारे देश में उन्नत किस्मों की संख्या सीमित है, इसलिए कृत्रिम वीर्यसेचन का आश्रय लेना पड़ता है।

प्रति गाय दुग्ध-उत्पादन बढ़ाने के लिए तथा परिश्रमी बैलों की किस्मों को उन्नत करने के लिए बड़ी संख्या में विदेशी किस्मों को भारत में पुरःस्थापित किया गया है।

इनमें से कुछ हैं: जेरसी (इंगलैंड), आयरशीर (स्कॉटलैंड), ब्राउन स्विस (स्विटजरलैंड), होल्सटाइन, फ्रीजियन (हालैंड) इत्यादि। उन्नत संकर किस्में जैसे जेरसी-सिंधी, आयरशीर-साहीवाल, ब्राउन स्विस-साहीवाल, इत्यादि को नियंत्रित प्रजनन द्वारा उत्पन्न किया गया है। संकर गायों में, शुद्ध किस्म की गायों की अपेक्षा अधिक दुग्ध-उत्पादन होता है। संकर बैल अधिक परिश्रमी, बलवान, शक्तियुक्त तथा फुर्तीले होते हैं। अंत में, आयरशीर-साहीवाल किस्म कम लोकप्रिय होती चली गई, क्योंकि इनमें संकर ओज आने वाली पीढ़ियों के साथ कम होता जाता है।

कृत्रिम वीर्यसेचन द्वारा संकरण करने की विधि सर्वप्रथम भारत में सन् 1944 में भारतीय पशुचिकित्सा शोध संस्थान में प्रारम्भ की गई थी, जो इज्जतनगर में स्थित है। सामान्यतः एक सांड, एक वर्ष में, संभोग के द्वारा केवल 50 से 60 तक गर्भधारण ही करवा सकता है।

किन्तु कृत्रिम वीर्यसेचन द्वारा एक वर्ष में एक सांड से 1000 तक गर्भ निषेचन करवाना सम्भव है। कृत्रिम वीर्य सेचन की सामान्य रीति इस प्रकार है—वीर्य को एकत्रित करना, इसका परीक्षण करना, इसको जीवित रखना, फिर इसे मादा में पिचकारी द्वारा पहुँचाना और इसके पश्चात् परिणामों का अध्ययन करना। कृत्रिम वीर्य सेचन के अनेकों लाभ हैं। इसमें खर्च कम होता है तथा इस विधि द्वारा अच्छे सांडों को अधिक से अधिक प्रयोगों में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सांडों के वीर्य को एक स्थान पर एकत्रित करके अनेकों स्थानों पर ले जाकर इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि के प्रयोग से बीमारी फैलने को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

दूसरे पशु पक्षी जैसे कुक्कुट, बत्तखें, सुअर आदि की किस्मों को भी पुरः स्थापन तथा नियंत्रित प्रजनन द्वारा सुधारा जा सकता है। असील, चित्तगाँव तथा घागस, मुर्गे की कुछ देसी किस्में हैं जबकि लेगहोर्न, रोड आइलैण्ड रेड तथा काला मिनोरका आदि पुरः स्थापित किस्में हैं। हमारे देश में देसी तथा पुरः स्थापित किस्मों की अनेकों संकर किस्में उपलब्ध हैं। भारत में पाये जाने वाले सुअर धीरे धीरे बढ़ते हैं तथा उनका मांस भी निम्न स्तर का होता है। इन सुअरों की किस्मों को सुधारने के लिए विदेशी किस्मों के वाराह, जैसे बड़ा सफेद योर्कशायर, मध्यम सफेद योर्कशायर तथा बर्कशायर का उपयोग किया गया है। विदेशों में सुअर प्रजनन तथा उत्पादन एक अत्यधिक लाभदायक व्यापार है क्योंकि ये पशु सरलता से प्रजनन करते हैं तथा शीघ्रता से बड़े होते हैं। ये पशु अत्यधिक कुशलता से भोजन को मांस में बदल देते हैं।

जीन कोश का संरक्षण

प्रत्येक प्राणी में जीन का अस्तित्व, दूसरे अनेकों जीनों के समागम में है। भिन्न भिन्न जीवों में जीनों के भिन्न भिन्न समूह होते हैं। बहुत से जीव मिलकर समष्टि बनाते हैं। समष्टि में जीनों का कुल योग जीन कोश कहलाता है। जीव में वंशागति से सम्बन्धित परिवर्तनों का परावर्तन जीन कोश में होते हुए परिवर्तनों में होता है। प्रत्येक जीव प्रजनन सामर्थ्य के अनुसार एक दूसरे से बहुत भिन्न होता है। वृद्धि विभेदन तथा प्रजनन की एक सीमा के बाद उनकी मृत्यु हो जाती है। किन्तु समष्टि तथा जीन कोश, कुछ समय के लिए, कुछ सीमाओं के अन्दर प्रतिपादित रहता है। समष्टि संरचना तथा इसके आनुवंशिक प्रकार में परिवर्तन कई एक पीढ़ियों के पश्चात् आ पाता है और परिवर्तन का परिणाम होता है—एक नये वर्ग का विकास। ये परिवर्तन, समष्टि में जीनों के प्रकार तथा आवृत्ति, दोनों को ही संयुक्त करते हैं। धीरे

धीरे कुछ जीन अदृश्य हो जाते हैं और नये जीन उत्पन्न हो जाते हैं। अक्रमिक समष्टि के अनेकों जीन अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं तथा उनका स्थानान्तरण उगाये हुए पौधों तथा पालतू जानवरों में किया गया है। इसलिए हाल ही में, प्राकृतिक जीन कोशों को जीवित रखने का प्रयास किया गया है। प्रकृति स्वयं ही सर्वोत्तम रक्षागृह है, किन्तु मानव के अतिक्रमण के कारण धीरे धीरे इसकी अवनति होती जा रही है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जर्म-द्रव्य को एकत्रित करने तथा उसे जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं। कटक स्थित केन्द्रकीय चावल शोध संस्थान में चावल की 8000 से अधिक किस्मों का संग्रह है। कोयम्बटूर के गन्ना प्रजनन संस्थान में गन्ने की अनेकों किस्मों का संग्रह है। इसी प्रकार युनाइटेड स्टेट्स कृषि विभाग के वनस्पति, पुरः स्थापन कक्ष में गेहूँ, मक्का, चावल, सोयाबीन इत्यादि के बड़े-बड़े संग्रह हैं। इसी प्रकार के महत्वपूर्ण फसलों की किस्मों के संग्रह यू० एस० एस० आर० तथा दूसरे देशों में भी हैं। वन्य जीव शरणस्थानों तथा राष्ट्रीय पार्कों से जीन कोशों को जीवित रखने में मदद मिली है।

आनुवंशिक अनुशासन

मनुष्य ने अपने भविष्य के लिए कभी इतना विचार नहीं किया था जितना अब कर रहा है। मनुष्य अपनी सेहत को सुधारने, अपनी संतति को बेहतर तथा सेहतमंद बनाने, तथा पर्याप्त तथा अच्छे भोजन को प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयास कर रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे आनुवंशिक विज्ञान शास्त्री से मदद मिली है। पहले तो वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्रारम्भिक शोध कार्य करते हैं, तत्पश्चात् इस नई खोज के उपयोग की सम्भावनाओं को देखते हैं। आनुवंशिक अनुशासक, विभिन्न खोजों के उपयोग तथा अनुपयोग के बारे में लोगों को शिक्षित करने में सहायता करते हैं। वे भावी (आगे आने वाली) पीढ़ियों की संतति के गुणों की कल्पना करते हैं और इस प्रकार पितृत्व का नक्शा बनाने में भी मदद करते हैं।

अनुशासक यह अनुमान लगा सकता है कि किसी भी जीव की, एक आनुवंशिक दोष वाले बच्चे को जन्म देने की सम्भावना क्या है। अभिभावकों के गुणसूत्र प्ररूप की व्याख्या करने से यह मालूम हो सकता है कि क्या उनमें कोई इस प्रकार की गुणसूत्र अपसामान्यता है जो भविष्य में आने वाली पीढ़ियों तक पहुँच सकती है। मूत्र तथा रक्त इत्यादि के जैव रासायनिक परीक्षण से, पति तथा पत्नी की कोई भी असंगतता का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार के परीक्षण यदि विवाह से पहले कर लिए जायें तो अनेकों कष्टों से बचा जा सकता है। माँ के भ्रूण कोश में बहुत ही छोटे भ्रूण के लिंग का अनुमान भ्रूण को घेरने वाले द्रव की कुछ कोशिकाओं के परीक्षण से लगाया जा सकता है। इससे हमें संतति में लिंग सहलग्न अक्रम विकार का अनुमान लगाने में भी सहायता मिलती है। ऐच्छिक गर्भपात के द्वारा, उपापचय के दोषों तथा वंशागति अक्रम विकारों को रोका जा सकता है। बहुत से आगे बढ़ते हुए देशों में आनुवंशिक अनुशासन के अच्छे केन्द्र हैं। आनुवंशिक वैज्ञानिक की राय, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण वनस्पतियों की किस्मों के उगाने या उगाना बंद करने में भी ली जाती है। आनुवंशिक इन्जीनियरिंग की तकनीकों को बेहतर बनाने के साथ साथ आनुवंशिक अनुशासक का महत्व भी बढ़ता चला जाएगा।

आनुवंशिक अनुष्ठान

आनुवंशिक अनुष्ठान का लक्ष्य आनुवंशिक पदार्थ में कुछ जोड़ना, घटाना या इसके किसी भाग की मरम्मत करना है जिससे कि इच्छा के अनुसार लक्षणप्ररूपी को परिवर्तित किया जा सके। आनुवंशिक अनुष्ठान का सबसे पुराना तथा प्रयोग में लाया हुआ तरीका है— प्रजनन। हाल के कुछ वर्षों में इस प्रकार की अनेकों तकनीकों की खोज कर ली गई है जिनके द्वारा आनुवंशिक पदार्थ में हेर फेर किया जा सकता है। इससे हमारा भविष्य उज्ज्वल है।

आनुवंशिक अनुष्ठान की सबसे पहली सीढ़ी इच्छित आनुवंशिक पदार्थ का अलग करना है। डी० एन० ए० का विभिन्न उद्गम स्थानों से निष्कर्षण तथा उसके स्वच्छीकरण की विधियाँ इतनी सरल तथा अच्छी हैं कि इन विधियों को कक्षाओं में प्रयोग के रूप में रखा जा सकता है। आनुवंशिक पदार्थों के अनुष्ठान की उत्तेजना और भी अधिक बढ़ गई है जबसे डाक्टर हर गोबिन्द खुराना (जिनको 1968 का नोबल प्राइज एम० नीरनबर्ग तथा आर० होली के साथ मिला था) ने ज्ञात क्रम के जीन अथवा न्यूक्लि-

ओटाइड को परखनली में संश्लेषण करने की तकनीकों को पूर्ण रूप दिया। एक बार यदि जीन या जीनखण्ड का संश्लेषण हो जाय तो इसका गुणन बेसों के मिश्रण तथा पुनरावृत्ति एनजाइम की मदद से किया जा सकता है। इस दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण कदम, एक जीव के विशेष डी० एन० ए० खण्ड का पृथक्करण तथा शोधन करना है। यह कार्य यू० एस० ए० के बेकविध तथा उनके साथियों द्वारा सफलतापूर्वक किया जा चुका है। ये वैज्ञानिक, इ०कोलाई नामक जीवाणु (चित्र 24.2) के लैक जीनों का पृथक्करण तथा शोधन करने में सफल हुए। जीनों का यह समूह जीवाणु में लैक्टोज के इस्तेमाल से सम्बन्धित है।

आनुवंशिक अनुष्ठान का अगला कदम है—आनुवंशिक खण्ड का एक जीव से दूसरे जीव में अथवा परखनली से कोशिका में स्थानान्तरण करना। इसको प्राप्त करने की सबसे अच्छी विधि रूपान्तरण है। रूपान्तरण एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा एक कोशिका तंतु अथवा जीव अपने
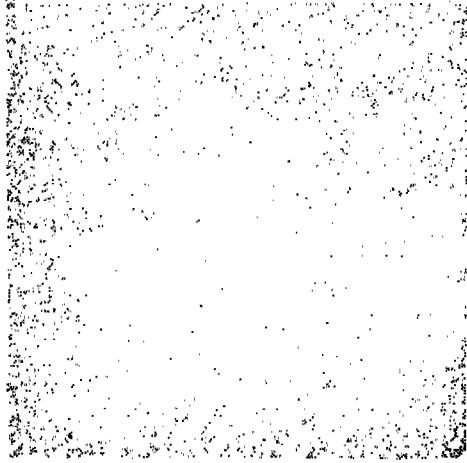
चित्र 24.2 : शुद्ध किया गया लैक, जीन जैसा कि इलैक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी से दिखाई पड़ता है।

परिवेश में से डी० एन० ए० के खण्ड प्राप्त करता है, इसका अपने आनुवंशिक पदार्थ में समावेशन करता है तथा अंत में अन्दर आते हुए डी० एन० ए० द्वारा विनिर्दिष्ट गुणों को व्यक्त करता है। अनेकों जीवों तथा वनस्पतियों में रूपान्तरण प्राप्त किया जा चुका है। एक समय ऐसा भी था जब यह समझा जाता था कि वनस्पति कोशिका की कड़ी कोशिका भित्ति, कोशिका द्वारा डी० एन० ए० प्राप्त करने को असम्भव बना देगी, किन्तु उचित एनजाइमों द्वारा कोशिका भित्ति का पूर्ण या अपूर्ण रूप से पाचन करके इस मुश्किल को सरल बना दिया गया है। जीनों के संश्लेषण तथा शोधन के कारण रूपान्तरण और भी अधिक नियंत्रित तथा संक्षिप्त हो गया है।

आनुवंशिक रूपान्तरण की दूसरी स्थापित विधि पारक्रमण है। पारक्रमण विधि की खोज एक जीवाणु में हुई थी जिसमें एक विषाणु (बैक्टीरीयोफाज) एक जीवाणु को संक्रमित करता है तथा बाहर आते हुए जीवाणु के जीनोम के एक खण्ड को साथ ले आता है और फिर दूसरे जीव को संक्रमित करता है और इस संक्रमण के दौरान आनुवंशिक खण्ड को एक जीव से दूसरे जीव तक पहुँचाता है। पारक्रमण उच्च वर्ग के जीनों में भी देखा गया है। इस प्रकार SV 40 विषाणु जो मानव पर आक्रमण करता है, आनुवंशिक खण्ड को एक जीव से दूसरे जीव तक पहुँचा सकता है। पारक्रमण का उपयोग इ० कोलाई के लैक जीनों का टमाटर अथवा एरबीडोपसिस के अगुणित किण्व तक स्थानान्तरण करने में किया जा चुका है। इन स्थितियों में आनुवंशिक पदार्थ का वाहक लैम्बडा बैक्टीरियोफाज है।

हाल में, प्लासमिड का उपयोग आनुवंशिक पदार्थ के परिचालन में किया गया है। प्लासमिड डी० एन० ए० के छल्ले हैं जो जीवाणु में अधिकतर मुख्य जीनोम के ऊपर पाये जाते हैं। इनमें लैंगिक तथा प्रतिजैविकी प्रतिरोध इत्यादि के जीन होते हैं किन्तु कोई भी जैव जीन नहीं होता इसलिए कोशिका इनकी अनुपस्थिति में भी जीवित रह सकती है। प्लासमिड मुख्य जीनोम की तुलना में स्वतंत्र रूप से पुनरावृत्ति करते हैं तथा छोटे आकार के कारण सरलता से कोशिका के अन्दर बाहर आ जा सकते हैं। प्लासमिड के अतिरिक्त हाल में खोजे हुए एनजाइमों के दो समूह – सीमित इन्डोन्यूक्लिएजिज तथा लाइगेजिज का उपयोग भी आनुवंशिक अनुष्ठान में किया जा रहा है। सीमित इन्डोन्यूक्लिएजिज का उपयोग प्लासमिड तथा विजातीय डी० एन० ए० अणु को एक विशेष बिन्दु पर इस प्रकार जोड़ने में किया जाता है कि जिससे दोनों अणुओं में चिपकने वाले अन्तिम किनारे हों। प्लासमिड
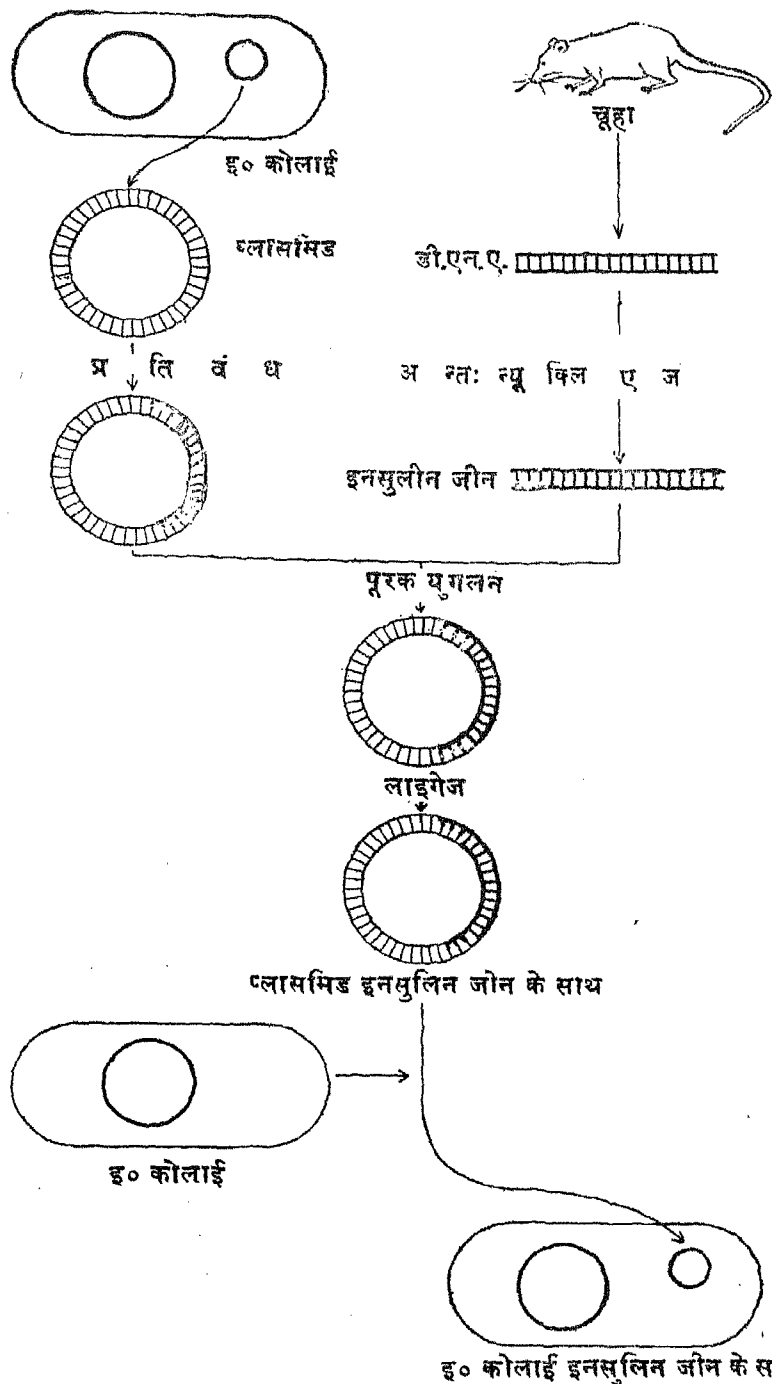
चित्र 24.3 : इनसुलिन जीन का चूहे से इ० कोलाई में स्थानान्तरण करने के विभिन्न चरण। चूहे के इनसुलिन जीन का पृथक्करण, प्रतिबंध अन्तःन्यूक्लिएज के प्रयोग से किया गया तथा उसी अन्तःन्यूक्लिएज के साथ क्रिया करवा कर पूरक बेसों को निकाला, तदुपरान्त पृथक्करण किया गया। इनसुलिन जीन लाइगेज की सहायता से प्लासमिड से जोड़ दिया गया। प्लासमिड का इनसुलिन जीन के साथ इ० कोलाई कोशिका में पुरः स्थापन कर दिया गया।

डी० एन० ए० तथा विजातीय डी० एन० ए० के स्वतंत्र चिपकने वाले किनारे, पूरक युग्म बनाने में सरलता देते हैं। खाली स्थान लाइगेज द्वारा भर दिए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप डी० एन० ए० का एक गोल खण्ड बन जाता है जिसमें प्लासमिड जीन तथा विजातीय डी० एन० ए० का टुकड़ा होता है (चित्र 24.3)।

इस प्रकार के पुनर्योगज डी० एन० ए० को प्लासमिड के रूप में एक जीवाणु कोशिका में पुरः स्थापित किया जा सकता है, जहां पर ये पुनरावृत्ति करके स्वयं को व्यक्त कर सकते हैं। इस विधि का उपयोग करते हुए जीनोपस (टोड) के राइबोसोमल जीनों का समावेश इ० कोलाइ जीवाणु की कोशिकाओं में किया गया है। खरगोश के ग्लोबिन जीन (वह जीन जो हीमोग्लोबिन के प्रोटीन भाग को कोड करता है) तथा चूहे के इनसुलिन जीन का इसी जीवाणु में स्थानान्तरण करना भी सम्भव रहा है। नये डी० एन० ए० का जीवाणु कोशिका में अनुलेख होता है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए अनेकों प्रमाण एकत्रित किए गए हैं। आवश्यक प्रोटीनों के पूर्ण तथा अन्तिम संश्लेपण के समाचार की प्रतीक्षा है।

आनुवंशिक अनुष्ठान के अनेकों अच्छे परिणाम प्राप्त हो चुके हैं। और भी अधिक अच्छे परिणामों को प्राप्त करने की आशा है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

1. नयी प्रकार की दवाइयों तथा जीन चिकित्सा द्वारा हीमोफीलिआ तथा फीनायलकीटोनूयरिया इत्यादि वंशागत रोगों का उपचार किया जा सकता है।
2. उच्च वर्ग के जीवों के विटामिन, प्रतिजैविकी या हारमोन के जीनों को कोड करके तथा इनको जीवाणु में पुरः स्थापन करके कुछ ऐसे रसायनों को उत्पन्न किया जा सकता है जिनका कृत्रिम संश्लेषण करना असम्भव है।
3. जीवाणु अथवा नीली हरी शैवाल से नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीनों का अनाज वाली फसलों में स्थानान्तरण करना भी भविष्य में सम्भव हो सकेगा जिसके कारण हमारी फसलें वातावरण के नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर सकेंगी। इससे संसार में अनाज उत्पादन बढ़ेगा तथा कृत्रिम उर्वरक पर खर्च भी कम करना पड़ेगा।
4. इच्छानुसार नये नए प्रकार के जीवों तथा वनस्पतियों का निर्माण सम्भव हो सकेगा। इच्छानुसार उनके लक्षणों को काटा छाँटा जा सकेगा।
5. ऊपर दिए गए प्रायोगिक लाभों के अतिरिक्त, इस विधि के द्वारा हम आनुवंशिक पदार्थ के कार्यों व प्रकृति के विषय में अध्ययन कर सकते हैं। एक गुणसूत्र में एक जीन विशेष की स्थिति तथा कब और कहाँ कौन सा एनजाइम बन रहा है इत्यादि तथ्यों का पता लगाया जा सकता है।

किन्तु इस शिल्प विज्ञान के लाभों को इसके द्वारा उत्पन्न संकटों की तुलना में आँकना चाहिए। कभी-कभी जीनों की हेराफेरी के परिणामस्वरूप नये प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं या फिर जीव, घातक जीन के साथ उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार के जीव समस्त संसार को संदूषित कर सकते हैं। इनके दोषों का पता तब ही लग पाएगा जब वे अपने दोषों द्वारा पूरा नुकसान पहुँचा चुकेंगे। प्रतिजैविकी जैसी दवाएँ प्रभावहीन हो सकती हैं यदि जीवाणु में अनियंत्रित पुनर्योगज डी० एन० ए० के कारण प्रतिरोध उत्पन्न हो जाये। राजनीतिज्ञ इस तकनीक का गलत इस्तेमाल हिटलर-प्रकार के अनन्य शासक उत्पन्न करने में कर सकते हैं।

जीवद्रव्यक संगलन

सामान्य प्रजनन प्रयोगों में केवल सम्बंधित वर्गों के जीवों का ही सहवास कराया जा सकता है। दो भिन्न भिन्न वर्गों के बीच में संकरण करना कठिन तथा अधिकतर असम्भव होता है। इस मुश्किल को जीवद्रव्यक संगलन द्वारा आसान बना दिया गया है। सन् 1965 में सर्वप्रथम एच० हैरिस तथा जे० एफ० वाटकिन्स ने बताया तथा दिखाया कि दो भिन्न वर्गों के जीवों (चूहा तथा मानव) की कोशिकाओं का संगलन करके संकर कोशिकाएँ बनाना सम्भव है। इस खोज की सबसे पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि भिन्न-भिन्न वर्गों की कोशिकाओं

चित्र 24.4 : 'मिरर' में प्रकाशित एक व्यंगचित्र जिसका प्रकाशन इस समाचार के बाद हुआ था कि भिन्न जीवों की कोशिकाओं के संगलन से संकर कोशिकायें बनती हैं ।

का संगलन करके जैव संकर उत्पन्न किए जा सकते हैं (चित्र 24.4)। किन्तु अभी तक इस तकनीक से एक भी संकर जीव उत्पन्न नहीं किया गया है, क्योंकि जीव कोशिकायें उत्पत्ति माध्यम में विभेदित नहीं होतीं ।

दूसरी तरफ इस तकनीक द्वारा कम से कम दो वनस्पति संकर किस्में उत्पन्न की जा चुकी हैं। उनमें से एक तो तम्बाकू की दो किस्मों के बीच का संकर है (चित्र 24.5) (कार्लसन तथा साथी, 1972) तथा दूसरा पिटूनिया (पॉवर तथा साथी, 1976) के दो भिन्न वर्गों के बीच का संकर है। हाल ही में, उत्पत्ति जीवद्रव्यक तथा जीव कोशिकाओं के संगलन के समाचार मिले हैं। कोकिंग तथा साथी (1975) ने यीस्ट जीवद्रव्यक तथा मुर्गी के लाल रुधिर कणिका का संगलन सफलतापूर्वक किया। डूडिट्स तथा साथी (1976) ने मानव कोशिका तथा गाजर जीवद्रव्यक का संगलन किया। यह एक प्रसन्नता की बात होगी यदि इन संकरों में से वनस्पति भाग, विभेदन करने में सफल हो सकें ।

जीवद्रव्यक संगलन से लैंगिक बाधाओं पर विजय पाना सम्भव हो सकेगा । इसके द्वारा वनस्पतियों में जीवों की हेरा-फेरी भी सम्भव हो सकेगी । जीवद्रव्यक संगलन द्वारा संकरण करने को परालैंगिक संकरण कहते हैं क्योंकि इसमें लैंगिक संगलन नहीं होता है ।

एकपुंजकता

आनुवंशिक अनुष्ठान, वंशागत दोषों को ठीक कर सकता है तथा मानव की पीढ़ियों को बेहतर बना सकता है। किन्तु यह मृत्यु को नहीं रोक सकता। एक जीव की मृत्यु के साथ, एक विशेष जीनों के समूह तथा लक्षणों वाला विशेष जीनप्ररूपी नष्ट हो जाता है। जीनप्ररूपी
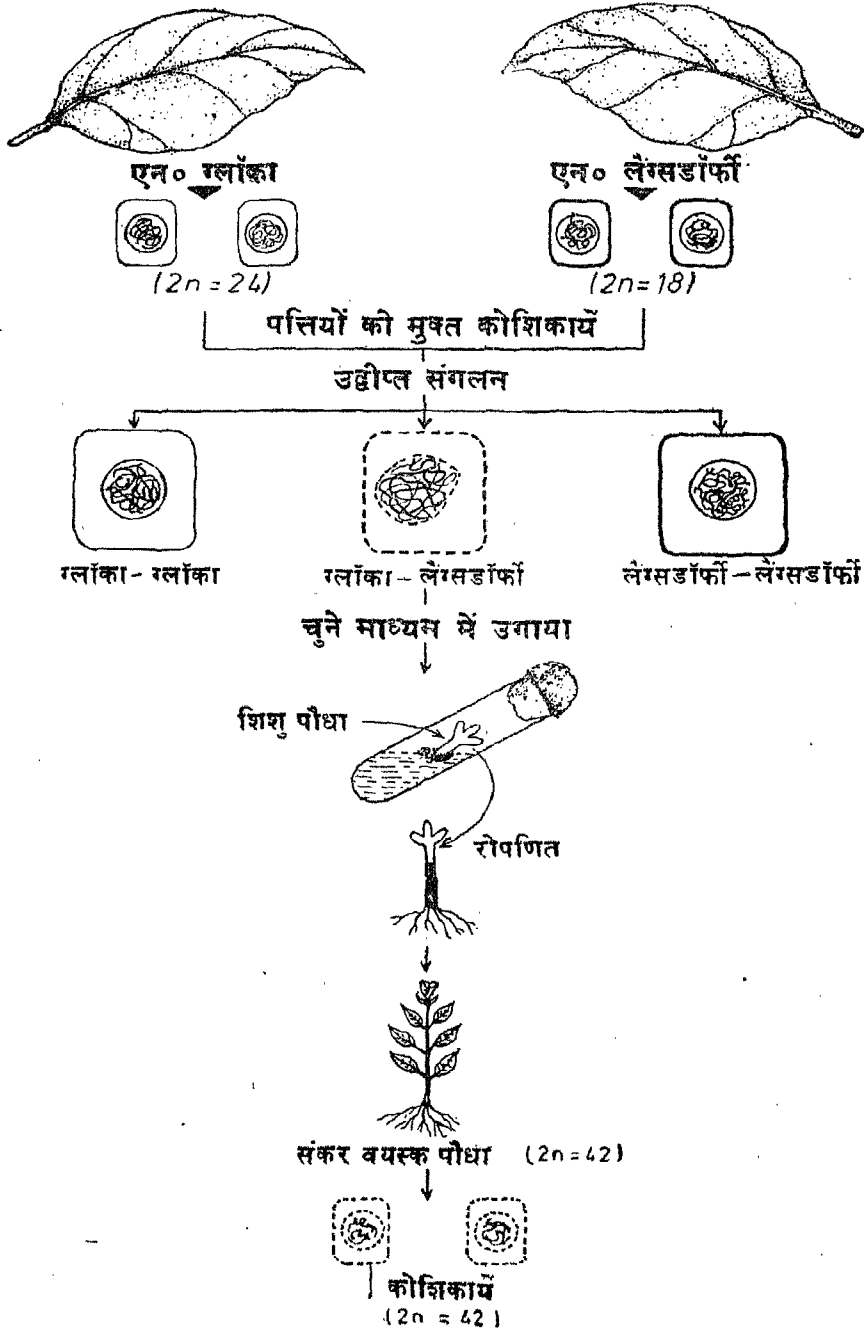
चित्र 24.5 : तम्बाकू में जीवद्रव्यक संगलन के द्वारा संकरण की कल्पना।

अस्थिमज्जा कोशिकाओं का संवर्ध

निष्कासित केन्द्रक

केन्द्रक रहित अण्ड में रोपित

भ्रूण
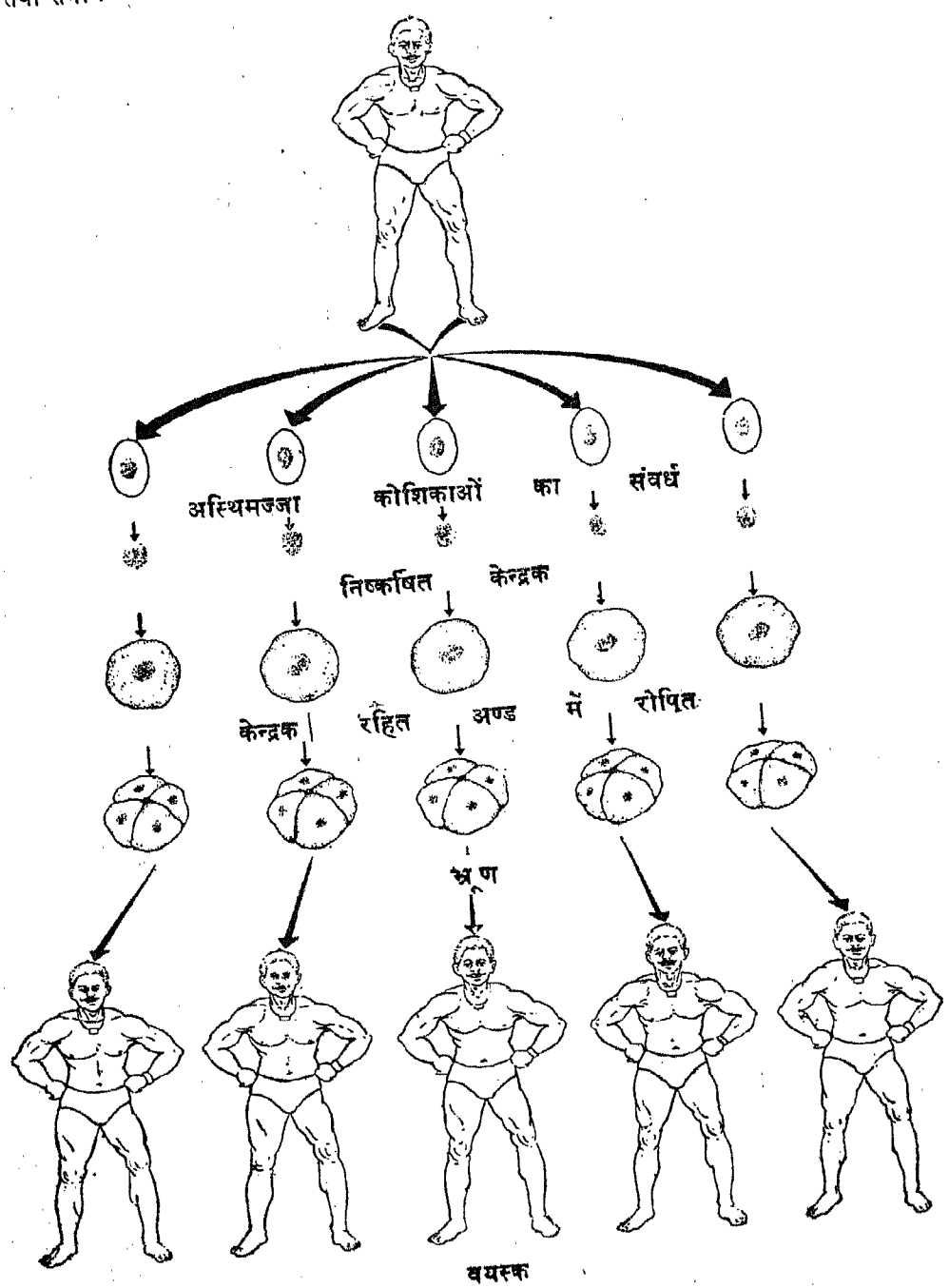
वयस्क

चित्र 24.6 : मानव में एकपुंजकता के सम्भव चरण ।

को लम्बे समय तक रखने का एक तरीका यह है कि जीव को एकपुंजक कर दिया जाय। एकपुंजक, कोशिकाओं की वे समष्टि अथवा जीव हैं जो आनुवंशिक रूप से एकसमान है। वनस्पतियों के एकपुंजक को सरलता से कायिक प्रवर्धन अथवा तन्तु उत्पत्ति विधियों द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। यदि इसी विधि का उपयोग मानव के लिए किया जाय तो एक जीव की अनेकों प्रतिकृतियाँ बनाना सम्भव हो सकता है (चित्र 24.6)। इस विधि में परखनली में कृत्रिम निषेचन होगा तथा युग्मनज में वृद्धि तथा विभेदन प्रेरित करना होगा।

केवल समय ही बता सकेगा कि आनुवंशिकी समाज को बेहतर तथा अधिक खुशहाल बना सकेगी या नहीं। हमारी आशायें उज्ज्वल हैं।

प्रश्न

1. वरण तथा पुरः स्थापन वनस्पतियों की किस्मों को सुधारने की दो महत्वपूर्ण विधियाँ हैं। इस कथन पर अपने विचार प्रकट करो।
2. वनस्पति संकरण के अभिप्राय तथा उपलब्धियाँ बताओ।
3. हमारी पशु सम्पत्ति को सुधारने में आनुवंशिक विज्ञान क्या योगदान दे सकता है ?
4. निम्नलिखित की व्याख्या करो:
   (क) जीन स्रोत (ख) आनुवंशिक अनुशासन (ग) रूपान्तरण (घ) पारक्रमण तथा (ङ) प्लासमिड।
5. आनुवंशिक अनुष्ठान की उपलब्धियों तथा भविष्य के विषय में चर्चा करो।
6. खरगोश से इ० कोलाई तक ग्लोबिन जीन के स्थानान्तरण को चित्र द्वारा समझाओ।
7. आनुवंशिक अनुष्ठान सम्बंधी प्रयोगों में वैज्ञानिक तथा जागरूक जनता दोनों की ही बरावर रुचि क्यों है ?
8. जीवद्रव्यक संगलन से क्या समझते हो ? इस प्रकार के कार्यों से क्या उम्मीदें हैं ?

परिशिष्ट

कोशिका-जीवविज्ञान और आनुवंशिकी के क्षेत्र में हुए महत्त्वपूर्ण अनुसंधान

वर्ष	नाम	योगदान
1824	एच० जे० दुत्रोशे	सभी प्राणी व पौधे कोशिकाओं के बने होते हैं।
1828	आर० ब्राउन	कोशिका-कणिकाओं की नाच वाली गति का वर्ण किया, जिसे ब्राउनी गति (Brownian movement कहा जाता है।
1838	एम० जे० श्लाइडेन	केन्द्रिकों का वर्णन किया, यद्यपि सर्वप्रथम इन निरीक्षण फोन्टेना (1781) ने किया था।
1838-39	एम० जे० श्लाइडेन तथा टी० श्वान	कोशिका-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
1858	आर० विरचौ	इस बात का प्रतिपादन किया कि कोशिकाएँ पूर्व कोशिकाओं से उत्पन्न होती हैं।
1863	डब्ल्यू० ई० वाल्डेयर	नई सामान्य हीमेटॉक्सिलीन द्वारा ऊतकीय कोशिव के अभिरंजन (रँगने) से सम्बन्धित खोज की, फिर इस विधि द्वारा उसने गुणसूत्रों का वर्णन वि
1866	जी० जे० मेंडल	आनुवंशिकी (genetics) के आधारभूत सिद् की खोज की।
1866	ई० हीकेल	लवकों (plastids) का नामकरण।
1870	हिज	कोशिका के अध्ययन के लिए ऊतकों (tissue काट लेने के लिए माइक्रोटोम नामक क्षेत्र का किया। ऊतकों का परिरक्षण (preserva बॉयल (Boyle) के समय (1663) से आ गया था, जिसने नमूनों के परिरक्षण के लिए हल का प्रयोग किया।
1871	एफ० मीशेर	न्यूक्लीक अम्ल (न्यूक्लीन) की खोज की।

1879	फॉल	अंडाणु (ovum) में शुक्राणु (spermatazoan) के प्रवेश का प्रेक्षण किया।
1879	डब्ल्यू० फ्लेमिंग	क्रोमैटिन (Chromatin) शब्द सुझाया और गुणसूत्रों के विभाजन का वर्णन किया। 1882 में उसने सूत्री विभाजन (माइटोसिस) के नाम से प्राणि कोशिकाओं में कोशिका-विभाजन का वर्णन किया, और इस प्रसंग में तारक (aster) का नामकरण किया (1892)। उसने न्यूक्लीक अम्ल और क्रोमैटिन में सहसम्बन्ध स्थापित किया।
1882	ई० स्ट्रैसबर्गर	पौधे की कोशिकाओं में कोशिका-विभाजन का वर्णन किया और कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) और केन्द्रक-द्रव्य (nucleoplasm) शब्दों का प्रयोग करके उन्हें आधुनिक शब्दावली में प्रचलित किया।
1883	शिम्पर	सैक (1865) के विशेष पिंडों या कायों (bodies) और कॉम्पाराटी (1791) की हरी कणिकाओं (green granules) का नाम रखा : हरितलवक (chloroplast)।
1888	डब्ल्यू० वाल्डेयर	गुणसूत्र (chromosome) शब्द को शब्दावली में प्रविष्ट किया।
1888	टी० बॉवेरी	तारककाय (centrosome) का नामकरण किया, और 1892 में आरेखों का प्रकाशन किया जो अब तक प्रचलित हैं और जिनमें शुक्रजनन (spermatogenesis) और अंडजनन (oogenesis) का चित्रण किया गया था।
1898	सी० बेन्डा	माइटोकॉन्ड्रियन का नामकरण किया।
1898	सी० गॉल्जी	आन्तरिक जालिकीय समुच्चय (apparatus) के रूप में गॉल्जी सम्मिश्र (Golgi complex) का वर्णन किया।
1902	सी० ई० मैक्क्लंग	टिड्डे (grasshopper) में लिंग-गुणसूत्रों (sex chromosomes) की पहचान की।
1907	आर० जी० हैरीसन	संवर्ध (culture) में ऊतकों को उगाने की तकनीक का विकास किया।
1910	ए० कोसेल	कोशिका के केन्द्रक का रासायनिक अध्ययन।

1926	टी० स्वेडबर्ग	द्रुत अपकेंद्रित (ultracentrifuge) ।
1931	ओ० एच० वारबर्ग	श्वसन-एंजाइम की क्रिया ।
1933	टी० एच० मॉर्गन	आनुवंशिकता (heredity) के पारगमन (transmission) में गुणसूत्रों का कार्य ।
1938	टी० कैपरसन	न्यूक्लीक अम्लों के अध्ययन के लिए पराबैंगनी सूक्ष्मदर्शीय फोटोग्राफी (photomicrography) का विकास किया ।
1944	ओ० टी० ऐवरी, सी० एच० मैक्लिऑड तथा एच० मैक्कार्टी	जीवाणुओं (बैक्टीरिया) में आनुवंशिकता के पारगमन में डी० एन० ए० (DNA) का महत्व प्रदर्शित किया ।
1946	एच० जे० मुलर	एक्स-किरण वाले किरणन (irradiation) से उत्परिवर्तन (mutation) होना प्रदर्शित किया ।
1946	जे० बी० समर	प्रथम एंजाइम को क्रिस्टलित किया ।
1946	जे० एच० नारथ्रोप तथा डब्ल्यू० एम० स्टैन्सी	विशुद्ध रूप में एंजाइमों और विषाणु (virus) प्रोटीनों की रचना की ।
1953	एफ० जेर्निक	प्रावस्था विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी (phase contrast microscopy) ।
1953	एच० ए० क्रेब्स	साइट्रिक अम्ल चक्र ।
1953	जे० डी० वाट्सन, एफ० एच० सी० क्रिक एवं एम० एच० एफ० विल्किन्स	डी० एन० ए० अणु का द्विकुंडली प्रतिरूप (double helix model) ।
1954	एल० सी० पॉलिंग	रासायनिक बंध (bond) की प्रकृति ।
1958	एफ० सेंजर	इन्सुलिन की संरचना ।
1958	जी० डब्ल्यू० बीडिल, ई० एल० टैटम तथा जे० लेडरबर्ग	जीन एक निश्चित रासायनिक प्रक्रम (Process) का नियमन करता है ।
1959	एस० ओकोआ तथा ए० कोर्नबर्ग	पॉलिरॉइबोन्यूक्लिओटाइडों (polyribonucleotides) का *in vitro* संश्लेषण । पॉलिडीआक्सीराइबोन्यूक्लिओटाइडों (polydeoxyribonucleotides) का in vitro संश्लेषण ।
1961	एम० कैलविन	प्रकाशसंश्लेषण (photosynthesis) सम्बन्धी खोज कार्य ।

1962	जे० सी० केन्ड्रू तथा एम० एफ० पेरुट्ज	प्रोटीन की संरचना।
1965	एफ० जैकब, जे० मोनोड तथा ए० लोफ	जीनों के एक वर्ग की खोज, जो अन्य जीनों के क्रिया-कलापों का नियमन करते हैं।
1968	एम० डब्ल्यू० नीरेनबर्ग, एच० जी० खुराना तथा आर० एच० हॉली	आनुवंशिक कूट (genetive code) तथा t-RNA का क्षारकीय अनुक्रम।
1969	एम० डेलब्रुएक, ए० डी० हर्शे तथा एस० ई० लूरिया	विषाणुओं (Viruses) का जनन-निदर्श (pattern)।
1970	वी० एफ० साइ एच० हैरिस	कोशिका-संकरण (hybridization)। डी० एन० ए० आर० एन० ए० की संकरण तकनीक।
1971	ई० डब्ल्यू० सदरलैन्ड	चक्रीय ए० एम० पी० की भूमिका।
1972	डब्ल्यू० एच० स्टीन, एस० मूर तथा सी० बी० एनफिन्सेन	राइबोन्यूक्लिएस की संरचना।
1972	आर० आर० पोर्टर तथा जी० एम० एडेलमान	प्रतिरक्षियों (antibodies) की रासायनिक प्रकृति।
1974	ए० क्लैन्डे तथा जी० पैलेडे	कोशिका की परासंरचना।
1974	सी० द दवी	लयनकायों (lysosomes) की संरचना और कार्य।
1975	एच० टेमिन तथा डी० बाल्टीमोर	उत्क्रम ट्रांसक्रिप्टेस (reverse transcriptase) की खोज।
1975	आर० डल्बेको	कैन्सर के रोग कारकों (causative agents) के रूप में विषाणुओं (वाइरस) पर प्रकाश डाला।
1976	सी० गैंजडुसेक तथा बी० एस० ब्लम्बर्ग	कैन्सर अनुसंधान।